तारा भौतिकी

या

तारों की दुनिया



डा॰ निहालकरण सेठी

हिन्दी-समिति के प्रकाशन

भौतिक विज्ञान में क्रान्ति	४·५०
शक्ति, वर्तमान और भविष्य	४·००
उद्योग और रसायन	७·००
कांच विज्ञान	६·००
इलेक्ट्रान विवर्तन	२·५०
आपेक्षिकता का अभिप्राय	४·००
तारे और मनुष्य	५·००
यांत्रिकी	११·००
प्रकाश और वर्ण	११·५०
रसायन में नोबुल पुरस्कार-विजेता	६·००
रेडार परिचय	५·५०
क्रोमैटोग्राफी	५·५०
दूरवीक्षण के सिद्धान्त	६·५०
दैनिक जीवन में जीव-विज्ञान	३·५०
कोयला	८·००
विमान और वैमानिकी	४·५०
प्राचीन भारत में रसायन का विकास	१४·००
इस्पात का उत्पादन	५·००
काष्ठ परिरक्षण	१०·००
भारत का आर्थिक भूगर्भशास्त्र	१०·००
परमाणु विखण्डन	६.००
पृथ्वी की आयु	८·००
तारा भौतिकी	८·००
स्टार्च और उसका व्यवसाय	७·५०
तेल और उनसे बने पदार्थ	६.५०
रेडियो सर्विसिंग	१०·००
मृत्तिका उद्योग	८·००
साबुन तथा ग्लीसरीन	११·००
औद्योगिक इलेक्ट्रानिकी	७·००

4003

7-2

तारा-भौतिकी

हिन्दी समिति-ग्रन्थमाला – ६३

तारा-भौतिकी

या

तारों की दुनिया

लेखक

डा० निहालकरण सेठी, डी. एस-सी.

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

द्वितीय आवृत्ति
१९६८

मूल्य ८ रुपये

मुद्रक—छोटे लाल भार्गव, जी० डब्ल्यू लॉरी ऐण्ड कं०, लखनऊ

प्रकाशकीय

हमारी पृथ्वी और नक्षत्र-जगत् रहस्यों का भण्डार है। मनुष्य अनादि काल से इनका अध्ययन करता आ रहा है, पर अभी तक पार नहीं पा सका। विविध यन्त्र बने, दूरबीनें तैयार हुईं, वेधशालाएँ स्थापित हुईं, फिर भी शताब्दियों के परिश्रम और अध्ययन के बाद जो उपलब्धि हो सकी वह बहुत थोड़ी है। वस्तुतः विश्व अत्यन्त विशाल है, अद्‌भुत है। एक ओर उसकी समीक्षा-निरीक्षा बुद्धि को चकरा देने वाली है, तो दूसरी ओर वह अत्यन्त विस्मयकारी और मनोरंजक भी है।

तारा-भौतिकी ज्योतिष की वह नवीन शाखा है जिसमें भौतिक विज्ञान की सहायता से तारों और ग्रहों आदि की स्थिति, दूरी, रचना, विस्तार तथा अन्यान्य बातों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यद्यपि कितने ही प्रश्नों का समुचित उत्तर अब भी सम्भव नहीं है, फिर भी बहुत सी बातें हमें ज्ञात हो गयी हैं अथवा होती जा रही हैं।

डा० सेठी ने इस विषय का बड़ी योग्यता के साथ सरल भाषा में प्रतिपादन किया है। उनकी इस पुस्तक से हिन्दी के पाठकों को ब्रह्माण्ड सम्बन्धी अनेक चमत्कारपूर्ण बातों की जानकारी सुलभ हुई है। इसकी द्वितीय आवृत्ति पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। आशा है, अन्तरिक्षीय पिण्डों के ज्ञानार्जन की दिशा में इस कृति से पाठकों का पर्याप्त मार्गदर्शन होता रहेगा।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

सचिव, हिन्दी समिति



विषय-सूची

परिच्छेद १

हमारा नभोमण्डल

जब से मनुष्य का आविर्भाव इस पृथ्वी पर हुआ तभी से वह आकाश के सूर्य, चन्द्रमा और चमकते हुए तारों की ओर आकृष्ट होता रहा है। किन्तु लाखों वर्षों तक बराबर उनका प्रेक्षण करते रहने पर भी इस अत्यन्त सुन्दर नभोमंडल के इन ज्योतिर्मय पिंडों का रहस्य अभी तक रहस्य ही बना हुआ है। प्रागैतिहासिक काल में तो इनसे प्रभावित होकर मनुष्य ने इन पिंडों में देवत्व की कल्पना की थी और इन्हीं की स्तुति में अपनी कल्पना और कवित्व-शक्ति का उपयोग किया था। किन्तु जब से मनुष्य में विचार और विवेचना-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ तभी से वह समझने का प्रयत्न करता रहा है कि ये पिंड क्या हैं, ये क्यों चमकते हैं, इनका विस्तार कितना है, ये पृथ्वी से कितनी दूरी पर हैं, ये किस के आधार पर टिके हैं, इत्यादि इत्यादि। यही कारण है कि विज्ञान की अन्य शाखाओं की अपेक्षा ज्योतिष विज्ञान सबसे पुराना है। आधुनिक उत्कृष्ट यंत्रों के अभाव में भी अनेक देशों के प्राचीन ज्योतिषियों ने विलक्षण यथार्थतापूर्वक इनके सम्बन्ध में अनेक बातें जान ली थीं। इस ज्ञान के उपार्जन में भारतीय ज्योतिषी अग्रगण्य रहे हैं और हमें इस बात का गर्व है कि ज्योतिष विज्ञान के विकास में हमारे देश के ज्योतिषियों का अध्यवसाय और उनकी प्रतिभा आज भी सर्वमान्य है।

अन्य समस्त आकाशीय पिंडों की अपेक्षा सूर्य तथा चन्द्रमा सर्वथा भिन्न मालूम होते हैं, क्योंकि उनका विस्तार बहुत बड़ा है और उनका प्रकाश भी बहुत तीव्र होता है। सूर्य से तो हमें गरमी भी बहुत मिलती है।

हमारे दिन-रात, हमारी ऋतुएँ, हमारे पेड़-पौधे तथा कृषि, वस्तुतः हमारा समस्त जीवन सूर्य की ऊष्मा पर ही आधारित है।

चन्द्रविहीन स्वच्छ रात्रि में जो तारे किसी यंत्र की सहायता के बिना ही हमें दिखाई देते हैं उनकी संख्या ३,००० से अधिक है। यह समस्त तारा-मंडल हमें घूमता हुआ दिखाई देता है। पूर्व दिशा के दिगन्त में नये नये तारों का उत्तरोत्तर उदय होता जाता है और पश्चिम की ओर वे क्रमशः अस्त होते रहते हैं। २४ घंटे के बाद ये तारे पुनः अपने पूर्व स्थान पर पहुँच जाते हैं। केवल एक तारा उत्तरीय आकाश में ऐसा है जो अपने नियत स्थान ही पर बना रहता है। इसी कारण उसका नाम ध्रुव तारा[1] रखा गया है। उसके आस-पास के तारे उसी की परिक्रमा करते मालूम पड़ते हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो समस्त तारे किसी अदृश्य, खोखले किन्तु दृढ़ गोले के पृष्ठ पर जड़े हुए हैं और यह गोला, जिसे खगोल[2] कहते हैं, निरन्तर अपने एक अक्ष पर एक समान वेग से घूमता रहता है तथा २४ घंटों में एक चक्कर पूरा कर लेता है। इसके घूमने का अक्ष वह सरल रेखा है जो पृथ्वी को ध्रुव तारे से जोड़ती है। इस अक्ष पर स्थित होने के ही कारण ध्रुव तारा अचल दिखाई देता है और उसके पास के तारे अपेक्षाकृत छोटे वृत्तों पर घूमते नज़र आते हैं।

यद्यपि तारों की यह गति हमें रात्रि में ही दिखाई देती है तथापि यह स्पष्ट है कि सूर्योदय के बाद भी यही क्रम जारी रहता है, किन्तु सूर्य के अत्यन्त तीव्र प्रकाश के कारण हमारा समस्त वायुमंडल आलोकित हो जाता है और इन तारों के क्षीण प्रकाश को ढक लेता है। अतः आकाश में उपस्थित रहने पर भी ये तारे हमें दिन में दिखाई नहीं देते।

यदि २४ घंटों में हमारे आकाश में उदय होनेवाले सभी तारों की गणना की जाय तो हम कह सकते हैं कि उनकी संख्या ६००० से भी अधिक

1. Pole star 2. Celestial sphere.

निकलेगी। दूरबीन की सहायता से देखने पर यह संख्या लाखों तक पहुँच जाती है और ज्यों-ज्यों दूरबीन की शक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों नये नये तारे हमें दिखाई देते जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इनकी संख्या का कहीं अन्त है ही नहीं।

किन्तु इन सबमें से सूर्य, चन्द्रमा तथा केवल आठ अन्य तारे ऐसे हैं जिनके स्थान इस खगोल में परिवर्तन करते रहते हैं। इन्हें छोड़कर अन्य सब तारे इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि उनकी पारस्परिक दूरियों और दिशाओं में कुछ भी परिवर्तन होता हुआ दिखाई नहीं देता। विभिन्न तारा-मंडलों[1] के द्वारा बनी हुई ज्यामितीय आकृतियाँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं और इन तारा-मंडलों में किसी प्रकार की आपेक्षिक गति भी दिखाई नहीं पड़ती।

जो आठ तारे इस समस्त ताराजटित खगोल की अपेक्षा अपना स्थान बदलते रहते हैं, वे वास्तव में तारे नहीं कहलाते, उन्हें ग्रह[2] कहते हैं। उनके नाम हैं मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, यूरेनस अथवा वारुणी, नेपट्यून अथवा वरुण तथा प्लूटो अथवा यम। इनमें से प्रथम पाँच ग्रह तो खाली आँख से दिखाई देते हैं। ये ही प्राचीन ज्योतिषियों को ज्ञात थे। अंतिम तीन ग्रहों का आविष्कार दूरबीन की सहायता से क्रमशः सन् १७८१, १८४६ तथा १९३० में हुआ था। स्थान-परिवर्तन की दृष्टि से प्राचीन ज्योतिष में सूर्य और चन्द्रमा भी ग्रह ही कहलाते थे।

प्राचीन काल के ज्योतिषियों की धारणा यह थी कि पृथ्वी अचल है और खगोल के केन्द्र पर स्थित है। समस्त तारों के सहित पूरा का पूरा खगोल पृथ्वी के चारों ओर सचमुच घूम रहा है। किन्तु भारत में आर्यभट नामक विख्यात ज्योतिषी ने ही सबसे पहले सन् ४९९ ई० में यह मत प्रतिपादित किया था कि वास्तव में खगोल तो सर्वथा स्थिर और अचल

1. Constellations. 2. Planet

है और गेंद के समान गोल आकृति वाली यह पृथ्वी ही अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती रहती है। किन्तु उनका यह मत अन्य भारतीय तथा विदेशी ज्योतिषियों को मान्य नहीं हुआ। कहा जाता है कि यरोप में प्राय: ईसा से २५० वर्ष पूर्व अरिस्तार्कस नामक किसी ग्रीस देशीय विद्वान् ने भी ऐसा ही मत प्रकाशित किया था। किन्तु पोलैंड निवासी कोपर्निकस[1] ने ही (जिसका जन्म सन् १४७३ में अर्थात् आर्यभट के प्राय: १००० वर्ष बाद हुआ था) सब से पहले पृथ्वी के घूर्णन तथा खगोल की अचलता के सिद्धान्त का वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादन किया था। परन्तु ईसाई धर्माचार्यों के विरोध के कारण बहुत काल तक बड़े बड़े ज्योतिषी भी इस मत का विरोध करते रहे तथापि अपनी उत्कृष्टता के कारण धीरे-धीरे इस मत को मान्यता प्राप्त होती गयी और अब तो यह सर्वमान्य हो गया है। अब तो पृथ्वी के घूमने के अनेक भौतिक प्रमाण ऐसे भी मिल गये हैं जिनका तारों के ज्योतिषीय प्रेक्षणों से कुछ भी संबन्ध नहीं है।

जो भी हो, प्राचीन ज्योतिषियों का कार्य यहीं तक सीमित था कि उन्होंने इस अचल ताराजगत् के विभिन्न मंडलों अथवा नक्षत्रों की आकृतियों का अध्ययन किया और उनके विभिन्न नाम रख दिये। इनमें मुख्यत: वे तारा-मंडल थे जो आकाश के उस भाग में स्थित हैं जिसमें होकर सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त ग्रह चलते दिखाई देते हैं और जिन्हें राशियाँ कहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने ग्रहों की गति का भी अध्ययन किया। उनके भ्रमणकाल को भी सूक्ष्मता से नापा और गणित की सहायता से इस बात की भविष्यवाणी करना भी सीख लिया कि किसी भी निर्दिष्ट समय पर कौन-कौन ग्रह किस-किस स्थान पर विद्यमान रहेंगे। इस कार्य के लिए उन्होंने दूरबीनों का भी उपयोग किया और एक कोणीय निर्देशांक पद्धति[2]

1. Copernicus. 2. Coordinate system.

का भी आविष्कार कर लिया, जिसके द्वारा किसी भी तारे या ग्रह का खगोलीय स्थान यथार्थतापूर्वक निर्दिष्ट हो सके। ज्यों-ज्यों दूरबीन आदि यंत्रों के निर्माण में उन्नति होती गयी और उनके द्वारा इन निर्देशांकों के नापने की कला का उत्कर्ष हुआ, त्यों-त्यों इन नापों की यथार्थता भी बढ़ती गयी। अब तो यदि किसी तारे की दिशा में एक सैकंड के कोण के शतांश के बराबर भी अन्तर पड़ जाय तो वह अच्छी तरह नाप लिया जाता है। साथ ही समय के नाप के लिए भी ऐसी उत्तम घड़ियाँ बन गयीं कि जिनमें एक-दो सैकंड प्रति वर्ष से अधिक फ़रक नहीं पड़ता और जिनके द्वारा पृथ्वी भर की वेधशालाओं में नापे हुए समय असंदिग्ध रूप से बराबर समझे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त शनैः शनैः यह भी मालूम कर लिया गया कि सूर्य भी वास्तव में खगोल के समस्त तारों की अपेक्षा अचल है। वह ग्रह नहीं है, वह भी तारा ही है। पृथ्वी से अधिक निकट होने के ही कारण वह इतना बड़ा दिखाई देता है। उसमें अन्य तारों की अपेक्षा जो गति दिखाई देती है वह आभासी है। उसका वास्तविक कारण पृथ्वी की वार्षिक गति है। जिस प्रकार चलती रेल के डब्बे में से पेड़ और पर्वत दौड़ते दिखाई देते हैं, ठीक उसी प्रकार सूर्य भी चलता हुआ नज़र आता है। अन्य ग्रहों की भाँति पृथ्वी भी एक ग्रह ही है और वह भी खगोल की अपेक्षा गतिमान् है। और जब सन् १६०९ से १६१९ तक के काल में केपलर[1] ने अपने प्रेक्षणों से इन समस्त ग्रहो की गति के सम्बन्ध में अपने तीन विख्यात नियमों का प्रतिपादन कर दिया, तब तो इन ग्रहों की गति का परिकलन अत्यन्त सरल हो गया। इन नियमों से प्रकट हो गया कि पृथ्वी तथा समस्त ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उनके गमन-पथ, जिन्हें कक्षाएँ[2] कहते हैं, दीर्घ-वृत्ताकार हैं और ये कक्षाएँ सूर्य से विभिन्न दूरियों पर इस

1. Kepler 2. Orbit

प्रकार व्यवस्थित हैं कि प्रत्येक ग्रह की कक्षा की एक नाभि (फोकस) पर सूर्य स्थित है। इन ग्रहों के परिक्रमण काल में और सूर्य से उनकी दूरी के बीच में भी अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया और वह एक सरल गणितीय सूत्र के द्वारा व्यक्त भी किया जा सकता है। इस आविष्कार से यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि समस्त ग्रह किसी न किसी प्रकार सूर्य से सम्बद्ध हैं। और जब न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया तब तो इस सम्बन्ध का भौतिक कारण भी ज्ञात हो गया। सूर्य तथा पृथ्वी आदि ग्रहों के समुदाय को हम सौर परिवार[1] कह सकते हैं।

चन्द्रमा भी सौर परिवार में ही सम्मिलित है। पृथ्वी से तो उसकी दूरी अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। किन्तु चन्द्रमा ग्रह नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी आदि ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं ठीक उसी प्रकार और उसी गुरुत्वाकर्षण के कारण चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अतः उसे पृथ्वी का उपग्रह[2] कहते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के साथ भी अनेक उपग्रह लगे हुए हैं। सूर्य की परिक्रमा में ग्रहों के साथ ये सब उपग्रह भी अपने अपने ग्रहों की परिक्रमा करते चलते हैं।

पृथ्वी और चन्द्रमा की उपर्युक्त गतियों के ज्ञान से यह भी स्पष्ट हो गया कि सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का कारण पुराणों में वर्णित राहु तथा केतु नामक राक्षस नहीं हैं। जब कभी चन्द्रमा सूर्य तथा पृथ्वी के बीच में आकर सूर्य को पूर्णतः या अंशतः ढक लेता है तब तो सूर्यग्रहण हो जाता है। और जब सूर्य तथा चन्द्रमा के बीच में पृथ्वी के आ जाने से चन्द्रबिम्ब पर पृथ्वी की छाया पड़ जाती है तब चन्द्रग्रहण हो जाता है। अतः इन ग्रहणों के समय की भी यथार्थतापूर्वक प्रागुक्ति करना संभव हो गया है।

यह सब हुआ है केवल प्रेक्षण द्वारा तारों तथा ग्रहों के स्थानों के ठीक ठीक नाप करने से। प्राचीन ज्योतिष इतने से ही सन्तुष्ट था। इस

1. Solar system

2. Satellite

विज्ञान को आजकल तारामिति[1] कहते हैं और इस कार्य के लिए अच्छे यंत्रों के निर्माण तथा उनके द्वारा नापने की कला को व्यावहारिक ज्योतिष[2] कहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का ध्येय इन विषयों का विस्तृत वर्णन करना नहीं है। हमारा उद्देश्य तो ज्योतिष की उस शाखा का दिग्दर्शन कराना है जिसे आजकल नवीन ज्योतिष अथवा ताराभौतिकी अथवा ज्योति-भौतिकी[3] कहते हैं। इसमें भौतिक विज्ञान की सहायता से तारों और ग्रहों के विषय में अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। उनकी दूरी कैसे नापी जाती है? उनकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है? उनका द्रव्यमान[4] कितना है? उनमें से प्रकाश क्यों निकलता है? उनका ताप कितना है? वे किन पदार्थों के बने हैं? क्या वे अनादि-अनन्त हैं अथवा उनकी उत्पत्ति, विकास और विनाश भी होते हैं? यदि होते हैं, तो कैसे? क्या तारे वास्तव में पूर्णतः अचल हैं? यदि उनमें गति है तो कैसी? क्या इस विश्व या ब्रह्मांड का विस्तार नियत है या वह बदलता रहता है? क्या पृथ्वी के समान अन्य तारों या ग्रहों पर भी वनस्पति और जीव-जन्तुओं का अस्तित्व है? क्या मनुष्य के समान बुद्धि तथा ज्ञान-विज्ञान से युक्त कोई प्राणी पृथ्वी से बाहर भी विद्यमान हैं?

यद्यपि इन सब प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर देना अभी संभव नहीं हो सका है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की अनेक बातों से हम भली भाँति परिचित हो गये हैं और इस ज्ञान में प्रगति भी बराबर बड़े वेग से हो रही है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो तारे हमसे करोड़ों-अरबों मील दूर हैं और हमारे पास जिनसे कुछ थोड़े से क्षीण प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पहुँच पाता, उनके सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान

1. Astrometry
2. Practical Astronomy
3. Astrophysics
4. Mass

के द्वारा हम इतनी अद्भुत बातों का ज्ञान प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सके हैं?

इस ज्ञान के अभाव का ही यह परिणाम था कि प्राचीन काल में यह विश्वास था कि मनुष्य ही इस संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण सृष्टि है और यह समस्त जगत् मनुष्य के ही लाभ और सुविधा के लिए बनाया गया है। किन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे सूर्य से भी कई गुने बड़े और शक्तिशाली सूर्य लाखों की संख्या में विद्यमान हैं और हमारी पृथ्वी इस विशाल जगत् में केवल एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण के सदृश है, तब मनुष्य को अवश्य ही अपनी क्षुद्रता का ज्ञान हो जाता है और उसे मिथ्या अहंकार से छुटकारा मिल जाता है। और जब हम देखते हैं कि करोड़ों-अरबों मीलों में फैले हुए इस संसार में सर्वत्र एक ही प्रकार के परमाणुओं से बना हुआ द्रव्य विद्यमान है और सर्वत्र एक ही प्रकार के प्राकृतिक नियम समस्त घटनाओं का नियंत्रण करते हैं, तब अवश्य ही मनुष्य को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है और इस चमत्कार के विषय में सोच-विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः दार्शनिकों के लिए भी यह ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संभवतः सभी देशों के मनुष्य-समाज में अभी तक यह विश्वास बना हुआ है कि प्रत्येक मनुष्य की जीवन-घटनाओं का, प्रत्येक देश और जाति के उत्थान और पतन का नियंत्रण आकाश के इन ग्रहों और नक्षत्रों की गति के द्वारा होता है और इनके अध्ययन से हम उन घटनाओं की भविष्यवाणी कर सकते हैं। इसी विश्वास के कारण प्राचीन समय से ज्योतिषीगण इन ग्रहों और तारों का प्रेक्षण तथा अध्ययन करते आये हैं। उन्होंने फलित ज्योतिष[1] नामक एक शास्त्र का निर्माण भी कर लिया है जिसे वे एक प्रकार का विज्ञान ही कहते हैं। यद्यपि इसकी सत्यता के पक्ष में कोई भी वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है और वैज्ञानिक दृष्टि से यह शास्त्र सर्वथा तथ्यहीन

1. Astrology

तथा कल्पित ही मालूम पड़ता है, तथापि यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य का और विशेष कर साधारण जनता का इसमें अंधविश्वास विज्ञान के इस युग में भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। फलित ज्योतिष कितना ही असत्य क्यों न हो, यह तो निर्विवाद मानना ही पड़ता है कि जैसे कीमियागिरी अथवा कृत्रिम रूप से सोना बनाने के असफल प्रयत्नों पर ही आधुनिक रसायन विज्ञान की उत्पत्ति और विकास आधारित, है उसी प्रकार फलित ज्योतिष में विश्वास होने के कारण ही ज्योतिष विज्ञान की उन्नति हुई है।

परिच्छेद २

खगोलीय नाप-तौल के साधन

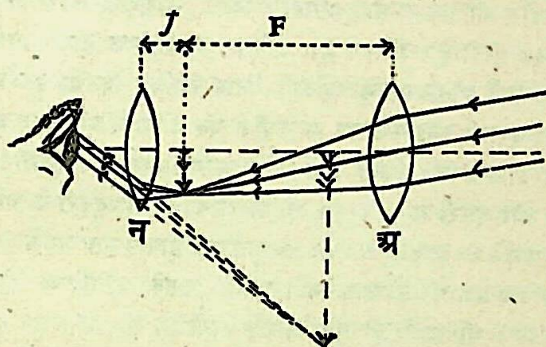
दूरबीन

तारों के विषय में हमारा समस्त ज्ञान उन प्रकाशकिरणों से प्राप्त होता है जो तारों से हमारे पास पहुँचती हैं। अतः स्पष्ट है कि इस ज्ञान के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण साधन दूरबीन है। इसके द्वारा दूर की वस्तुओं को देखने में जो मदद हमें मिलती है उसके दो कारण हैं। एक तो यह बहुत दूर होने पर भी वस्तुओं के आकार को बहुत बड़ा करके दिखाती है और दूसरे उन वस्तुओं से आनेवाला प्रकाश भी हमें अधिक मात्रा में प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि सूर्य, चन्द्रमा तथा कुछ ग्रहों के बिम्बों पर दिखाई देनेवाली चीजों को हम ज्यादा स्पष्ट देख सकते हैं और जिन अत्यन्त मन्द ज्योति वाले छोटे-छोटे उपग्रहों को तथा तारों को खाली आँख से देख सकना संभव ही नहीं है, उन्हें भी अच्छी तरह देख सकते हैं। इन्हीं दोनों गुणों में उन्नति करके आज की अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीनें बनायी गयी हैं।

यद्यपि हम यहाँ दूरबीन की रचना का विस्तृत वर्णन करना नहीं चाहते, तथापि दो-एक महत्त्वपूर्ण बातें उसके सम्बन्ध में बता देना अनुचित न होगा। दूरबीन का प्रधान भाग वह लैन्स अ या गोलीय दर्पण होता है जिसे अभिदृश्य[1] कहते हैं (चित्र २.१)। दूर के किसी एक बिन्दु से आने

1. Objective

वाली समस्त प्रकाशकिरणों को यह एक ही विन्दु पर एकत्रित कर देता है। इस विन्दु को उस अभिदृश्य का फ़ोकस कहते हैं और



आकृति २.१

अभिदृश्य से फ़ोकस की दूरी F को उसका फ़ोकस अन्तर[1] कहते हैं। यह अभिदृश्य दूर की वस्तु का वास्तविक प्रतिविम्ब अपने फ़ोकस पर बना देता है और जितना ही बड़ा F होता है उतना ही बड़ा यह प्रतिबिम्ब भी बनता है।

दूरबीन का दूसरा भाग वह लैन्स या लैन्स-समूह होता है जिसमें होकर हमारा नेत्र अभिदृश्य द्वारा बनाये हुए प्रतिबिम्ब को देखता है। इसे अभिनेत्र अथवा नेत्रिका[2] कहते हैं। इसका फ़ोकस-अन्तर f जितना छोटा होता है उतना ही आवर्धित यह प्रतिविम्ब दिखाई देता है।

दूरबीन की आवर्धन-क्षमता इन दोनों फ़ोकस-अन्तरों के अनुपात $\frac{F}{f}$ पर अवलम्बित होती है। स्पष्ट है कि जितना ही अधिक यह अनुपात होता

1. Focal length 2. Eye-piece

है उतने ही अधिक बड़े प्रतिविम्ब दूरबीन में से दिखाई देते हैं। अतः शक्तिशाली दूरबीनें प्रायः १००-१५० फुट लम्बी होती हैं।

दूरबीन की प्रकाश-संग्रह-क्षमता स्पष्टतः अभिदृश्य के क्षेत्रफल पर अवलम्बित होती है। जितना ही अधिक यह क्षेत्रफल होगा उतना ही अधिक किरणें प्रतिबिम्ब में पहुँचेंगी। मान लीजिए कि दो दूरबीनों के अभिदृश्य बराबर फ़ोकस-अन्तर वाले हैं। अतः दोनों में प्रतिबिम्ब बराबर विस्तार वाले बनेंगे। किन्तु यदि अभिदृश्य का व्यास एक दूरबीन में १ इंच हो और दूसरी में २०० इंच, तो पहली की अपेक्षा दूसरी के अभिदृश्य का क्षेत्रफल २००×२००=४०००० गुना बड़ा होगा। अतः उसमें ४०००० गुना अधिक प्रकाश प्रवेश करेगा। फलतः उसके प्रतिबिम्ब की द्युति (ब्राइटनेस) भी इतनी ही गुनी अधिक होगी।

बहुत बड़ी दूरबीनों के अभिदृश्य बहुधा गोलीय दर्पण[1] ही होते हैं क्योंकि बहुत बड़े व्यास का लैन्स बनाना बड़ा कठिन है। प्रायः ४० इंच से अधिक व्यास के लैन्स अभी तक नहीं बन सके हैं। इतने बड़े और मोटे काचखंड को पूर्णतः समांगी[2] बनाना तथा उसे हवा के छोटे-छोटे बुलबुलों से सर्वथा मुक्त कर देना आसान काम नहीं है। इस प्रकार की छोटी-सी भी त्रुटि रह जाने पर प्रतिबिम्ब स्पष्ट और निर्दोष नहीं बन सकते। किन्तु उत्कृष्ट गोलीय दर्पण तो २०० इंच व्यास के भी बना लिये गये हैं। ये पहले तो धातु के बनाये जाते थे किन्तु अब तो ये भी काँच के ही बनाये जाते हैं। ये बहुत भारी होते हैं। अमरीका की माउन्ट विलसन वेधशाला की १०० इंच व्यास वाली दूरबीन के अभिदृश्य का वजन लगभग ४ टन अर्थात् १०० मन से अधिक है। और माउन्ट पैलोमर[3] वेधशाला की दूरबीन के अभिदृश्य का व्यास तो २०० इंच है। उसका वजन इससे भी कई गुना ज्यादा है।

1. Spherical mirror 2. Homogeneous 3. Mt. Palomer

इन दूरवीनों के सम्बन्ध में एक बात बड़ी आश्चर्यजनक है। यद्यपि इनसे चन्द्रमा तथा ग्रहों के प्रतिविम्ब तो बहुत आवर्धित बनते हैं, किन्तु तारों के प्रतिबिम्ब बहुत ही छोटे आते हैं। इसका कारण यह है कि तारे हम से इतनी अधिक दूरी पर अवस्थित हैं कि उनकी समस्त किरणें, चाहे वे तारे के किसी भी भाग से आती हों, बिलकुल समान्तर होती हैं। यदि अभिदृश्य इन सब किरणों को फ़ोकस पर एकत्रित कर देता तब तो तारे का प्रतिबिम्ब ज्यामितीय बिन्दु के समान अत्यन्त ही छोटा हो जाता। किन्तु वास्तव में प्रकाश तरंगमय होता है और उसमें विवर्तन[1] का गुण होता है। अतः समान्तर किरणों वाला प्रकाश भी एक ज्यामितीय बिन्दु पर एकत्रित नहीं होता। वह थोड़ा-सा फैल जाता है और फ़ोकस पर हमें छोटे-से व्यास की एक प्रदीप्त मंडलिका[2] दिखाई देती है। इसी को हम तारे का प्रतिबिम्ब कहते हैं। वास्तव में यह प्रतिविम्ब नहीं है और इससे तारे की आकृति का अथवा उसके विविध अंशों की रचना का कुछ भी पता नहीं चल सकता। इससे तो हमें केवल तारे के अस्तित्व मात्र का ही ज्ञान प्राप्त होता है। और अद्भुत बात यह है कि जितना ही बड़ा दूरबीन के अभिदृश्य का व्यास होता है उतना ही छोटा व्यास तारे के इस तथाकथित प्रतिबिम्ब का होता है। जो मनुष्य पहली बार किसी बड़ी दूरबीन में तारे को देखता है तो उसे बड़ी निराशा होती है, क्योंकि उसमें से तारा बड़ा नहीं दिखाई देता। वह तो बहुत ही छोटा दिखाई देता है। और शायद वह सोचने लगता है कि तारों को दूरबीन में से देखने से कुछ भी लाभ नहीं।

किन्तु ऐसी बात नहीं है। प्रतिबिम्ब छोटा होने पर भी दूरबीन से दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लाभ होते हैं। एक तो तारे के प्रतिबिम्ब की द्युति बहुत ही बढ़ जाती है, क्योंकि मनुष्य के नेत्र के लैन्स की अपेक्षा २०० इंच

1. Diffraction 2. Disc

वाली दूरबीन का व्यास प्राय: ३००० गुना और क्षेत्रफल लगभग दस लाख गुना बड़ा होता है। अतः दूरबीन दस लाख गुना अधिक प्रकाश तारे के प्रतिविम्ब में एकत्रित कर देती है। और इस प्रतिविम्ब का क्षेत्रफल भी दस लाख गुना छोटा होता है। फलतः प्रतिविम्ब की द्युति १० लाख × १० लाख = $१०^{१२}$ गुनी हो जाती है। यही कारण है कि लाखों तारे जो खाली आँख से नहीं दिखाई देते, दूरबीन के द्वारा आसानी से दिखाई दे जाते हैं।

बड़े अभिदृश्य से दूसरा बड़ा लाभ यह है कि दूरबीन की विभेदन-क्षमता[1] बहुत बढ़ जाती है। यदि दो तारे बहुत ही पास-पास हों अर्थात् लगभग एक-ही दिशा में अवस्थित हों तो खाली आँख से या छोटी दूरबीन से उनके प्रतिबिम्ब अलग-अलग नहीं दिखाई देते। बड़े होने के कारण वे उपपतित[2] होकर परस्पर मिल जाते हैं और हमें ऐसा मालूम होता है मानो वहाँ एक ही तारा है, दो नहीं। बड़े अभिदृश्य वाली दूरबीन से दोनों प्रतिबिम्ब स्पष्टतः अलग अलग दिखाई दे जाते हैं। चन्द्रमा जैसे बड़े बिम्ब को देखने में भी इस विभेदन-क्षमता से लाभ होता है, क्योंकि उसके पृष्ठ पर स्थित अत्यन्त पास-पास की वस्तुओं के प्रतिबिम्ब मिलकर एकाकार नहीं हो जाते। वे साफ़-साफ़ और अलग-अलग दिखाई देते हैं। इससे हम चन्द्रमा का अधिक स्पष्ट और यथार्थ चित्र देख सकते हैं।

आकाश में तारों के स्थान को यथार्थतापूर्वक मालूम करने में भी दूरबीन बहुत सहायता करती है, क्योंकि दूरबीन के अक्ष को ठीक तारे से आनेवाली प्रकाशकिरण की दिशा में समंजित करने पर ही प्रतिबिम्ब उसके दृष्टि-क्षेत्र[3] के केन्द्र में दिखाई देगा। जितनी ही लम्बी दूरबीन होगी

1. Resolving power
2. Overlap
3. Field of view

अर्थात् जितना ही लम्बा उसके अभिदृश्य का फ़ोकस-अन्तर होगा, उतनी ही अधिक यथार्थता से तारे की दिशा को निर्दिष्ट किया जा सकेगा। इस कार्य के लिए दूरबीनों का आरोपण[1] इस प्रकार किया जाता है कि वे दो समकोणिक अक्षों पर आसानी से घुमायी जा सकें। इनमें से एक अक्ष तो पृथ्वी से ध्रुव तारे को जोड़नेवाली रेखा से समान्तर रखा जाता है। इसे ध्रुवीय अक्ष[2] कहते हैं। इन दोनों अक्षों पर घुमाकर दूरबीन को तारे की दिशा में संधानित कर लिया जाता है और पेच से उसे इसी स्थिति में कस दिया जाता है। अब दूरबीन को केवल ध्रुवीय अक्ष पर ही घुमाते रहने से तारा बराबर दृष्टि-क्षेत्र में बना रहता है। इस प्रकार के आरोपण को निरक्षीय आरोपण[3] कहते हैं।

इन बड़ी दूरबीनों का भार बहुत अधिक होता है। उपर्युक्त १०० इंच वाली दूरबीन का वजन लगभग ३००० मन है। इसलिए इनके आरोपण के लिए इस्पात का बड़ा विशाल और मजबूत आधार खड़ा करना पड़ता है। और दूरबीन को आसानी से इच्छानुसार घुमाने के लिए बिजली की मोटर का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। तथा कोणीय अंशांकन के द्वारा तारे के निर्देशांकों को नापने की भी सुविधा प्रस्तुत करनी पड़ती है। फलतः ऐसी बड़ी दूरबीन को वेधशाला में स्थापित करने में लाखों रुपया खर्च हो जाता है। ये वेधशालाएँ ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर बनायी जाती हैं।

इन दूरबीनों में फोटोग्राफी से तारों के चित्र खींचने का भी प्रबन्ध रहता है। इसके लिए नेत्रिका के स्थान में दूरबीन के फोकस पर फ़ोटो का प्लेट रखने का इन्तज़ाम कर दिया जाता है। किन्तु पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन के कारण तारों के प्रतिबिम्ब निरन्तर अपने स्थान से हटते रहते हैं और प्लेट पर प्रत्येक तारे का प्रतिबिम्ब एक रेखा अंकित कर देता है।

1. Mounting 2. Polar axis
3. Equatorial mounting

इस कठिनाई को दूर करने के लिए दूरबीन को भी ध्रुवीय अक्ष पर निरन्तर घुमाया जाता है और घड़ी के द्वारा इस घूर्णन का वेग इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है कि प्लेट पर तारे का प्रतिविम्ब बिलकुल अचल रहे। इससे प्रतिविम्ब अत्यन्त छोटे-से विन्दु के रूप में प्राप्त हो जाता है और तारे का प्रकाश उस पर वहुत देर तक पड़ता रह सकता है। अतः अत्यन्त मन्द ज्योति वाले तारों के भी अच्छे चित्र प्राप्त हो सकते हैं और इस प्रकार प्राप्त किये हुए चित्रों से तारों की पारस्परिक दूरियों के नाप प्रमापी सूक्ष्मदर्शी[1] के द्वारा बहुत अधिक यथार्थतापूर्वक प्राप्त किये जा सकते हैं।

इन दूरबीनों के अतिरिक्त अब एक नयी प्रकार की दूरबीनें भी बनायी गयी हैं जिन्हें रेडियो-दूरबीनें[2] कहते हैं। इनमें प्रकाश-तरंगों के स्थान में रेडियो-तरंगों का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक तारे से साधारण प्रकाश के अतिरिक्त रेडियो-तरंगें भी पृथ्वी पर पहुँचती हैं। इन्हीं तरंगों को संग्रह करना इन दूरबीनों का काम है। इनमें अभिदृश्य लैन्स या दर्पण नहीं होता। उसके स्थान में विशेष प्रकार के एरियलों[3] का समुदाय होता है जिसका विस्तार १५०-२०० फुट, सम्भवतः १००० फुट तक हो सकता है। इतने विशाल क्षेत्र पर पड़नेवाली समस्त रेडियो-तरंगों का ये दूरबीनें संग्रह कर लेती हैं। अतः इनकी सहायता से ऐसे मन्द-ज्योति तारों के भी अस्तित्व का पता चल जाता है जिन्हें देखना या जिनका चित्र खींचना बड़ी से बड़ी प्रकाशीय दूरबीन के द्वारा भी सम्भव नहीं था।

तारों की खगोलीय स्थिति के नाप के अतिरिक्त हम उनके प्रकाश के द्वारा और भी कई प्रकार की बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तारे की ज्योति कितनी है अर्थात् उससे कितना प्रकाश प्रति सेकंड हमारे पास पहुँचता है? दृश्य प्रकाश के अतिरिक्त अदृश्य विकिरण ऊर्जा[4] अथवा ऊष्मा

1. Micrometer microscope
2. Radio-telescopes
3. Alerial
4. Radiantenergy

नीकित पहुँचती है, अर्थात् अवरक्त[1] तथा पराबैंगनी[2] विकिरण जो आँख से दिखाई नहीं देता उसको लेकर कुल कितनी ऊर्जा तारे से चारों ओर फैलती है? उसके प्रकाश का स्पैक्ट्रम कैसा है अर्थात् उसमें किस किस तरंग-दैर्ध्य की तरंगें कितने कितने परिमाण में विद्यमान हैं? ये तीनों प्रकार के माप भी दूरबीन की ही सहायता से लिये जाते हैं।

ज्योति का नाप

इसके लिए दूरबीन में बने हुए तारे के प्रतिबिम्ब की ज्योति की तुलना किसी कृत्रिम मानक (स्टैंडर्ड) बिन्दुदीप की ज्योति से की जाती है और इसके लिए ज्योतिमापन[3] की समस्त विधियाँ काम में लायी जाती हैं। नेत्रीय ज्योतिमापकों[4] से तो केवल यही पता चलता है कि दृश्य प्रकाश की ऊर्जा कितनी मात्रा में आती है। किन्तु ज्योति का नाप बहुधा तारों के फ़ोटो से भी किया जाता है। इसमें प्लेट पर बने प्रतिबिम्ब की कृष्णता[5] अथवा घनत्व का नाप किया जाता है। इस नाप में अदृश्य पराबैंगनी तरंगें भी सम्मिलित रहती हैं। किन्तु साधारणतः लाल प्रकाश का प्रभाव प्लेट पर नहीं पड़ता। फलतः नेत्रीय तथा फ़ोटोग्राफीय ज्योतिमापन के परिणाम एक-से नहीं होते, और उनमें उचित संशोधन करके ही विश्वसनीय नाप प्राप्त किया जा सकता है।

ज्योतिमापन की तीसरी युक्ति में सिलीनियम सैल[6] का उपयोग किया जाता है और उसे दूरबीन में इस प्रकार लगा दिया जाता है कि तारे का फ़ोकसित प्रतिबिम्ब उस पर पड़े। सिलीनियम धातु में यह गुण होता है कि उस पर प्रकाश पड़ने से उसका वैद्युत प्रतिरोध[7] बढ़ जाता है।

1. Infra-red 2. Ultra-violet 3. Photometer
4. Visual photometers 5. Blackness
6. Selenium cell 7. Electrical resistance

इस प्रतिरोध की वृद्धि को नाप कर प्रकाश की तीव्रता का अनुमान कर लिया जाता है। इसी प्रकार की वैद्युत युक्ति एक और भी है। इसमें प्रकाश-वैद्युत सेल को दूरबीन के फ़ोकस-तल में स्थापित कर दिया जाता है। इस पर पड़नेवाले प्रकाश की तीव्रता के अनुरूप ही विद्युत्-धारा इसमें से प्रवाहित होने लगती है। अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी यह धारा प्रवर्धित करके यथार्थतापूर्वक नापी जा सकती है।

विकिरण ऊर्जा का नाप

इसके लिए ताप-वैद्युत युग्म[1] का उपयोग किया जाता है। इसमें दो विभिन्न धातुओं (यथा ऐन्टीमनी और बिस्मथ) की सन्धि[2] को काला रँगकर दूरबीन के फ़ोकस पर रख दिया जाता है। उस पर पड़नेवाले समस्त विकिरण का इसमें अवशोषण हो जाता है और सन्धि का टेम्परेचर बढ़ जाता है। इससे विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है जिसका परिमाण टेम्परेचर की वृद्धि पर अवलम्बित होता है। अतः इस धारा को नाप कर सन्धि का टेम्परेचर मालूम कर लिया जाता है और तब परिकलन द्वारा यह पता चल जाता है कि ऊष्मा के रूप में कितना विकिरण तारे से आकर प्रति सैंकड उस सन्धि पर पड़ता है। इस नाप का दूसरा साधन है बोलो-मीटर[3]। इसमें दूरबीन समस्त विकिरण को प्लैटिनम धातु की छोटी-सी और बहुत पतली पत्ती पर फ़ोकस कर देती है। इससे पत्ती का टेम्परेचर बढ़ जाता है। फलतः उसके वैद्युत प्रतिरोध में वृद्धि हो जाती है और यह यथार्थतापूर्वक नाप ली जाती है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि इस प्रकार तारे के समस्त प्रकाश या विकिरण का वास्तविक मान ज्ञात हो जायगा। हमारी पृथ्वी के चारों

1. Thermocouple
2. Junction
3. Bolometer

ओर वायुमंडल है। जब तारे का प्रकाश इस वायुमंडल में होकर आता है तो उसका कुछ भाग इस वायुमंडल ही में अवशोषित हो जाता है। अतः दूरबीन में जो विकिरण पहुँचता है वह कम होता है। इस अवशोषित भाग को नापने के उपाय भी मालूम कर लिये जाते हैं और उपर्युक्त यन्त्रों से नापे हुए मानों में उचित संशोधन करके तारों के विकिरण का वास्तविक मान भी ज्ञात हो जाता है।

स्पैक्ट्रम

यह तो अब सभी जानते हैं कि प्रकाश तरंगमय होता है और भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश की तरंगों की लम्बाइयाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। तरंग की लम्बाई को तरंग-दैर्घ्य कहते हैं। लाल प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य बड़ा (प्रायः ७×१०^{-५} सेंमी०) होता है और पीले, हरे, नीले बैंगनी रंगों के प्रकाशों के तरंग-दैर्घ्य उत्तरोत्तर छोटे होते हैं। बैंगनी प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य प्रायः ४×१०^{-५} सेंमी० होता है। जिसे हम श्वेत प्रकाश कहते हैं उसमें सभी लम्बाइयों की तरंगें विद्यमान होती हैं। जब श्वेत प्रकाश किसी प्रिज्म[1] या ग्रेटिंग[2] में से जाता है तो ये विभिन्न लम्बाइयों की तरंगें पृथक् होकर अलग अलग दिशाओं में चली जाती हैं। जिस उपकरण के द्वारा ये विभिन्न तरंगें क्रमानुसार विभिन्न स्थानों पर फ़ोकस हो जाती हैं उसे स्पैक्ट्रमदर्शी[3] कहते हैं और उसके द्वारा विभिन्न रंगों का जो चित्र प्राप्त होता है उसे स्पैक्ट्रम या वर्णक्रम कहते हैं। यदि किसी प्रकाश में कुछ विशेष तरंग-दैर्घ्यों का अभाव हो तो स्पैक्ट्रम में उन तरंग-दैर्घ्यों के स्थान खाली रहते हैं अर्थात् वहाँ पतली-पतली काली रेखाएँ दिखाई देती हैं। यदि किसी प्रकाश में केवल कुछ खास-खास तरंग-दैर्घ्य ही विद्यमान हों तो स्पैक्ट्रम में भी केवल थोड़ी-सी विभिन्न रंगों की दीप्त

1. Prism 2. Grating 3. Spectroscope

रेखाएँ यथास्थान दिखाई देती हैं। इस प्रकार प्रकाश का विश्लेषण करके स्पैक्ट्रम हमें यह बता देता हैं कि जो प्रकाश उस पर पड़ रहा है उसमें कौन-कौन से तरंग-दैर्घ्य विद्यमान हैं।

तारे के प्रकाश का स्पैक्ट्रम

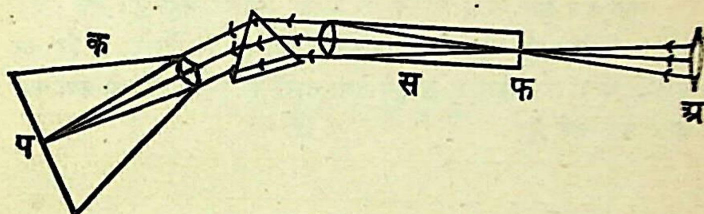
तारों के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके प्रकाश का स्पैक्ट्रमीय विश्लेषण करके यह मालूम कर लिया जाय कि उनमें कौन-कौन से तरंग-दैर्घ्य कितनी-कितनी मात्राओं में विद्यमान हैं। इसके लिए दूरबीन के साथ प्रिज्म या ग्रेटिंग का संयोग करके स्पैक्ट्रम प्राप्त कर लिया जाता है। यह संयोग दो प्रकार से किया जाता है।

एक युक्ति तो यह है कि अभिदृश्य के निकट खूब लम्बा-चौड़ा किन्तु छोटे कोण का एक प्रिज्म रख दिया जाता है। इससे प्रत्येक तारे का प्रतिबिम्ब फैलकर स्पैक्ट्रम का रूप प्राप्त कर लेता है। इस स्पैक्ट्रम की चौड़ाई बहुत कम होती है क्योंकि तारे के प्रतिबिम्ब का व्यास बहुत छोटा होता है। और इसी कारण साधारण स्पैक्ट्रमदर्शी के समान यहाँ किसी स्लिट[1] की भी आवश्यकता नहीं होती। किन्तु लगभग १० इंच से बड़े अभिदृश्य के साथ यह युक्ति काम में नहीं आ सकती।

दूसरी विधि में पूरे स्पैक्ट्रमलेखी[2] का उपयोग किया जाता है और वह इस प्रकार रखा जाता है कि उसके समान्तरित्रस की बारीक स्लिट दूरबीन के फ़ोकस फ पर रहे और तारे का प्रतिबिम्ब इस स्लिट पर बने[3]। दूरबीन को इस प्रकार घुमाया भी जाता है कि पृथ्वी का अक्षीय घूर्णन होते रहने पर भी यह प्रतिबिम्ब बराबर स्लिट पर ही बना रहे। यह विधि सूर्य, चन्द्रमा तथा ऐसे ग्रहों के स्पैक्ट्रम प्राप्त करने के लिए अधिक उपयोगी है जिनके प्रतिबिम्ब बड़े होते हैं। इस उपाय से स्पैक्ट्रम का फ़ोटो लेने में भी बहुत

1. Slit 2. Spectrograph ३. देखो चित्र २.२

सुविधा होती है, क्योंकि स्पैक्ट्रमलेखी की स्लिट पर तारे का प्रकाश कई घंटों तक बराबर डाला जा सकता है। अतः बहुत मन्द ज्योति के तारों



आकृति २.२

का स्पैक्ट्रम भी कैमरा क के प्लेट प पर आसानी से अंकित हो जाता है। इसके अतिरिक्त अभिदृश्यीय प्रिज्म की विधि से स्पैक्ट्रमीय रेखाओं की सूक्ष्म विलक्षणताओं का निरीक्षण सम्भव नहीं है, किन्तु स्लिटयुक्त स्पैक्ट्रमलेखी के द्वारा इन्हें नापने में कोई कठिनाई नहीं होती।

इस नाप को यथार्थतापूर्ण बनाने के लिए स्पैक्ट्रम-लेखी में ऐसी व्यवस्था रहती है कि प्रत्येक तरंग-दैर्घ्य की स्पैक्ट्रमीय रेखा अत्यन्त पतली तथा स्पष्ट अंकित हो। दो अत्यन्त पास-पास स्थित रेखाओं को पृथक्-पृथक् दिखा देने की शक्ति को विभेदकता[1] कहते हैं। यह अब बहुत बढ़ा ली गयी है। इसके अतिरिक्त इन रेखाओं के तरंग-दैर्घ्य नापने की भी बहुत अच्छी और यथार्थतापूर्ण युक्तियाँ मालूम कर ली गयी हैं और इस नाप में आजकल १/१०००० प्रतिशत की भी भूल नहीं रहती।

किन्तु स्पैक्ट्रम की रेखाओं का केवल तरंग-दैर्घ्य ही नापना काफ़ी नहीं होता। यह भी नापना आवश्यक होता है कि उनकी तीव्रता कितनी है। अर्थात् किस-किस तरंग-दैर्घ्य का कितना-कितना प्रकाश स्पैक्ट्रम में

1. Resolving power

विद्यमान है। इस कार्य के लिए स्पैक्ट्रमीय ज्योतिमापी[1] का उपयोग किया जाता है।

यहाँ इन सब यन्त्रों का वर्णन करना अभीष्ट नहीं है। यह वर्णन भौतिक-विज्ञान की पुस्तकों में मिलेगा। हमें तो यह देखना है कि इन उत्कृष्ट यन्त्रों की सहायता से सूर्य तथा तारों के सम्बन्ध में हमें क्या क्या बातें ज्ञात हुई हैं।

1. Spectro-photometer

परिच्छेद ३

पृथ्वी, सूर्य तथा चन्द्रमा

पृथ्वी

तारों के विषय में कुछ लिखने से पहले पृथ्वी तथा सूर्य और चन्द्रमा के विषय में भी कुछ थोड़ी-सी बातें कह देना आवश्यक जान पड़ता है। यद्यपि तारों से पृथ्वी का कोई सम्बन्ध प्रत्यक्षतः नहीं दिखाई देता किन्तु तथ्य यह है कि जिस प्रकार पृथ्वी के विषय में हमारा बहुत-सा ज्ञान तारों के अध्ययन से ही प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार पृथ्वी सम्बन्धी कुछ मूल बातों के ज्ञान के बिना हम तारों के अध्ययन में भी अग्रसर नहीं हो सकते। ये सामान्य बातें प्रत्येक बालक को भूगोल में पढ़ायी जाती हैं। अतः यहाँ हम इनका विस्तृत विवेचन न करके केवल संक्षेप में ही उनका सारांश देकर सन्तोष करेंगे।

(१) पृथ्वी चपटी नहीं है। वह गेंद की तरह गोलाकार पिंड है। उसका व्यास लगभग १२,७०० किलोमीटर (७,९२० मील) और परिधि ४०,००० कि० मी० (२४,८८० मील) है।

(२) यह पिंड एक अक्ष पर निरन्तर एक-समान वेग से घूमता रहता है और इसका एक चक्कर २४ घंटे अथवा एक दिन में पूरा होता है। इसके कारण पृथ्वी का निरक्षीय प्रदेश प्रायः १६०० कि० मी० (लगभग १००० मील) प्रति घंटे के वेग से पश्चिम से पूर्व की ओर चलता रहता है।

(३) घूर्णन के इस अक्ष की दिशा उत्तर-दक्षिण है और उसके दोनों छोरों को क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव कहते हैं। इन ध्रुवीय प्रदेशों

में पृथ्वी थोड़ी-सी चपटी हो गयी है। अर्थात् पृथ्वी का ध्रुवीय व्यास निरक्षीय व्यास की अपेक्षा लगभग ४३ कि० मी० (२७ मील) छोटा हैं।

(४) पृथ्वी का पिंड निरन्तर सूर्य की परिक्रमा भी करता रहता है और एक चक्कर ३६५-१/४ दिनों में पूरा कर लेता है। यही हमारा एक वर्ष है। इस परिक्रमा में पृथ्वी का वेग लगभग २९.६ कि० मी० (१८-½ मील) प्रति सेकंड अथवा लगभग १,०६,५०० कि० मी० (६६,६०० मील) प्रति घंटा होता है।

पृथ्वी के गोलाकार होने के जो अनेक प्रमाण भूगोल में दिये रहते हैं उन्हें यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु चन्द्र-ग्रहण के समय चन्द्र-विम्ब पर पृथ्वी की जो वृत्ताकार छाया पड़ती है वही पृथ्वी की गोलाकृति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है।

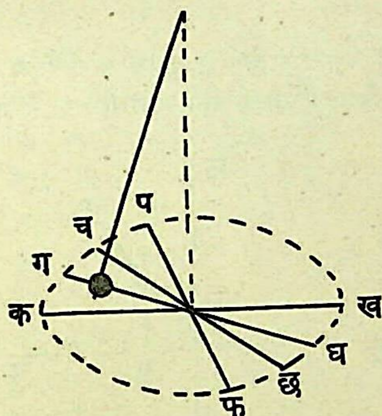
पृथ्वी का घूर्णन

यद्यपि हमें समस्त तारा-जगत् पृथ्वी के चारों ओर घूमता दिखाई देता है तथापि यह समझना कठिन नहीं कि इस प्रेक्षित गति का कारण यह भी हो सकता है कि तारा-जगत् तो वास्तव में अचल है और पृथ्वी ही अपने अक्ष पर घूम रही है। इस दूसरी परिकल्पना की सत्यता की संभावना तब और भी प्रबल हो जाती है जब हम दूरबीन में देखते हैं कि सूर्य तथा बहुत से ग्रहों में भी ऐसा अक्षीय घूर्णन विद्यमान हैं। किन्तु अब तो पृथ्वी के घूर्णन के ऐसे भी भौतिक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनका तारों के प्रेक्षण से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। उनमें से कुछ का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

(१) पृथ्वी के घूर्णन का सबसे प्रमुख प्रमाण तो फ़ूको[1] का लोलक[2] है। सन् १८५१ में सबसे पहले यह प्रमाण उपस्थित किया गया था।

1. Foucault 2. Pendulum

इसमें प्रायः ६० मीटर (२०० फ़ुट) ऊँची मीनार पर से एक भारी लोहे का गोला पतले तार से लटकाया गया था। इस गोले को एक ओर खींच-



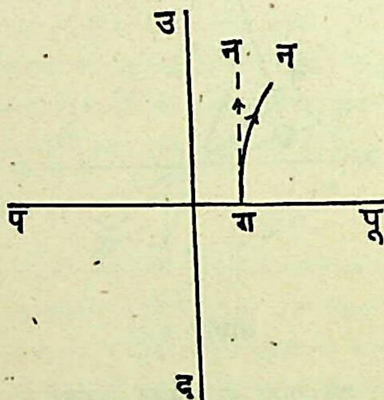
आकृति ३.१

कर छोड़ देने पर इसके दोलन किसी विशेष ऊर्ध्वाधर समतल (क ख) में होने लगते हैं (चित्र ३.१)। यदि पृथ्वी स्थिर होती तो अवश्य ही यह दोलन-तल भी स्थिर रहता। किन्तु होता यह है कि यह दोलन-तल धीरे-धीरे ऊर्ध्वाधर अक्ष पर घूमता जाता है और लोलक क्रमशः ग घ, च छ, प फ आदि रेखाओं पर दोलन करने लगता है।

यदि यह प्रयोग उत्तरी ध्रुव पर किया जाय तो २४ घंटों में दोलन-तल एक चक्कर पूरा करके पुनः पहले वाली दिशा में पहुँच जाता है। दोलन-तल के घूर्णन का कोणीय वेग प्रयोग-स्थान के अक्षांश पर अवलम्बित होता है। यदि अक्षांश λ हो तो घूर्णन वेग होगा। १५ Sin λ अंश प्रति घण्टा। निरक्षीय स्थान पर $\lambda = 0$ होता है। वहाँ लोलक का दोलन-तल बिलकुल भी नहीं घूमता। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में यह दोलन-तल घड़ी की सुइयों

की दिशा में घूमता दिखाई देता है और दक्षिणी गोलार्ध में विपरीत दिशा में। वाशिंगटन में अमरीका की नेशनल वैज्ञानिक अकादमी के भवन में फ़ूको का लोलक लगा हुआ है, जिसे नित्य प्रति सैकड़ों दर्शक देखने आते हैं।

(२) यदि उत्तरी गोलार्ध में बन्दूक से गोली ग (चित्र ३.२) से ठीक उत्तर की दिशा में छोड़ी जाय तो देखा गया है कि वह निशाने न



आकृति ३.२

से पूर्व दिशा की ओर थोड़ी-सी हट जाती है और न पर जा पहुँचती है। दक्षिणी गोलार्ध में गोली पश्चिम की ओर हट जाती हैं। किन्तु यदि गोली उत्तर से दक्षिण की ओर चलायी जाय तो वह उत्तरी गोलार्ध में पश्चिम की ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध में पूर्व की ओर हटती है। इसका कारण स्पष्टतः पृथ्वी का घूर्णन ही है, जिसके कारण समस्त पृथ्वीतल पश्चिम से पूर्व की ओर चलता रहता है। किन्तु उसका रेखीय वेग सर्वत्र बराबर नहीं होता। गोल पिंडाकार होने के कारण अक्ष से पृथ्वी के पृष्ठ की दूरी निरक्ष पर अधिकतम होती है और दोनों ध्रुवों की ओर

क्रमशः घटती जाती है। अतः उसका रेखीय वेग भी निरक्ष पर अधिकतम होता है और ध्रुवों की ओर क्रमशः घटता जाता है। जिस समय बन्दूक से गोली निकलती है उस समय वन्दूक तथा गोली भी पृथ्वी-तल के साथ पूर्व की ओर चलती रहती हैं और उनका इस दिशा में उतना ही वेग रहता है जितना वहाँ के पृथ्वी-तल का। किन्तु जब निशाना निरक्ष से ध्रुव की ओर हटा हुआ होता है तब पूर्व की दिशा में गोली की अपेक्षा निशाने का वेग कम रहता है। फलतः जब गोली निशाने पर पहुँचती है तो वह निशाने से पूर्व की ओर आगे निकल जाती है।

(३) यदि बहुत ऊँचाई पर से कोई वस्तु नीचे गिरायी जाय तो वह सीधी ऊर्ध्वाधर नहीं गिरती। वह पूर्व की दिशा में हटकर गिरती है। इसका भी स्पष्टतः कारण यही है कि पृथ्वी के घूर्णन के कारण ऊँचे स्थान का पूर्वाभिमुखी वेग पृथ्वीतल के वेग से अधिक होता है।

(४) गतिविज्ञान का नियम है कि यदि कोई वस्तु किसी अक्ष पर वेग से घूम रही हो तो उसके घूर्णन-अक्ष की दिशा बाह्य बल लगाये बिना बदल नहीं सकती। अतः यदि कोई भारी पहिया ऐसा बनाया जाय कि बिजली की मोटर उसे अत्यन्त वेग से बराबर घुमाती रहे और उसमें ऐसी व्यवस्था भी रहे कि उसकी धुरी चाहे जिस दिशा में स्वतंत्रतापूर्वक मुड़ सके, तब उपर्युक्त नियमानुसार इस धुरी की नभोमंडलीय दिशा में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। अर्थात् यदि वह किसी विशेष तारे की ओर संधानित हो तो बराबर उसी तारे की ओर संधानित बनी रहेगी। ऐसे पहिये को घूर्णाक्ष-स्थापी[1] कहते हैं। मान लीजिए कि प्रारम्भ में हमने उसकी धुरी को ठीक पूर्व दिशा में क्षैतिज-तल के किसी तारे की सीध में रख दिया। तब हम देखेंगे कि ज्यों-ज्यों तारा ऊपर उठता जायगा त्यों-त्यों धुरी का पूर्वी सिरा भी क्षैतिज-तल से ऊपर की ओर उठता जायगा। इसका स्पष्ट

1. Gyrostat

अर्थ यह होगा कि पृथ्वीतल पूर्व की दिशा में नीचे की ओर झुकता जाता है। और यदि व्यवस्था ऐसी हो कि हमारे पहिये की धुरी सदा क्षैतिज तल में ही रहने के लिए बाध्य हो किन्तु इसी तल में चाहे जिस दिशा में स्वतंत्रतापूर्वक मुड़ सके, तो हम देखेंगे कि धुरी धीरे-धीरे मुड़कर अन्त में ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में जाकर स्थिर हो जायगी। जिस प्रकार दंड-चुम्बक का चुम्बकीय अक्ष सदा उत्तर-दक्षिण दिशा में पहुँचकर ही स्थिर रहता है, ठीक उसी प्रकार उपर्युक्त पहिये की धुरी भी उत्तर-दक्षिण दिशा में ही स्थिर रहेगी। अतः इस पहिये से भी दिक्-सूची या कुतुबनुमा का काम लिया जा सकता है। यह उपकरण घूर्णाक्ष-दिक्सूची[1] कहलाता है। यह लोहे के बने जहाजों में चुम्बकीय दिक्-सूची से अधिक अच्छा काम करता है क्योंकि उस की दिशा पर लोहे के चुम्बकत्व का कुछ भी असर नहीं होता। इस उपकरण की सफलता ही स्पष्टतः पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन का अच्छा प्रमाण है।

(५) हम कह चुके हैं कि पृथ्वी का निरक्षीय व्यास ध्रुवीय व्यास की अपेक्षा कुछ बड़ा है। इसका भी कारण पृथ्वी का घूर्णन ही है। इस घूर्णन के कारण पृथ्वी के प्रत्येक कण पर एक अपकेन्द्र वल[2] लगता है जो उसे अक्ष से दूर हटाने का प्रयत्न करता है। गति के नियमों के अनुसार यह वल घूर्णनशील कण के रेखीय वेग के वर्ग का समानुपाती होता है। अतः निरक्षीय प्रदेश में इस वल का मान अधिक होता है और ध्रुवों पर इसका बिलकुल अभाव होता है। इसी से पृथ्वीतल के निरक्षीय प्रदेश अक्ष से अधिक दूर हट गये हैं।

(६) उपर्युक्त अ प केन्द्र वल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल[3] से विपरीत दिशा में होता है। अतः यह गुरुत्वबल को कम कर देता है। फलतः गुरुत्वीय

1. Gyrostatic compass 2. Centrifugal force
3. Gravitational force

त्वरण[1] का मान निरक्ष पर कम और ध्रुवों पर अधिक हो जाता है। अपकेन्द्र बल के सैद्धान्तिक परिकलन द्वारा यह कमी ठीक उतनी ही निकलती है जितनी कि प्रेक्षणों के द्वारा पायी गयी है।

सूर्य का वार्षिक विस्थापन

यह ऊपर बताया जा चुका है कि सूर्य तथा समस्त तारों की दैनिक गति केवल आभासी है। वास्तव में वे अचल हैं। पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन के कारण वे हमें चलते दिखाई देते हैं। किन्तु अधिक गौर से देखने से मालूम हो जाता है कि दैनिक घूर्णन के अतिरिक्त सूर्य में कुछ अन्य प्रकार की गतियाँ और भी हैं। इनमें जिस गति को साधारण मनुष्य भी जानते हैं वह तो है सूर्य की उत्तर-दक्षिण दिशा वाली गति। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में गरमी के मौसम में सूर्य आकाश में पूर्व दिशा से कुछ उत्तर की ओर अधिक से अधिक (२३$\frac{1}{2}$°) हट जाता है। सरदी में वह दक्षिण की ओर उतना ही हट जाता है। इसी को सूर्य का उत्तरायण और दक्षिणायन होना कहते हैं। २१ जून को सूर्य का उत्तरी विस्थापन अधिकतम होता है, दिन सबसे लम्बा होता है और रात सबसे छोटी। २१ दिसम्बर को दक्षिणी विस्थापन अधिकतम होता है, दिन सबसे छोटा होता है और रात सबसे बड़ी। २१ मार्च और २१ सितम्बर को सूर्य ठीक निरक्षीय तल में रहता है और तब दिन और रात बराबर होते हैं।

ऋतुओं के परिवर्तन का कारण सूर्य की यही गति है। जब सूर्य का उत्तरी विस्थापन अधिकतम होता है तब उसकी किरणें २३$\frac{1}{2}$ डिगरी अक्षांश उत्तर वाले स्थानों पर अभिलम्बतः पड़ती हैं। अतः वहाँ सूर्य से ऊष्मा अधिकतम मात्रा में पहुँचती है और वहाँ गरमी का मौसम हो जाता है। छै महीने के बाद २३$\frac{1}{2}$ डिगरी अक्षांश दक्षिण वाले प्रदेशों में ऐसी ही

1. Acceleration due to gravity

अवस्था हो जाती है और वहाँ गरमी का मौसम हो जाता है। इस समय उत्तरीय प्रदेशों में जाड़े का मौसम हो जाता है।

इस उत्तर-दक्षिण गति के अतिरिक्त सूर्य में एक और भी गति देखी जाती है। सूर्योदय से पहले और सूर्यास्त के पश्चात् जो तारा-मंडल सूर्य के निकटवर्ती आकाश में दिखाई देते हैं वे सदा एक-से नहीं रहते। ऐसा मालूम होता है मानो तारा-जगत् की दैनिक पश्चिमाभिमुखी दौड़ में सूर्य कुछ पीछे रह जाता है, अर्थात् सूर्य अपने प्रतिवेशी तारा-मंडल से पूर्व की ओर बराबर हटता जाता है। और ३६५¼ दिन के बाद फिर उसी तारा-मंडल में पहुँच जाता है। इस वार्षिक गति में सूर्य का पथ जिन जिन तारा-मंडलों में होकर जाता है, वे सब एक खगोलीय बृहत् वृत्त पर अवस्थित होते हैं जिसे क्रान्तिवृत्त या राशिचक्र[1] कहते हैं। इस वृत्त को १२ बराबर भागों में विभक्त कर दिया गया है और प्रत्येक भाग का नाम राशि[2] रख दिया गया है। जिस राशि में जो तारा-मंडल प्रमुख होता है उसी के नाम के द्वारा उस राशि को भी व्यक्त किया जाता है।

पृथ्वी का परिक्रमण

खगोल की अपेक्षा सूर्य के इस वार्षिक विस्थापन का एक संभव कारण तो यह हो सकता है कि सूर्य ही वास्तव में गतिमान् है। किन्तु यह भी तो संभव है कि सूर्य तो अन्य तारों की अपेक्षा अचल ही हो, किन्तु स्वयं पृथ्वी ही गतिमान् हो। जिस प्रकार चलती रेल की खिड़की में से पास के दरख्त दूरवर्ती पहाड़ की अपेक्षा रेल की गति से विपरीत दिशा में दौड़ते हुए दिखाई देते हैं, ठीक वैसे ही गतिमान् पृथ्वी पर से निकटवर्ती सूर्य दूरवर्ती तारा-समूहों की अपेक्षा पूर्व की ओर चलता हुआ दिखाई देता हो। सूर्य के प्रेक्षित विस्थापन को समझने के लिए दोनों ही परिकल्पनाएँ सत्य हो सकती हैं। यही कारण

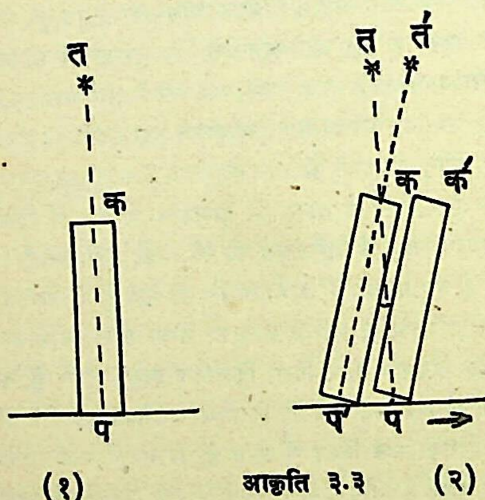
1. Ecliptic 2. Signs of zodiac

है कि अधिकतर प्राचीन ज्योतिषी पृथ्वी को स्थिर तथा सूर्य को गतिमान् मानते थे। बाद में अन्य ज्योतिषियों ने दूसरी परिकल्पना को ठीक माना और इस धारणा के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया कि इससे ग्रहों के ज्योतिषीय परिकलन अत्यन्त सरल हो जाते हैं। यद्यपि यह तर्क सबल था, फिर भी इसे पृथ्वी की गति का प्रमाण नहीं माना जा सकता। किन्तु अब प्रेक्षण के आधुनिक सुग्राही उपायों से इस बात के कई प्रमाण मिल गये हैं कि वास्तव में सूर्य समस्त खगोल की अपेक्षा अचल है और पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। इन प्रमाणों में से कुछ संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं।

(१) **प्रकाश का अपेरण**[1]—यह उस घटना का नाम है जिसमें तारे हमें अपने वास्तविक स्थान से कुछ थोड़े से हटे हुए दिखाई देते हैं। जिस प्रकार वर्षा में चलते समय हमें सीधी ऊर्ध्वाधर पड़ती हुईं बूंदें भी टेढ़ी आती हुई मालूम पड़ती हैं और उनसे बचने के लिए हमें छतरी को आगे की ओर झुकाकर चलना पड़ता है, ठीक उसी तरह तारे से आनेवाले प्रकाश की दिशा भी पृथ्वी के उपर्युक्त परिक्रमण-वेग के कारण कुछ बदली हुई मालूम पड़ती है और हमें दूरबीन को पृथ्वी की गति की दिशा में थोड़ा-सा झुका देना पड़ता है। यद्यपि दूरबीन में से तारा हमें दृष्टिक्षेत्र के केन्द्र में दिखाई देता है किन्तु दूरबीन प्रकाश के वास्तविक पथ की दिशा नहीं बताती। जो दिशा वह बताती है वह प्रकाश के आभासी पथ की दिशा है। तारे के प्रकाश के वास्तविक तथा आभासी पथों के बीच का कोण अपेरण-कोण कहलाता है। इस कोण का परिमाण और दिशा दिन-दिन बदलते रहते हैं, क्योंकि सूर्य के परिक्रमण में पृथ्वी की गति की दिशा और उसका वेग धीरे धीरे बदलते रहते हैं। अपेरण जिस दिशा में आज है, छै महीने बाद उससे विपरीत दिशा में हो जाता है और एक वर्ष के बाद पुनः पहलेवाली दिशा में और उतने ही परिमाण का हो जाता है। यह अपेरण होता बहुत ही कम है और

1. **Aberration**

प्रत्येक तारे के लिए इस कोण का महत्तम मान २० ४७ सैकंड मात्र पाया गया है। जो तारा क्रान्तिवृत्त के ध्रुव पर स्थित होता है उसके अपेरण का मान कभी बदलता नहीं। अतः वह ४१" के कोणीय व्यास वाले छोटे-से वृत्त पर चलता हुआ दिखाई देता है। जो तारा क्रान्तिवृत्त पर ही अवस्थित हो वह ४१" कोणीय लम्बाई की सरल रेखा पर आवर्तन करता दिखाई देता है। और जो तारा ध्रुव तथा क्रान्तिवृत्त के बीच में उन्नतांश[1] β पर अवस्थित होता है उसका अपेरण पथ दीर्घवृत्ताकार होता है। उसका दीर्घ अक्ष क्रान्तिवृत्त से समान्तर दिशा में ४१" लम्बा होता है और लघु अक्ष की लम्बाई ४१"$\times\sin\beta$ होती है। सभी तारों का अपेरण एक वर्ष में एक आवर्तन पूरा कर लेता है।



आकृति ३.२

चित्र ३.३ में त क प तारे से आनेवाली प्रकाश-किरण का वास्तविक पथ है। चित्र (१) में पृथ्वी स्थिर है। तारे को देखने के लिए दूरबीन प क

1. Altitude

को त क प से समान्तर रखना पड़ता है। किन्तु चित्र (२) में पृथ्वी v वेग से दाहिनी ओर त क प से समकोणीय दिशा में चलती हुई मानी गयी है। इस परिस्थिति में दूरबीन को प′ क दिशा में झुकाकर रखना होगा ताकि क पर दूरबीन में प्रवेश करनेवाली किरण जितनी देर में प पर पहुँचेगी, उतनी ही देर में दूरबीन का दूसरा सिरा प′ पृथ्वी की गति के कारण प पर पहुँच जाय। यदि प्रकाश का वेग c हो तो, ऐसा तब होगा

जब $$\frac{\text{क प}}{c} = \frac{\text{प}'\text{प}}{v}$$

अथवा $$\frac{\text{प}'\text{प}}{\text{क प}} = \frac{v}{c}$$

यदि प′ क और त क प के बीच का कोण a हो तो

$$\tan a = \frac{\text{प}'\text{प}}{\text{क प}} = \frac{v}{c}$$

अर्थात् दूरबीन को किरण से कोण a के बराबर झुका देने से जो किरण दूरबीन में क पर प्रवेश करेगी, वह बराबर दूरबीन के अक्ष पर चलती हुई प पर पहुँच जायगी और हमें ऐसा मालूम होगा मानो तारा त′ पर स्थित है। यह कोण a ही तारे का अपेरण कोण है।

प्रकाश का वेग a तो यथार्थतापूर्वक नापा जा ही चुका है और उसका मान २९९,७९६ किलोमीटर (१८६,००० मील) प्रति सेकंड है। अतः a को नाप लेने से पृथ्वी का वेग v ज्ञात हो जाता है।

किन्तु प्रेक्षण में हमें तो केवल दूरबीन की ही दिशा प′ क ज्ञात होती है। किरण की दिशा क प ज्ञात नहीं होती। अतः एक दिन के प्रेक्षण से a नहीं नापा जा सकता। वर्ष भर समय-समय पर अनेक प्रेक्षणों से ही a का मान ज्ञात होता है। इस प्रकार पृथ्वी के सौर-परिक्रमण के वेग का माध्यमान २९·७५ कि० मी० (१८·४९ मील) प्रति सेकंड प्राप्त हुआ है। पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन के कारण भी कुछ दैनिक अपेरण होता है। क़िन्तु उसका मान बहुत ही छोटा होता है। निरक्ष पर भी पृथ्वीपृष्ठ का वेग प्रायः $\frac{1}{2}$ कि० मी०

प्रति सेकंड से अधिक नहीं होता। अतः वहाँ दैनिक अपेरण ०.३१ सेकंड से अधिक नहीं होता। ध्रुवों पर तो दैनिक अपेरण कुछ भी नहीं होता। वार्षिक अपेरण का मान सर्वत्र एक-समान होता है।

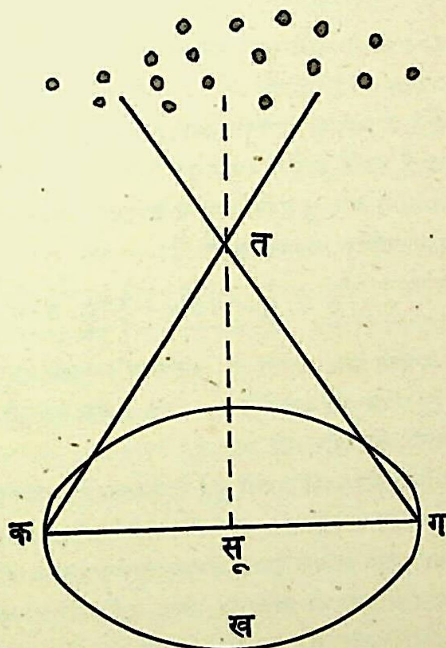
(२) तारों का वार्षिक लम्बन[1]—हम बता चुके हैं कि तारा-खचित खगोल अचल है। और उपर्युक्त अपेरण भी दूरबीन में से एक-साथ दिखाई देनेवाले सभी तारों के लिए बराबर मान का होता है, क्योंकि वह केवल प्रकाश-किरण की दिशा पर अवलम्बित होता है। अतः यद्यपि तारों के किसी भी मंडल को देखने के लिए हमें दूरबीन को वर्ष के विभिन्न समयों पर विभिन्न परिमाण में थोड़ा सा इधर-उधर झुकाना पड़ता है, फिर भी दृष्टि-क्षेत्र में दिखाई देनेवाले तारों के आपेक्षिक स्थानों में इस अपेरण के कारण कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता।

किन्तु गौर से देखने पर ऐसा मालूम होता है कि जो तारे अत्यन्त मन्द ज्योति वाले हैं उनकी अपेक्षा प्रबल ज्योति वाले तारों में थोड़ी सी आपेक्षिक गति है। अर्थात् मंदज्योति वाले तारों की पृष्ठ-भूमि पर अधिक ज्योति वाले तारे की स्थिति दिन-दिन बदलती नज़र आती है। एक वर्ष के बाद वह वृत्तीय अथवा दीर्घवृत्तीय मार्ग पर चलता चलता पुनः अपने पूर्व स्थान पर पहुँच जाता है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी के साथ साथ हम भी सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं।

यह बात समझने के लिए मान लीजिए कि एक गोल वृत्ताकार मैदान है और उसकी परिधि पर वृत्ताकार सड़क बनी हुई है। इस सड़क पर खड़े होकर हम बहुत दूर की एक पहाड़ी को देख रहे हैं और हमारे दृष्टि-पथ में एक पेड़ हमसे थोड़ी-सी दूर पर है। जब हम सड़क पर चलना प्रारम्भ करेंगे तो हम देखेंगे कि पहाड़ी की पृष्ठ-भूमि पर वह पेड़ हमारी गति से विपरीत दिशा में चलता दिखाई देगा। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जायेंगे

1. Parallax

त्यों त्यों पेड़ का यह आभासी विस्थापन भी वढ़ता जायगा। सड़क का चौथाई चक्कर पूरा करने पर यह विस्थापन रुक जायगा और तव घटने लगेगा। आधे चक्कर के वाद पेड़ पुनः प्रारंभिक दिशा में ही दीखने लगेगा। इसके वाद उसका विस्थापन विपरीत दिशा में होनें लगेगा और वह एक महत्तम मान को प्राप्त करके पुनः घटने लगेगा। चक्कर पूरा होने पर पेड़ पुनः अपने पूर्व स्थान प: दिखाई देने लगेगा।



आकृति ३.४

उपर्युक्त प्रबल ज्योति वाले तारे का विस्थापन भी ठीक ऐसा ही है। मंद ज्योति वाले तारे बहुत अधिक दूर हैं, उपर्युक्त पहाड़ी के समान। उनकी

पृष्ठ-भूमि पर नज़दीक वाला तारा हमें विस्थापित होता हुआ नज़र आता है। इस विस्थापन का परिवर्तन भी ठीक उपर्युक्त उदाहरण की ही भाँति घटता बढ़ता और ठीक एक वर्ष में पूरा एक आवर्तन कर लेता है। भिन्न भिन्न तारों के विस्थापन के मान तो भिन्न भिन्न होते हैं किन्तु सब का पूरा चक्कर ठीक एक ही वर्ष में पूरा होता है। इस एक वर्ष के आवर्तकाल से ही प्रकट है कि इसका सम्बन्ध पृथ्वी की वार्षिक गति से है और इस गति का मार्ग भी गोल है।

चित्र ३·४ में क ख ग पृथ्वी का परिक्रमण-पथ है और सू सूर्य है। जब पृथ्वी क पर होती है तब हमें तारा क त दिशा में दिखाई पड़ता है और जब छै महीने बाद पृथ्वी ग पर पहुँच जाती है तब वही तारा हमें ग त दिशा में दिखाई देता है। यदि कोई तारे को सूर्य से देखता तो वह सू त दिशा में दिखाई देता। क त और सू त के बीच के कोण α को तारे का सूर्य-केन्द्रीय लम्बन[1] अथवा वार्षिक लम्बन कहते हैं।

$$\alpha = \angle \text{क त सू} = \angle \text{ग त सू} = \frac{1}{2} \angle \text{क त ग}$$

इसका मान अत्यन्त छोटा होता है। सीरियस[2] नामक तारे का लम्बन काफ़ी बड़ा है। फिर भी वह केवल ०·३७ सेकंड मात्र है। अधिकतर तारों का लम्बन तो और भी कम है।

स्पष्ट है कि तारा पृथ्वी अथवा सूर्य से जितना ही अधिक दूर होगा उतना ही यह लम्बन कम होगा। अतः तारे त की अपेक्षा जो अत्यन्त मन्द ज्योति वाले तारे बहुत अधिक दूर हैं उनका लम्बन इतना कम होगा कि हमें उनकी दिशा में कुछ भी परिवर्तन होता नहीं मालूम पड़ेगा। किन्तु उनकी पृष्ठ-भूमि पर तारा त चलायमान दिखाई देगा और उसके विस्थापन का चक्कर एक वर्ष में पूरा हो जायगा।

1. Heliocentric parallax   2. Sirius

परिच्छेद ७ में हम देखेंगें कि इस लम्बन के नाप से तारों की दूरी भी नाप ली गयी है।

(३) तारों के स्पैक्ट्रम की रेखाओं का वार्षिक विस्थापन—तारों के प्रकाश के स्पैक्ट्रम में अनेक बारीक रेखाएँ दिखाई देती हैं। ये रेखाएँ प्रकाश के तरंग-दैर्घ्य[1] की द्योतक हैं। यदि किसी तारे की स्पैक्ट्रमीय रेखाओं का अध्ययन किया जाय तो यह पाया जाता है कि समस्त रेखाएँ छै महीने तक एक दिशा में और फिर छै महीने तक विपरीत दिशा में अपने स्थान से विस्थापित होती रहती हैं। अर्थात् तारों के प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य छै महीने तक तो थोड़ा थोड़ा-बढ़ता जाता है और छै महीने तक घटता जाता है।

इसका कारण सुविख्यात डापलर प्रभाव[2] है। इसका वर्णन परिच्छेद १२ में किया गया है और यह तब होता है जब प्रेक्षक में और प्रकाश के उद्‌गम में आपेक्षिक गति होती है। अतः स्पैक्ट्रमीय रेखाओं के विस्थापन से प्रकट होता है कि तारे और पृथ्वी के बीच की दूरी क्रमशः घटती और बढ़ती रहती है। अर्थात् पृथ्वी तारे की दिशा में गतिमान् है। इन रेखाओं के विस्थापन को नापकर पृथ्वी का वेग (तारे की दिशा में) वर्ष के विभिन्न समयों पर नापा भी जा सकता है।

इन सब प्रमाणों के कारण हम यह मानने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि अक्षीय घूर्णन के अतिरिक्त पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा भी करती है और यह परिक्रमा एक वर्ष में पूरी हो जाती है।

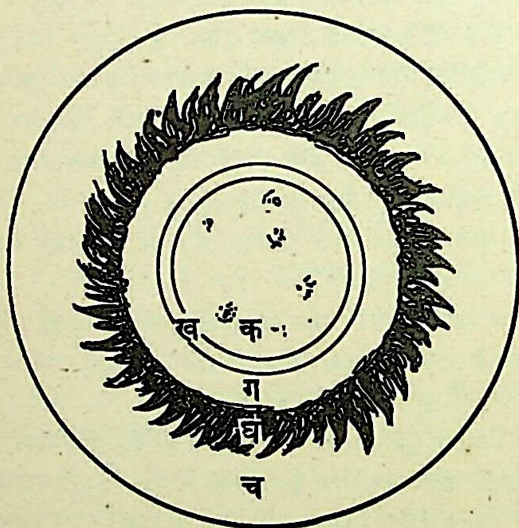
इस परिक्रमा में सूर्यबिम्ब का कोणीय व्यास भी धीरे धीरे थोड़ा बदलता रहता है। इससे यह मालूम होता है कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी सदा बराबर नहीं रहती, क्योंकि अधिक दूरी पर जाने ही से तो वस्तुएँ छोटी दिखाई देने लगती हैं।

अतः विभिन्न समयों पर सूर्य की दिशा और उसका व्यास नापने से

1. Wave-length 2. Doppler effect

पृथ्वी के गमनपथ अथवा उसकी कक्षा (आर्बिट) की आकृति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस रीति से मालूम हुआ है कि यह आकृति दीर्घवृत्ताकार है और सूर्य उसकी एक नाभि (फोकस) पर स्थित है। किन्तु उसकी दीर्घ और लघु अक्षों की लम्बाई में इतना कम अन्तर है कि सामान्यतः हम उसे वृत्ताकार भी मान सकते हैं।

सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन जाने का कारण यह है कि पृथ्वी का ध्रुवीय अक्ष परिक्रमण-कक्षा के तल पर अभिलम्बतः स्थित नहीं है। वह अभिलम्ब से २३½° झुका हुआ है।



आकृति ३.५

सूर्य

दूरबीन में सूर्य का जो प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वह निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है (चित्र ३·५)—

(१) प्रकाश-मंडल[1]—यह उस केन्द्रीय भाग (क) का नाम है जिसमें से अधिकतर प्रकाश हमें प्राप्त होता है। यह मंडलक के समान गोल है जिसमें अनेक काले धब्बे नज़र आते हैं। इसका औसत कोणीय व्यास प्रायः ३२ मिनट होता है। इसके व्यास की लम्बाई १३,९०,००० कि० मी० (८,६४,००० मील) है (देखो परिच्छेद ८)। यह पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना बड़ा है।

(२) उत्क्रामी आवरण[2]—प्रकाश-मंडल को घेरे हुए कई सौ मील मोटा वाष्प का आवरण (ख) है। इसकी ज्योति बहुत कम होती है और यह तब ही दिखाई देता है जब सूर्य के पूर्ण ग्रहण के समय प्रकाश-मंडल चन्द्र-बिम्ब के द्वारा बिलकुल ढक जाता है। यह उत्क्रामी आवरण यों कहलाता है कि जब प्रकाश-मंडल का प्रकाश इसमें होकर आता है तो बहुत से तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश इस वाष्पीय आवरण में अवशोषित हो जाता है और स्पैक्ट्रम में काली रेखाएँ दिखाई देती हैं।

(३) वर्णमंडल[3]—उत्क्रामी आवरण से मिला हुआ और कई हज़ार मील मोटा यह गैसीय आवरण (ग) है। इसमें मुख्य गैसें हाइड्रोजन तथा हीलियम हैं। और इसी में से चारों ओर हज़ारों मील लम्बी लाल-लाल ज्वालाएँ[4] (घ) निकलती हुईं पूर्ण सूर्यग्रहण के समय दिखाई देती हैं। उस समय इन ज्वालाओं के प्रकाश के स्पैक्ट्रम में विभिन्न रंगों की दीप्त रेखाएँ[5] विद्यमान रहती हैं। इसी कारण यह वर्णमंडल कहलाता है। अब तो स्पैक्ट्रमीय विधि से वर्णमंडल और इन ज्वालाओं का प्रेक्षण चाहे जिस दिन भी किया जा सकता है (परिच्छेद १३)।

(४) किरीट[6]—इन सबसे बाहर एक और आवरण बहुत ही कम

1. Photosphere
2. Reversing layer
3. Chromosphere
4. Prominences
5. Bright lines
6. Corona

ज्योति वाला होता है जिसे किरीट कहते हैं (च)। यह केवल पूर्ण ग्रहण के समय ही देखा जा सकता है।

पृथ्वी से सूर्य की दूरी

परिच्छेद ७ में बताया गया है कि यह दूरी किस प्रकार नापी गयी है। यहाँ इतना ही कह देना काफ़ी है कि इसका औसत मान १४,९५,००,००० किलोमीटर (९,२८,७०,००० मील) है। यह दूरी इतनी है कि ३०,००,०० या ३×१०^5 कि०मी० (१, ८६,००० मील) प्रति सेकंड के वेग से चलने-वाले प्रकाश को भी सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचने में लगभग ८ मिनट का समय लगता है। यह भी प्रमाणित हो गया है कि निकटतम तारे से पृथ्वी तक पहुँचने में प्रकाश को लगभग ४ वर्ष लगते हैं। वस्तुतः सूर्य भी एक तारा ही है किन्तु अपेक्षाकृत अत्यन्त निकट होने के कारण वह हमें इतना बड़ा दिखाई देता है।

सूर्य का व्यास

ऊपर बताया गया है कि सूर्य-विम्ब के प्रकाश-मंडल का कोणीय व्यास प्रायः ३२ मिनट का है। अतः पृथ्वी से उसकी दूरी ज्ञात हो जाने पर यह प्रकट होता है कि सूर्य के गोले का वास्तविक रैखिक व्यास ८,६४,००० मील है। यह संख्या पृथ्वी के व्यास से १०० गुनी से भी अधिक है।

सूर्य का घूर्णन

सूर्य-विम्ब पर कई बड़े-बड़े काले धब्बे दिखाई देते हैं। ये धुआँ-लगे या काले रंग के काँच में से खाली आँख से भी देखे जा सकते हैं। किन्तु दूरबीन में से इन्हें अधिक अच्छी तरह से देखा जा सकता है और बिम्ब पर उनका स्थान भी यथार्थतापूर्वक निर्दिष्ट किया जा सकता है। यदि इनका कई दिन तक नित्य प्रति निरीक्षण किया जाय तो स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वे सूर्य-बिम्ब के पूरबी किनारे से धीरे-धीरे पश्चिमी किनारे

की तरफ खिसकते जाते हैं। इससे प्रकट होता है कि सूर्य भी पृथ्वी की ही तरह अपने अक्ष पर घूम रहा है और लगभग ४ सप्ताह में एक चक्कर पूरा कर लेता है। इन धब्बों का पथ सामान्यतः दीर्घवृत्तीय आकृति का होता है। इससे मालूम पड़ता है कि उसके घूर्णनाक्ष की दिशा क्रान्तिवृत्त की अपेक्षा अभिलम्बतः स्थित नहीं है। वह अभिलम्ब से लगभग ७° १०·५′ के कोण पर झुकी हुई है।

इसके अतिरिक्त एक विलक्षण बात यह पायी गयी है कि सूर्य के निरक्ष[1] पर स्थित धब्बों से तो घूर्णन का औसत आवर्तकाल[2] २४·६५ दिन निकलता है किन्तु ध्रुवों की ओर हटे हुए धब्बों से प्राप्त आवर्तकाल क्रमशः बढ़ते बढ़ते प्रायः २६.६ दिन तक का पाया गया है। ध्रुवीय प्रदेशों के घूर्णन का आवर्तकाल इस उपाय से नहीं नापा जा सकता, क्योंकि वहाँ धब्बे होते ही नहीं। सब धब्बे एक समान वेग से चलते नहीं दिखाई देते।

इन काले धब्बों के अलावा दूरबीन में सूर्य-बिम्ब पर अनेक छोटे-छोटे प्रदेश अधिक चमकदार भी दिखाई देते हैं, जिन्हें हम दीप्त मेघ[3] कह सकते हैं। इनके द्वारा भी सूर्य के घूर्णन का नाप हो सकता है, तथा सूर्य-बिम्ब के पूरबी और पश्चिमी छोरों से आनेवाले प्रकाश के स्पैक्ट्रम की रेखाओं के निरीक्षण से भी सूर्य का घूर्णन प्रकट होता है, क्योंकि डापलर प्रभाव[4] के कारण ये रेखाएँ विस्थापित हो जाती हैं (परिच्छेद १२)। इन उपायों से भी सूर्य के घूर्णन का आवर्तकाल नापा गया है और वह निरक्ष से ध्रुवों की ओर बराबर बढ़ता चला जाता है। ध्रुवों पर इसका मान ३४ दिन का पाया गया है।

इन विचित्र प्रेक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य का प्रकाश-मंडल भी ठोस नहीं है। संभवतः वह गैसीय है।

1. Equator
2. Periodic time
3. Foculi
4. Doppler effect

चन्द्रमा

सूर्य के वाद चन्द्रमा ही हमारे नभोमंडल का सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण ज्योतिर्षपिंड है। यद्यपि यह वहुत वड़ा दिखाई देता है, किन्तु वास्तव में है वह वहुत छोटा। पृथ्वी से अत्यन्त निकट होने के ही कारण इतना वड़ा दिखाई देता है। पृथ्वी से उसकी औसत दूरी लगभग ३८४००० कि० मी०। (२,४०,००० मील) है अर्थात् सूर्य उसकी अपेक्षा हमसे लगभग ४०० गुना अधिक दूर है। चन्द्रमा का व्यास प्रायः ३४७६ कि०मी० (२१६० मील) है अथ्रात् पृथ्वी की अपेक्षा उसका व्यास चौथाई से कुछ थोड़ा ही ज्यादा है।

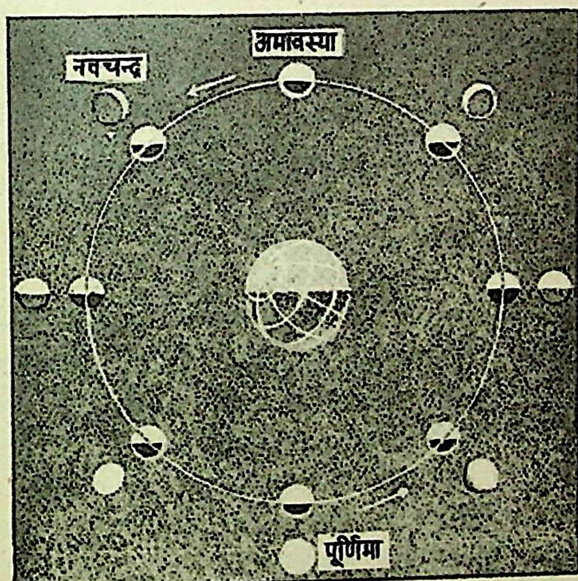
यह पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और यही कारण है कि वह प्रतिदिन तारामंडलों की अपेक्षा प्रायः १३° पूरव की ओर हटता जाता है। यह परिक्रमा वह २७$\frac{1}{3}$ दिनों में पूरी कर लेता है। परिक्रमण-कक्षा का तल प्रायः वही है जो पृथ्वी की सौर परिक्रमण-कक्षा का तल है। वस्तुतः इन दोनों तलों में केवल ५° का कोण है।

चन्द्रमा की पृथ्वी-परिक्रमण कक्षा थोड़ी-सी दीर्घवृत्ताकार है। इसी कारण चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी बदलती रहती है। उसका महत्तम मान २,५२,७१० मील और न्यूनतम मान २,२१,४६३ मील है।

इस परिक्रमण में चन्द्रमा का वेग लगभग ३७०० किलोमीटर (२२८७ मील) प्रतिघंटा अथवा १ कि०. मी० (३३५० फ़ुट) प्रति सेकंड है। पृथ्वी के साथ-साथ चन्द्रमा सूर्य की परिक्रमा भी करता है। कभी तो वह हमें लगभग सूर्य की ही दिशा में दिखाई देता है और कभी वह ठीक विपरीत दिशा में होता है। पहली स्थिति में सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक साथ उदय होते हैं और एक ही साथ अस्त होते हैं (अमावस्या के दिन) और दूसरी स्थिति में जव एक उदय होता है तो दूसरा अस्त होता है (पूर्णिमा के दिन)।

चन्द्रमा की कलाएँ

सूर्य की तरह चन्द्रमा सदा बिलकुल गोल अथवा पूर्ण वृत्ताकार नहीं दिखाई देता। कभी तो वह पतली-सी वक्र रेखा के समान दिखाई देता है और तब वह नवचन्द्र कहलाता है। इसके बाद धीरे-धीरे इसकी मोटाई बढ़ती जाती है और करीब १५ दिन बाद वह बिलकुल गोल हो जाता है। इस समय वह पूर्ण चन्द्र कहलाता है। फिर धीरे-धीरे घटकर सर्वथा अदृश्य हो जाता है और तब पुनः नवचन्द्र रूप में प्रगट हो जाता है।



आकृति ३.६

इसका कारण यह है कि चन्द्रमा स्वतः दीप्त नहीं है। वह सर्वथा प्रकाशहीन अपारदर्शक गोला है। जब सूर्य का प्रकाश उस पर पड़ कर

उसके पृष्ठ को प्रदीप्त करता है तभी वह हमें दिखाई दे सकता है। चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य का ही परावर्तित प्रकाश है।

सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के केवल एक गोलार्ध पर ही पड़ता है और इस प्रदीप्त गोलार्ध के भी केवल उसी अंश को हम देख सकते हैं जो पृथ्वी के सम्मुख होता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा का प्रदीप्त भाग पृथ्वी के सम्मुख थोड़ा-सा भी नहीं होता। अतः उस दिन हमें चन्द्रमा बिलकुल नहीं दिखाई देता। इसके एक-दो दिन बाद थोड़े-से प्रदीप्त छोर को हम देख सकते हैं। यही नवचन्द्र होता है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा का पूर्ण-बिम्ब हमें प्रदीप्त दिखाई देता है। उस दिन सूर्य और चन्द्रमा विपरीत दिशाओं में होते हैं। अतः पूरा प्रदीप्त गोलार्ध पृथ्वी के सम्मुख रहता है। अमावस्या से पूर्णिमा तक प्रायः १५ दिन तक चन्द्रबिम्ब बढ़ता जाता है और फिर १५ दिन तक घटता जाता है। एक अमावस्या से अगली अमावस्या के समय को एक चान्द्रमास कहते हैं। यह २९.५३ दिनों का होता है।

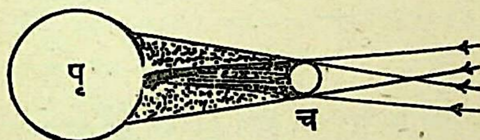
चन्द्रमा का अक्षीय घूर्णन

चन्द्रमा भी अपने अक्ष पर घूमता रहता है। इसका एक चक्कर ठीक उतने ही समय में पूरा होता है जितने में वह पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा का जो गोलार्ध पृथ्वी के सम्मुख होता है वह सदा सम्मुख ही बना रहता है। दूसरे गोलार्ध का अधिक भाग हम कभी देख ही नहीं सकते। अभी हाल में ही रूस के वैज्ञानिकों ने एक राकेट को चन्द्रमा के दूसरी ओर भेजकर इस अदृश्य गोलार्ध के फ़ोटो प्राप्त किये हैं और अब पहली बार मनुष्य को यह मालूम हो सका है कि चन्द्रमा के पिछले भाग में क्या है।

सूर्य-ग्रहण

साधारणतः अमावस्या के दिन चन्द्रमा ठीक सूर्य ही की दिशा में होता है। फिर भी वह सूर्य के बिम्ब को ढक नहीं लेता क्योंकि चन्द्रमा

की पृथ्वी-परिक्रमण-कक्षा का तल पृथ्वी की सौर परिक्रमण-कक्षा के तल से लगभग ६½° का कोण बनाता है। अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी सामान्यतः तीनों एक ही तल में स्थित नहीं होते, किन्तु कभी-कभी वे एक-ही तल में आ जाते हैं। जब ऐसी स्थिति किसी अमावस्या के दिन होती है तो चन्द्रमा सूर्य के विम्ब को अंशतः या पूर्णतः ढक लेता है। (चित्र ३.७) पहली दशा में सूर्य कुछ कटा हुआ (खंडित) दिखाई देता है। इसे सूर्य का खंड-ग्रास या खंड ग्रहण[1] कहते हैं। दूसरी दशा को पूर्ण ग्रास या पूर्ण ग्रहण[2] कहते हैं। और इसमें पृथ्वी पर रात्रि के समान इतना अन्धकार हो जाता है कि दिन में भी तारे दिखाई देने लगते



आकृति ३.७

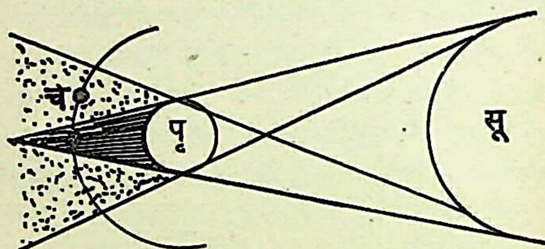
हैं। इस समय सूर्य-विम्व के चारों ओर लम्बी-लम्बी ज्वालाएँ भी दिखाई देने लगती हैं। यह पूर्णग्रास पृथ्वी पर सर्वत्र नहीं दिखाई देता। केवल कुछ थोड़े-से अंश से ही देखा जा सकता है। खंड ग्रास पृथ्वी के और अधिक विस्तृत भाग से देखा जा सकता है, किन्तु दोनों वहुत थोड़ी-सी देर तक ही दिखाई देते हैं।

चन्द्र-ग्रहण

पूर्णिमा के दिन सामान्यतः चन्द्र-विम्ब पूरा गोल दिखाई देता है। किन्तु किसी-किसी पूर्णिमा के दिन ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि

1. Partial eclipse 2. Total eclipse

तीनों बिम्बों के लगभग एक ही तल में आ जाने के कारण सूर्य और चन्द्रमा के ठीक बीच में पृथ्वी आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है। (चित्र ३.८) तब चन्द्र-बिम्ब पूर्णतः अथवा अंशतः दीप्ति-हीन हो जाता है। इसे चन्द्रग्रहण कहते हैं। पृथ्वी की इस छाया के दो



आकृति ३.८

भाग होते हैं। केन्द्रीय भाग ऐसा होता है जिसमें सूर्य का प्रकाश बिलकुल नहीं पहुँचता। इसे प्रच्छाया[1] कहते हैं। दूसरे भाग को उपच्छाया[2] कहते हैं। इसमें सूर्य-बिम्ब के कुछ अंश का प्रकाश पहुँचता है और कुछ का नहीं। जब चन्द्रमा प्रच्छाया में होता है तब वह पूरा का पूरा अदीप्त हो जाता है (पूर्ण ग्रास)। किन्तु जब वह उपच्छाया में होता है तब उसकी दीप्ति घट जाती है, किन्तु बिलकुल लुप्त नहीं हो जाती। कभी-कभी चन्द्र-बिम्ब का कुछ भाग तो छाया के बाहर रहता है और पूर्णतः चमकता रहता है, किन्तु कुछ भाग छाया में होने से कम चमकता है। ऐसी दशा में पृथ्वी की छाया की आकृति स्पष्टतः वृत्ताकार दिखाई देती है। पृथ्वी के गोल होने के इस प्रमाण का ज़िक्र ऊपर दिया जा चुका है।

1. Umbra 2. Penumbra

परिच्छेद ४

सौर परिवार

ग्रह[1]

यह बताया जा चुका है कि सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त ८ ग्रह ऐसे हैं जिनके स्थान अन्य समस्त तारों की अपेक्षा बदलते रहते हैं। पृथ्वी के दैनिक घूर्णन के कारण समस्त खगोल तो हमें एक-समान कोणीय वेग से पूरब से पश्चिम की दिशा में घूमता नज़र आता है, किन्तु इन ग्रहों की गति इतनी सरल नहीं होती। अचल तारा-मंडलों[2] की अपेक्षा वे पूर्व-पश्चिम दिशा में कभी आगे की ओर तथा कभी पीछे की ओर खिसकते दिखाई देते हैं। बीच-बीच में यह खिसकना रुक भी जाता है।

ये सभी ग्रह उसी मार्ग के आस-पास विचरण करते हैं जिस पर सूर्य चलता है और जिसे क्रान्ति वृत्त[3] कहते हैं। आकाश के इस भाग को राशिचक्र[4] कहते हैं। उससे उत्तर-दक्षिण दिशा में ये अधिक नहीं हटते। अधिकतर ग्रह तो इस क्रान्तिवृत्तीय समतल से ३° भी उत्तर-दक्षिण नहीं हटते। हाँ, बुध प्राय: ५°, मंगल ७° और शुक्र ९° तक हट जाता है।

इन ग्रहों का दिखाई देना इस बात पर निर्भर है कि ये सूर्य से कितनी कोणीय दूरी पर अवस्थित हैं। जिस समय ये सूर्य की दिशा के आस-पास

1. Planets
2. Constellations
3. Ecliptic
4. Zodiac

रहते हैं उस समय हमें दिखाई नहीं दे सकते। सूर्योदय से कुछ पहले या सूर्यास्त के कुछ देर बाद ही हम इन्हें देख सकते हैं।

बुध ग्रह[1] को सूर्योदय से पहले या सूर्यास्त से पीछे भी हम १½, २ घण्टे से अधिक कभी भी नहीं देख सकते, क्योंकि सूर्य से इस ग्रह की महत्तम कोणीय दूरी २८° से अधिक कभी भी नहीं होती। महत्तम हो जाने के बाद यह दूरी धीरे-धीरे घटती जाती है और युति[2] के समय यह ०° हो जाती है, अर्थात् उस समय सूर्य तथा पृथ्वी को जोड़नेवाली सरल रेखा पर ही यह ग्रह स्थित होता है। इसके बाद यह दूरी विपरीत दिशा में बढ़ने लगती है। युति के समय कभी-कभी यह ग्रह सूर्य-विम्ब में एक काले धब्बे के समान चलता हुआ भी दिखाई देता है। इसे सूर्यातिक्रान्ति[3] कहते हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य की अपेक्षा यह पृथ्वी के अधिक निकट है और सूर्य तथा पृथ्वी के बीच में आ जाता है।

इसी तरह शुक्र[4] ग्रह भी सूर्योदय से पहिले या सूर्यास्त के बाद तीन घन्टे से अधिक कभी नहीं दिखाई देता। सूर्य से इसकी कोणीय दूरी ४७° से अधिक कभी भी नहीं होती। युति के समय यह भी सूर्यबिम्ब के सामने से चलता दिखाई देता है।

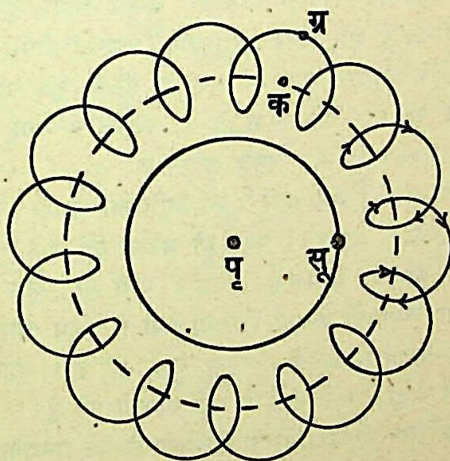
किन्तु इन दोनों ग्रहों को छोड़कर अन्य ग्रह रात्रि भर दिखाई देते रहते हैं। सूर्य से उनकी कोणीय दूरी बुध और शुक्र के समान दो महत्तम सीमाओं के बीच में सीमित नहीं रहती। वह एक ही दिशा में बराबर बढ़ती जाती है—कभी धीरे-धीरे और कभी तेजी से। और जब उसका परिमाण ३६०° हो जाता है तब सूर्य के साथ उनकी पुनः युति हो जाती है। जब यह दूरी १८०° होती है तब भी पृथ्वी, सूर्य तथा ग्रह एक ही सरल रेखा पर अवस्थित होते हैं। इस स्थिति को वियुति[5] कहते हैं। इस

1. Mercury 2. Conjunction 3. Transit
4. Venus 5. Opposition.

समय पृथ्वी सूर्य तथा ग्रह के बीच में होती है और ग्रह तथा सूर्य हमें विपरीत दिशाओं में दिखाई देते हैं। बुध और शुक्र में ऐसी वियुति कभी नहीं होती।

इन ग्रहों में तथा बुध और शुक्र में दूसरा भेद यह है कि युति के समय भी ये ग्रह सूर्य-बिम्ब के सामने से नहीं गुज़रते। ये सूर्य-बिम्ब के पीछे छिप जाते हैं। उनका ग्रहण हो जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस समय पृथ्वी से इन ग्रहों की दूरी सूर्य की अपेक्षा अधिक होती है।

जब तक पृथ्वी स्थिर मानी जाती थी तब तक ग्रहों की इन विचित्र गतियों का कारण यह समझा जाता था कि सूर्य और चन्द्रमा के समान ही ये सब ग्रह भी पृथ्वी की परिक्रमा करते रहते हैं। भेद इतना ही है कि सूर्य का परिक्रमण-पथ तो लगभग वृत्ताकार ही है, किन्तु इन ग्रहों की कक्षाएँ[1] अधिचक्रीय[2] होती हैं (चित्र ४.१)। यदि हम किसी कल्पित विन्दु



आकृति ४.१

1. Orbits
2. Epicyclic

क को वृत्ताकार (चित्र में विन्दुमय रेखा वाले) पथ पर पृथ्वी की परिक्रमा करता समझें तो ग्रह ग्र इस पथ पर नहीं चलता। वह इस कल्पित बिन्दुक के चारों ओर छोटे-से वृत्ताकार पथ पर निरन्तर घूमता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है। जब गाड़ी पृथ्वी पर चलती है तो जिस प्रकार उसके पहिये की धुरी तो पृथ्वी से समान्तर पथ पर चलती है किन्तु पहिये की परिधि का कोई भी विन्दु उस धुरी की परिक्रमा भी वरावर करता रहता है और धुरी के साथ-साथ आगे भी बढ़ता जाता है। ठीक उसी प्रकार ग्रह भी क की परिक्रमा भी करता जाता है और क के साथ पृथ्वी की भी परिक्रमा करता है।

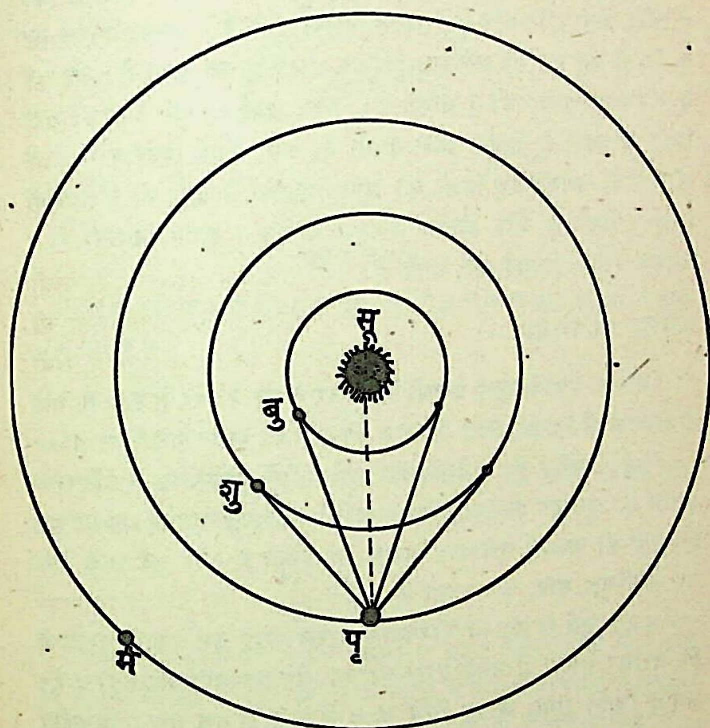
किन्तु जव से यह धारणा पुष्ट हो गयी कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी ही उसकी परिक्रमा करती है, तव से ग्रहों की गति की यह जटिलता भी दूर हो गयी। अव तो यह सर्व-मान्य हो गया है कि समस्त ग्रह भी पृथ्वी ही की तरह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उनकी कक्षाएँ सूर्य से विभिन्न दूरियों पर स्थित हैं और लगभग वृत्ताकार (यथार्थतः दीर्घवृत्ताकार) हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी भी एक ग्रह ही है। सूर्य सहित ग्रहों के इस समुदाय को सौर परिवार कहते हैं[1] क्योंकि प्रत्यक्षतः सूर्य ही इस परिवार का सवसे बड़ा और प्रमुख सदस्य है।

वुध और शुक्र की अन्य ग्रहों से जो विभिन्नता वतायी गयी है उसका कारण अव स्पष्ट हो जाता है। पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से उनकी दूरी कम है और अन्य ग्रहों की अधिक है। चित्र ४.२ में वुध, शुक्र तथा मंगल ग्रहों की तथा पृथ्वी की कक्षाएँ दिखायी गयी हैं। वुध तथा शुक्र पृथ्वी की कक्षा के अन्तर्वर्ती ग्रह हैं। मंगल वाह्य ग्रह है। वृहस्पति, शनि आदि ग्रह भी वाह्य हैं। वे चित्र में नहीं दिखाये गये हैं।

वुध और शुक्र की कक्षाओं के निरीक्षण से यह समझना आसान है

1. Solar system

कि सूर्य से उनकी कोणीय दूरी किसी महत्तम मान से अधिक क्यों नहीं हो सकती। पृथ्वी तथा शुक्र को जोड़नेवाली रेखा तथा पृथ्वी और सूर्य



आकृति ४.२

को जोड़नेवाली रेखा पृ-सू में अधिकतम कोण सू-पृ-शु तब बनेगा जब पृ-शु शुक्र-कक्षा के वृत्त की स्पर्श-रेखा[1] बन जायगी। मंगल आदि बाह्य

1. Tangent

ग्रहों की कक्षाओं पर पृथ्वी से कोई भी स्पर्श-रेखा नहीं खींची जा सकती।

ये ग्रह भिन्न-भिन्न वेगों से क्यों चलते दिखाई देते हैं? कभी ये तेजी से और कभी धीरे-धीरे क्यों चलते मालूम होते हैं? इसका कारण यह है कि ये ग्रह सूर्य की परिक्रमा विभिन्न कालों में पूर्ण करते हैं। चित्र में ये परिक्रमण-काल वर्षों में अंकित हैं। फलतः ग्रहों की गति कभी तो उसी दिशा में होती है जिसमें पृथ्वी चलती है, कभी उससे विपरीत दिशा में और कभी समकोणिक दिशा में। प्रथम अवस्था में ग्रहों की गति धीमी मालूम पड़ती है और द्वितीय अवस्था में तेज। तृतीय अवस्था में वे लगभग स्थिर दिखाई देने लगते हैं।

केपलर के नियम[1]

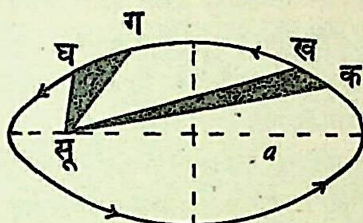
अधिक यथार्थतापूर्ण प्रेक्षणों से केपलर ने सन् १६०९ में ग्रहों की गति के सम्बन्ध में निम्नलिखित विख्यात नियमों का आविष्कार किया था—

(१) प्रत्येक ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्तीय कक्षा में परिक्रमण करता है। सूर्य इस दीर्घवृत्त की एक नाभि[2] पर स्थित रहता है। सन्निकटतः इन ग्रहों की कक्षाएँ वृत्ताकार समझी जा सकती हैं और सूर्य इनके केन्द्र पर अवस्थित माना जा सकता है।

(२) सूर्य से ग्रह को जोड़नेवाली सरल रेखा इस प्रकार घूमती है कि बराबर समयों में उसके द्वारा बराबर क्षेत्रफल अतिवाहित होता है। अर्थात् जितने समय में ग्रह चित्र ४.३ में क से ख तक जाकर त्रिभुजीय क्षेत्रफल सू-क-ख की रचना करता है, उतनी ही देर में वह ग से घ तक पहुँच जायगा; यदि क्षेत्रफल सू ग घ = क्षेत्रफल सू क ख हो। संक्षेप में ग्रह का क्षेत्रफलीय वेग[3] एक-समान रहता है।

1. Kepler's Laws 2. Focus 3. Areal velocity

इस नियम के अनुसार स्पष्टतः गघ 7 कख। अतः ग्रह का रेखीय वेग[1] एक-समान नहीं रहता।



आकृति ४·३

(३) यदि ग्रह की कक्षा का दीर्घ अक्ष[2] a हो तथा ग्रह का परिक्रमण-काल T हो तो

$$\frac{T^2}{a^3} = \text{अचर}$$

अर्थात् यदि दो ग्रहों के परिक्रमण-काल क्रमशः T_1 और T_2 हों तथा उनकी कक्षाओं के दीर्घ अक्ष क्रमशः a_1 और a_2 हों तो

$$\frac{T_1^2}{T_2^2} = \frac{a_1^3}{a_2^3}$$

केपलर ने ये नियम केवल प्रेक्षणों के द्वारा प्राप्त किये थे। उन्हें इन नियमों का कारण ज्ञात नहीं था। न्यूटन ने इनका कारण गुरुत्वाकर्षण बतलाया। इस परिकल्पना के द्वारा तथा न्यूटन के ही प्रतिपादित गति-विज्ञान के नियमों के द्वारा ये नियम सिद्धान्ततः भी प्राप्त हो जाते हैं (देखो परिच्छेद ५)।

1. Linear velocity
2. Major axis

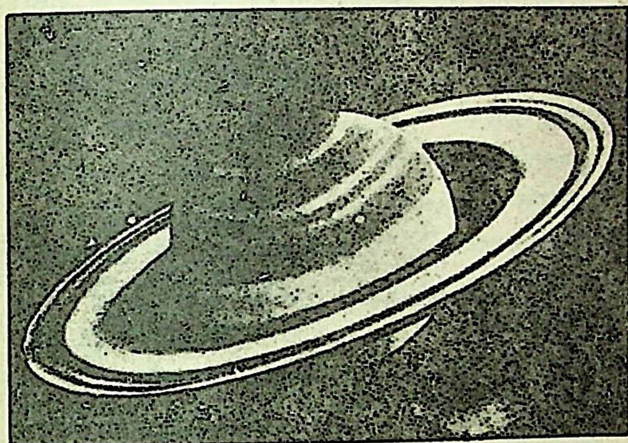
वास्तव में ग्रह-कक्षाएँ यथार्थतः दीर्घवृत्ताकार नहीं होतीं। इसका कारण भी स्पष्ट है। सूर्य के आकर्षण के अतिरिक्त प्रत्येक ग्रह पर अन्य ग्रहों का भी आकर्षण-बल लगता है। यद्यपि यह अपेक्षा-कृत वहुत कम होता है, फिर भी वह ग्रह को यथार्थतः दीर्घवृत्तीय कक्षा से थोड़ा बहुत इधर-उधर तो कर ही देता है और उसके वेग में भी कुछ घट-बढ़ पैदा कर देता है। ज्योतिषी को इन आकर्षणों का हिसाव लगाना पड़ता है।

यहीं यह बात भी कह देना आवश्यक है कि ये समस्त ग्रह स्वतः दीप्त[1] नहीं हैं। सूर्य से आकर जो प्रकाश इनपर पड़ता है उसी से ये प्रदीप्त होते हैं। चन्द्रमा के प्रकाश के समान ही इनका प्रकाश भी सूर्य का ही परावर्तित प्रकाश है। यही कारण है कि बुध और शुक्र का बिम्व सदा पूर्णतः गोल नहीं दिखाई देता। चन्द्रबिम्ब के ही समान इनकी भी विभिन्न आकृतियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि इनके प्रकाश का स्पैक्ट्रम ठीक वैसा ही होता है जैसा सूर्य के प्रकाश का।

इस सबमें शनि की आकृति विचित्र होती है। अन्य ग्रहों की तरह इस ग्रह का मध्य भाग गोल ही होता है। किन्तु उसको घेरे हुए तीन कुण्डलाकार वलय दिखाई देते हैं। ये तीनों एक ही तल में अवस्थित हैं। सबसे अन्दर का वलय उतना उज्ज्वल नहीं है। यह शनि के निरक्ष से प्रायः ७००० मील दूर से लेकर १८००० मील तक विस्तृत है। इसके बाद प्रायः १००० मील का विच्छेद है और तव दूसरा बहुत चमकदार वलय प्रारम्भ होता है। इसकी चौड़ाई १६००० मील की है। इसके बाद ३००० मील का विच्छेद है और तब वाह्यतंम तीसरा वलय प्रारम्भ होता है। यह भी खूब चमकदार है और इसकी चौड़ाई प्रायः ४५००० मील है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इन समस्त वलयों की मोटाई

1. Self-luminous

केवल १० मील से ५० मील तक की ही है। दूरबीन में शनि अत्यन्त ही मनोहर दिखाई देता है।



आकृति ४.४

उपग्रह[1]

दूरबीन से देखने पर यह भी मालूम हुआ है कि इन ग्रहों के निकट कुछ छोटे-छोटे चमकदार पिंड और भी होते हैं, जो उपग्रह कहलाते हैं। सूर्य की परिक्रमा में ये अपने-अपने ग्रहों के साथ बने रहते हैं और स्वयं भी उन ग्रहों की परिक्रमा करते रहते हैं। चन्द्रमा भी पृथ्वी की परिक्रमा करनेवाला इसी प्रकार का उपग्रह है। हमारे अत्यन्त निकट होने के ही कारण वह इतना बड़ा और प्रकाशमान दिखाई देता है। जिस प्रकार पृथ्वी की छाया में प्रवेश करने से चन्द्रमा का ग्रहण होता है, वैसे ही जब ये उपग्रह

1. **Satellites**

भी अपने परिक्रमण में ग्रह के पीछे की ओर चले जाते हैं तब उनका भी ग्रहण हो जाता है और वे कुछ समय के लिए अदृश्य हो जाते हैं। यथा-समय वे पुनः दूसरी ओर प्रकट हो जाते हैं। विभिन्न ग्रहों के उपग्रहों की संख्याएँ निम्न प्रकार हैं—

ग्रह	उपग्रहों की संख्या
पृथ्वी	१
मंगल (Mars)	२
वृहस्पति (Jupiter)	११
शनि (Saturn)	९
यूरेनस या वारुणी (Uranus)	४
नेपट्यून या वरुण (Neptune)	१

इन उपग्रहों के परिक्रमण-काल भी विभिन्न हैं। निम्नतम काल प्रायः ७।। घण्टे है और महत्तम प्रायः २ वर्ष। कहना न होगा कि इन उपग्रहों पर भी गुरुत्वाकर्षण अपना कार्य उसी तरह करता है जिस तरह वह ग्रहों पर करता है। किन्तु जिस ग्रह के अत्यन्त निकट कोई उपग्रह होता है उस उपग्रह पर केवल उसी ग्रह का आकर्षण प्रबल होता है और उसी के द्वारा प्रेरित होकर वह उस ग्रह की परिक्रमा करता है। यह क्रिया भी न्यूटन तथा केपलर के नियमों के ही अनुसार होती है। अतः ग्रह से उपग्रह की दूरी में तथा उपग्रह के परिक्रमण काल में भी ठीक वैसा ही सम्बन्ध होता है, जैसा कि सूर्य से ग्रह की दूरी तथा ग्रह के परिक्रमणकाल में होता है।

आजकल जो कृत्रिम उपग्रह रूस तथा अमरीका के वैज्ञानिकों ने आकाश में उड़ाये हैं वे भी इन्हीं नियमों का पालन करते हैं। और पृथ्वी से जितनी दूर उन्हें उड़ाना होता है, उसी के अनुरूप वेग उन्हें यथास्थान प्राप्त हो जाय इसका प्रबन्ध कर दिया जाता है। इसके परिकलनों और

प्रेक्षणों में जो मेल पाया गया है वह न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के पक्ष में बड़ा प्रबल प्रमाण है।

क्षुद्र ग्रह[1]

इन ग्रहों के अतिरिक्त अनेक क्षुद्र ग्रहों का भी पता लगा है। ये भी सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। ये अत्यन्त छोटे-छोटे होते हैं और खाली आँख से नहीं दिखाई देते। सबसे पहले सन् १८०१ में एक क्षुद्र-ग्रह दूरवीन से देखा गया था और १८४७ तक इनकी संख्या ५ हो गयी थी। तबसे प्रति वर्ष नये-नये क्षुद्र ग्रहों का पता निरन्तर चल रहा है। फ़ोटोग्राफी की सहायता से अब तक प्रायः २००० क्षुद्र ग्रहों का अस्तित्व प्रमाणित हो चुका है और अनुमान किया जाता है कि इनकी संख्या एक लाख से कम नहीं होगी।

इनके प्रेक्षणों से यह परिणाम निकला है कि इन समस्त क्षुद्र ग्रहों की कक्षाएँ मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों की कक्षाओं के बीच में अवस्थित हैं। इनकी कक्षाएँ ग्रहीय कक्षाओं के समान लगभग वृत्ताकार नहीं होतीं। सूर्य से किसी किसी क्षुद्र ग्रह की महत्तम दूरी लघुतम दूरी से ५ गुनी तक पायी गयी है। कभी कभी ये मंगल ग्रह की कक्षा को काटकर पृथ्वी के बहुत ही निकट आ जाते हैं, क्योंकि इनकी कक्षाएँ सदा क्रान्तिवृत्तीय तल के निकटवर्ती नहीं रहतीं। इनकी कक्षाओं का तल क्रान्तिवृत्त से ४३° तक भी आनत पाया गया है।

ये सब क्षुद्र ग्रह अत्यन्त छोटे होते हैं और इनके व्यास का नाप अत्यन्त कठिन है। इनमें सबसे बड़े का व्यास मात्र ४८० मील है और कुछ क्षुद्र ग्रहों का व्यास तो शायद १० मील से भी कम है। अधिकतर तो इनका व्यास १० से ५० मील तक का ही पाया गया है। और ऐसा अनुमान है कि

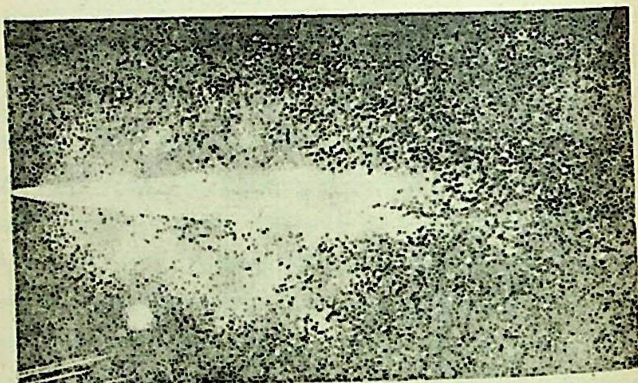
1. Asteroids

सम्भवतः समस्त क्षुद्र ग्रहों का सम्मिलित द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के १/६४०वें अंश से अधिक नहीं है।

यह कहना न होगा कि इन क्षुद्र ग्रहों की गति पूर्ण रूप से केपलर के नियमों के अनुसार नहीं होती, क्योंकि वृहस्पति तथा अन्य ग्रहों के आकर्षण के कारण इनकी कक्षाओं की आकृतियाँ बहुत कुछ विकृत हो जाती हैं।

धूमकेतु अथवा पुच्छल तारे[1]

उपर्युक्त ग्रहों आदि के अतिरिक्त सौर परिवार में कुछ ऐसे भी पिंड हैं जो सदा तो नहीं, किन्तु कभी-कभी आकाश में दिखाई देते हैं। ये



आकृति ४.५

केवल कुछ सप्ताहों या महीनों तक ही दिखाई देते रहते हैं और फिर ग़ायब हो जाते हैं। ये गोल आकृति के नहीं होते। इनके पीछे एक पूंछ-सी लगी

1. Comets

रहती है जो पारदर्शक होती है। अर्थात् उसमें से होकर पीछे के तारे दिखाई देते रहते हैं। ज्यों-ज्यों धूमकेतु सूर्य के निकट आता जाता है त्यों-त्यों यह पूँछ लम्बाई और चौड़ाई में पहले क्रमशः बढ़ती जाती है और फिर घटने लगती है। कोई-कोई धूमकेतु तो इतने बड़े हो जाते हैं कि उनकी पूँछ आधे आकाश में फैल जाती है और उनकी ज्योति इतनी बढ़ जाती है कि वे दिन में भी दिखाई देने लगते हैं। किन्तु ऐसे बहुत कम होते हैं। अधिकतर तो बहुत ही छोटे होते हैं और दूरबीन से ही देखे जा सकते हैं। ऐसे दो-चार छोटे धूमकेतु तो आकाश में प्रत्येक रात्रि को देखे जा सकते हैं। अब तक जितने धूमकेतु देखे गये हैं उनकी संख्या १००० से कम नहीं है।

इनकी गतियों के प्रेक्षण से मालूम हुआ है कि ये भी ग्रहों की ही भाँति सूर्य की परिक्रमा करते हैं और उन्हीं की तरह इनकी कक्षाएँ भी दीर्घवृत्तीय होती हैं। फ़र्क यह है कि ये दीर्घवृत्त बहुत ही लम्बे होते हैं। फलतः ये पिंड कभी तो सूर्य के अत्यन्त निकट पहुँच जाते हैं और कभी इतनी दूर चले जाते हैं कि हमारी दूरबीनों की पहुँच से भी बाहर हो जाते हैं। इनका परिक्रमण-काल भी बहुत बड़ा होता है। लगभग ४० धूमकेतुओं का परिक्रमण-काल तो ३ से ९ वर्षों तक का है। प्रायः २० का १०० और १००० वर्ष के बीच में है और ३० का १००० और १०००० वर्ष के बीच में। ये लम्बे परिक्रमणकाल उनकी कक्षाओं के केवल थोड़े से भाग के प्रेक्षणों ही से गणित द्वारा मालूम किये गये हैं। अतः इनकी यथार्थता में शंका हो सकती है। कुछ थोड़े से ही धूमकेतुओं को अपनी कक्षा का परिक्रमण पूरा कर लेने के बाद पुनः दृष्टिगोचर होते देखा गया है।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि अनेक धूमकेतुओं की परिक्रमण-दिशा ग्रहों की अपेक्षा उलटी होती है। लगभग आधे दक्षिणावर्ती होते हैं और आधे वामावर्ती और उनकी कक्षाओं के तल क्रान्तिवृत्तीय तल से जो कोण बनाते हैं, उनके मान ०° से १८०° तक देखे गये हैं। ऐसा

क्यों होता है इसका रहस्य अभी तक सन्तोषजनक रीति से समझ में नहीं आ सका है।

कुछ धूमकेतु ऐसे भी हैं जिनकी कक्षाएँ परवलय[1] अथवा अतिपरवलय[2] की आकृति की जान पड़ती हैं। यद्यपि ऐसी कक्षाएँ गुरुत्वाकर्षण के नियमों के विरुद्ध नहीं हैं तथापि यह दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये भी दीर्घवृत्तीय ही नहीं हैं। इनके जितने भाग का प्रेक्षण किया गया है वह उस शंका को मिटाने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि वास्तव में ये कक्षाएँ परवलयाकार या अतिपरवलयाकार हों तो ऐसे धूमकेतु एक बार सूर्य के निकट आकर चले जाने के बाद फिर लौट कर कभी नहीं आयेंगे।

उल्का[3]

इन्हें टूटते तारे भी कहते हैं। प्रायः प्रत्येक रात्रि में ऐसा दिखाई देता है कि आकाश में सहसा कोई अत्यन्त चमकदार पिंड प्रकट होता है तथा क्षण भर वेगपूर्वक दौड़ता दिखाई देता है और तब सहसा अदृश्य हो जाता है। दृष्टि-निर्बन्ध[4] के कारण हमें एक चमकीली रेखा क्षण भर के लिए दिखाई दे जाती है।

वास्तव में ये तारे नहीं हैं। इनका अत्यधिक वेग ही बताता है कि जिस समय ये दिखाई देते हैं उस समय ये पृथ्वी के बहुत ही निकट होते हैं। ये अत्यन्त छोटे-छोटे द्रव्य-कण होते हैं जो ग्रहों की ही भाँति सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। कई तो किसी धूमकेतु की कक्षा ही में घूमते दिखाई देते हैं। इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः वे उस धूमकेतु की पूँछ के ही बिखरे हुए टुकड़े हैं। इनमें से अधिकतर तो बालू के कण से अधिक बड़े नहीं होते। किन्तु कोई-कोई कई टन वज़न के भी होते हैं।

1. Parabola   2. Hyperbola   3. Meteors
4. Persistence of vision

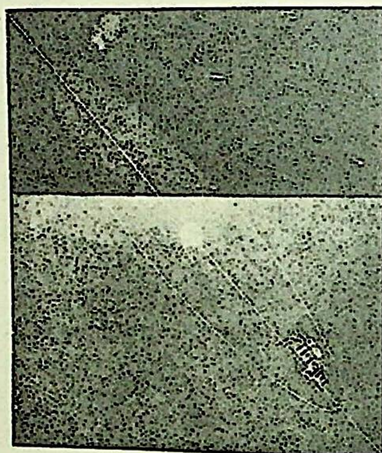
वैसे तो ये दिखाई नहीं देते किन्तु जब ये पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर जाते हैं और वायु के अणुओं में होकर प्रचंड वेग से दौड़ते हैं, तब इतनी गरमी पैदा हो जाती है कि ये प्रज्ज्वलित हो जाते हैं और हमें दिखाई देने लगते हैं। किन्तु क्षण भर में वे वाष्प-रूप में परिणत हो जाते हैं और पृथ्वी-तल तक पहुँच ही नहीं पाते। कभी कभी कोई बड़ा पिंड पृथ्वी पर गिर भी पड़ता है और पृथ्वी में धँसकर बहुत बड़ा गढ़ा बना देता है। अरिज़ोना[1] में एक गढ़ा ५७० फ़ुट गहरा तथा ४२०० फ़ुट व्यास का पाया गया है, जो अवश्य ही ऐसे उल्का-पात के कारण ५००० वर्ष पहले बना था। १९०८ में साइबेरिया[2] में जो उल्का-पात हुआ था, उसके कारण तीन-चार हज़ार वर्गमील का क्षेत्रफल नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। उसके केन्द्र के चारों ओर प्रायः १० मील तक सब चीजें झुलस गयी थीं। प्रायः १५ मील दूर तक के पेड़ वायु के धक्के से टूट गये थे और ३० मील तक के पेड़ केन्द्र से दूसरी ओर झुक गये थे। सर्वत्र अगणित छोटे-बड़े गढ़े बन गये थे जिनमें सबसे बड़े का व्यास १५० फ़ुट था। इससे प्रकट होता है कि गिरते समय उल्का चूर-चूर हो गयी थी।

इस प्रकार गिरे हुए अनेक उल्का-पिंडों का संग्रह करके उन्हें अजायब-घरों में रख दिया गया है। इनमें सबसे बड़े पिंड का वज़न ३६°५ टन है। ये बहुधा पत्थर या चट्टान के टुकड़े-जैसे ही दिखाई देते हैं, किन्तु इनमें प्रायः लोहा, निकल आदि धातुएँ अधिक मात्रा में होती हैं। विश्लेषण करने पर इनमें पृथ्वी के ही प्रायः ३० रासायनिक तत्त्व[3] पाये गये हैं, किन्तु इनमें एक भी ऐसा तत्त्व नहीं मिला जो पृथ्वी पर न पाया जाता हो।

1. Arizona
2. Siberia
3. Elements

राशिचक्रीय प्रकाश[1]

जब रात्रि में आकाश बिलकुल स्वच्छ हो और चन्द्रमा भी उपस्थित न हो, तो सूर्योदय से पहले या सूर्यास्त के पश्चात्, क्रान्तिवृत्तीय अथवा राशिचक्रीय आकाश में यह प्रकाश दिखाई देता है। क्षितिज के पास तो इसकी चौड़ाई बहुत होती है किन्तु ऊपर की ओर इसकी चौड़ाई घटती



आकृति ४.६

जाती है। वस्तुतः इसकी आकृति दीर्घवृत्त की सी नज़र आती है। ऐसा विश्वास है कि क्रान्तिवृत्तीय तल में या उसके आसपास अत्यन्त छोटे द्रव्य-कण या सम्भवतः द्रव्य के अणु अगणित संख्या में सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इन्हीं पर जब सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो इनसे प्रकीर्ण[2] होकर हमारे नेत्रों में पहुँचता है। इसी से राशिचक्र के कुछ भाग में यह क्षीण-सा प्रकाश दिखाई देता है।

1. Zodiacal Light 2. Scatter

परिच्छेद ५

खगोल यान्त्रिकी तथा गुरुत्वाकर्षण[1]

न्यूटन के गति-सम्बन्धी नियम

पृथ्वीतल पर ऊपर से नीचे गिरती हुई वस्तुओं का प्रेक्षण गैलीलियो[2] ने १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में किया था। उन्हीं का अध्ययन करके न्यूटन ने समस्त द्रव्य-वस्तुओं की गति के सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन नियमों का आविष्कार किया था।

(१) यदि कोई वाह्य बल न लग रहा हो तो प्रत्येक गतिमान् वस्तु सरल रेखा में चलती है और उसके वेग में परिवर्तन बिलकुल नहीं होता।

(२) यदि उस पर कोई वाह्य बल लगाया जाय तो उसके संवेग[3] में जो परिवर्तन होता है, वह उस बल की दिशा में ही होता है और इस संवेग-परिवर्तन की दर बल P की समानुपाती होती है। संवेग का अर्थ है द्रव्यमान[4] m और वेग v का गुणनफल अर्थात् mv । अतः बल का मात्रक समुचित चुनने पर $\frac{d}{dt}(mv) = P$ ......(1)

यदि द्रव्यमान m को अचर[5] मान लिया जाय तो इस नियम का अर्थ

1. Celestial Mechanics and Gravitation
2. Galileo ३. Momentum 4 Mass
5. Constant

यह भी है कि वस्तु का त्वरण[1] $f=\frac{dv}{dt}$ भी बल का समानुपाती होता है।

$$P=\frac{d}{dt}\ (mv)=m\ \frac{dv}{dt}=m.\ f. \qquad \ldots\ldots(२)$$

(३) यदि एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु पर कोई बल P लगा रही हो तो दूसरी वस्तु भी पहली पर ठीक उतना ही बल P विपरीत दिशा में लगायेगी। संक्षेप में क्रिया तथा प्रतिक्रिया[2] परिमाण में बिलकुल बराबर किन्तु दिशा में विपरीत होती हैं।

समस्त इंजीनियरी तथा भौतिकविज्ञान इन्हीं नियमों पर आधारित है और खगोलीय पिंडों की गति भी इन्हीं नियमों के अनुसार होती है। विज्ञान के लिए ये न्यूटन की महान् देन हैं।

केन्द्रीय बल के कारण गति

यदि किसी वस्तु पर ऐसा बल लग रहा हो जिसकी दिशा सदा किसी एक विशेष केन्द्रीय बिन्दु की ओर ही रहे तो इन्हीं नियमों के द्वारा न्यूटन ने प्रमाणित कर दिया था कि उस वस्तु का गमन-पथ उस बल-केन्द्र की ओर अवतल[3] वक्र की आकृति धारण कर लेगा तथा यह पथ और बल-केन्द्र एक ही समतल[4] में अवस्थित रहेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि बल-केन्द्र से उस वस्तु को जोड़ने वाली रेखा (सदिशत्रिज्या)[5] की लम्बाई और दिशा इस प्रकार बदलेंगी कि उस सदिश त्रिज्या द्वारा प्रति सेकंड अतिक्रान्त क्षेत्रफल का मान अचर रहेगा। विपरीततः यदि किसी वस्तु की गति के प्रेक्षण से यह क्षेत्रफलीय वेग अचर पाया जाय तो हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि उस वस्तु पर कोई केन्द्रीय बल लग रहा है।

1. Acceleration 2. Action and reaction
3. Concave 4. Plane 5. Radius vector

वृत्तीय गति

यदि कोई वस्तु वृत्ताकार पथ पर एक-समान वेग से चल रही हो तो उपर्युक्त नियमों से स्पष्ट हो जाता है कि उस पर लगने वाले बल का मान भी अचर ही होगा। यह अभिकेन्द्र बल कहलाता है। और यह भी आसानी से प्रमाणित हो जाता है कि

$$\text{अभिकेन्द्र-बल} = \frac{mv^2}{r} \cdots\cdots (३)$$

है जहाँ m उस वस्तु का द्रव्यमान, v उसका रेखीय वेग और r उस वृत्तीय पथ की त्रिज्या हैं। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि उस वस्तु के त्वरण का मान $\frac{v^2}{r}$ होता है और उसकी दिशा केन्द्राभिमुखी होती है। यदि उसका कोणीय वेग w हो तो $v = rw$ होगा। और

$$\text{अभिकेन्द्र बल} = mrw\ 2 \cdots\cdots (3a)$$

केपलर के नियम

दीर्घकालीन अत्यन्त यथार्थतापूर्ण प्रेक्षणों से केपलर ने सौर परिवार के ग्रहों की गति के सम्बन्ध में जिन तीन विख्यात नियमों का प्रतिपादन किया था, वे परिच्छेद ४ में दिये जा चुके हैं। न्यूटन ने यह परिकल्पना बनायी कि ग्रह की दीर्घवृत्तीय गति के लिए जितने अभिकेन्द्र बल की आवश्यकता होती है वह सूर्य तथा ग्रह के पारस्परिक आकर्षण से प्राप्त होता है। उनके द्वितीय नियम का मिलान उपर्युक्त केन्द्रीय बल द्वारा उत्पन्न गति से करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहों पर जो बल लग रहा है, उसकी दिशा सदा सूर्याभिमुखी होती है। अर्थात् ग्रह की गति केन्द्रीय है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उस बल का परिमाण कितना है। न्यूटन ने इस प्रश्न का उत्तर केपलर के प्रथम तथा द्वितीय नियमों में से ढूंढ़ निकाला। यह बल ग्रह-कक्षा की सदिश-त्रिज्या के वर्ग का उत्क्रमानुपाती होता है अर्थात् यदि किसी क्षण सूर्य से ग्रह की दूरी r हो तो उस क्षण पर यह बल

$$F \propto \frac{1}{r^2} \cdots\cdots (3)$$

होता है। और केपलर के तृतीय नियम के द्वारा न्यूटन ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि विभिन्न ग्रहों पर इस बल का मान उन ग्रहों के द्रव्यमानों का समानुपाती भी होना चाहिए। अर्थात्

$$F \alpha\, m. \ldots\ldots (4)$$

और अन्त में गति के तृतीय नियमानुसार जितना वल सूर्य ग्रह पर लगाता है उतना ही वल ग्रह भी सूर्य पर लगाता है। अर्थात् सूर्य तथा ग्रह में पारस्परिक आकर्षण होता है। और यदि ग्रह पर लगनेवाला सूर्य का बल ग्रह के द्रव्यमान का समानुपाती हो तो सूर्य पर लगनेवाला ग्रह का बल भी सूर्य के द्रव्यमान M का भी समानुपाती होना चाहिए।

अतः यह आकर्षण बल $F \propto \frac{M.\, m}{r^2}$

अथवा $F = G.\frac{M.\, m}{r^2}$ (5)

जहां G कोई विशेष नियतांक है। और यह समीकरण सभी ग्रहों पर लागू है।

गुरुत्वाकर्षण नियम[1]

इस प्रकार जव न्यूटन ने देखा कि सूर्य तथा प्रत्येक ग्रह में आकर्षण होता है और उस आकर्षण का मान समस्त ग्रहों के लिए उपर्युक्त नियमानुसार व्यक्त किया जा सकता है तो उनके मन में यह परिकल्पना उत्पन्न हुई कि यह नियम अवश्य ही अधिक व्यापक है और सूर्य तथा ग्रहों के अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्य-वस्तुओं पर यह लागू होना चाहिए। इस परिकल्पना के

1 Law of gravitation

अनुसार वस्तुओं के पृथ्वी की तरफ़ समान त्वरण से गिरने का भी कारण यह है कि पृथ्वी समस्त वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। वस्तुतः यह आकर्षण-शक्ति द्रव्य मात्र का गुण है। इस गुण का नाम उन्होंने गुरुत्वाकर्षण[1] रख दिया। सन् १६६५ में उन्होंने इस सर्वव्यापी नियम का प्रतिपादन निम्नलिखित रूप में किया था।

"प्रत्येक द्रव्य-कण प्रत्येक दूसरे द्रव्य-कण को अपनी ओर आकर्षित करता है और इस आकर्षण-वल का मान दोनों कणों के द्रव्यमानों (m_1 तथा m_2) का समानुपाती होता है और दोनों कणोंके वीच की दूरी के वर्ग का उत्क्रमानुपाती होता है।"

अर्थात् समीकरण $F = G\frac{m_1 \times m_2}{r^2}$ में नियतांक G सार्वत्रिक[2] है और समस्त विश्व में सर्वत्र उसका एक ही मान होता है, इसे गुरुत्वीय नियतांक[3] कहते हैं। उसमें कभी भी और कहीं भी कोई परिवर्तन नहीं होता।

इस नियम की कड़ी परीक्षा प्रयोगशाला में भी अनेक प्रयोगों के द्वारा हो चुकी है और सर्वदा ही यह बिलकुल सही पाया गया है।

इस नियम में जिन द्रव्य-कणों का उल्लेख है वे निश्चय ही ज्यामितीय विन्दु के आकार के माने गये हैं। किन्तु वास्तव में ऐसे द्रव्य-कण पर कोई भी प्रयोग करना असंभव है। प्रेक्षणयोग्य सभी वस्तुएँ अनेक द्रव्य-कणों का समुदाय होती हैं। अतः एक वस्तु के प्रत्येक कण का दूसरी वस्तु के प्रत्येक कण पर जितना-जितना आकर्षण-वल उपर्युक्त सूत्र के अनुसार होता है उन सब वलों के सम्मिलित परिणाम के ही बराबर उन दोनों वस्तुओं का पारस्परिक आकर्षण-वल होगा। इस परिणमित बल[4] के मान का परि-

1. Gravitation
2. Universal
3. Gravitational Constant
4. Resultant force

कलन अत्यन्त कठिन है। किन्तु यदि वे वस्तुएँ गोलाकार[1] हों तो न्यूटन ने गणित द्वारा प्रमाणित कर दिया कि परिणमित वल प्राप्त करने के लिए यह मान लिया जा सकता है कि प्रत्येक गोल वस्तु के समस्त कणों का द्रव्य-मान उसके केन्द्र विन्दु पर ही अवस्थित है। अर्थात् इस परिकलन के लिए हम प्रत्येक गोले के स्थान में एक भारी द्रव्य-कण की कल्पना कर सकते हैं और इन दोनों कल्पित द्रव्य कणों के वीच की दूरी को उन दोनों गोलों के केन्द्रों के वीच की दूरी के बरावर मान सकते हैं। इस युक्ति के द्वारा हम कह सकते हैं कि पृथ्वी-तल पर स्थित m ग्राम द्रव्यमान वाली वस्तु पर गोलाकार पृथ्वी का आकर्षण वल

$$W=G.\frac{m.\,E}{R_2}=mg \qquad (6)$$

जहाँ E पृथ्वी का द्रव्यमान है और R पृथ्वी की त्रिज्या है। इसी आकर्षण-वल को हम उस वस्तु का भार कहते हैं। और वस्तु का पृथ्वी की ओर त्वरण होगा

$$g=\frac{w}{m}=G.\frac{E}{R_2} \qquad (7)$$

इसे गुरुत्वीय त्वरण कहते हैं और स्पष्ट ही है कि इस का मान छोटी बड़ी सभी वस्तुओं के लिए वरावर होता है, क्योंकि यह मान वस्तु के द्रव्यमान पर अवलम्वित नहीं है। यह आसानी से नापा भी जा सकता है।

यहां हम स्मरण देना चाहते हैं कि द्रव्यमान m तो उस वस्तु के द्रव्य की मात्रा का मान है किन्तु भार उस पर लगनेवाले पृथ्वी के आकर्षण-बल का मान है। अतः भार का मात्रक वास्तव में वल का मात्रक डाइन[2] ही है। किन्तु व्यवहार में भार के इस निरपेक्ष[3] नाप की आवश्यकता नहीं

1. Spherical 2. Dyne 3. Absolute

होती और हम केवल यह नाप लेते हैं कि यह बल एक ग्राम द्रव्यमान वाली वस्तु पर लगनेवाले आकर्षण-बल की अपेक्षा कितने गुना है। अतः इसका व्यावहारिक मात्रक है एक ग्राम-भार। और इस तुलना के लिए तुला[1] बड़ा उपयुक्त साधन है, क्योंकि उसमें सन्तुलन[2] का अर्थ प्रत्यक्षतः यही है कि दोनों पलड़ों में रखी हुई वस्तुओं पर पृथ्वी बराबर परिमाण का बल लगाती है।

गुरुत्वीय नियतांक[3]

इस नियतांक को नापने के लिए अनेक युक्तियों का उपयोग किया गया है। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) सबसे पहले तो सन् १७७४ में लम्बे डोरे से लटके हुए धातु के गोले पर एक छोटी पहाड़ी का आकर्षण-बल नापा गया था जिसके कारण गोला पहाड़ी की तरफ थोड़ा-सा खिंच जाता है और उसकी डोर ऊर्ध्वाधर रेखा से थोड़ी-सी विचलित हो जाती है। सर्वेक्षण द्वारा पहाड़ी का आयतन तथा औसत घनत्व नापकर उसका द्रव्यमान मालूम कर लिया गया था और तब विचलन कोण नापने से आकर्षण-बल ज्ञात हो गया था।

(२) किन्तु इससे बहुत अधिक यथार्थतापूर्ण नाप कैवेन्डिश[4] ने सन् १७९८ में लिया था। एक पतली छड़ के दोनों छोरों पर दो छोटे-छोटे धातु के गोले लटका दिये गये थे और इस छड़ को अत्यन्त पतले स्फटिक-तन्तु[5] से क्षैतिजतः लटका दिया गया था। तब धातु के एक बड़े और भारी गोले को छड़ के एक छोर के पार्श्व में रखा गया। फलतः छोटे गोले पर इस बड़े गोले का आकर्षण होने के कारण छड़ थोड़ी-सी घूम गयी। इससे

1. Balance
2. Equilibrium
3. Gravitational Constant
4. Cavendish
5. Quartz fibre

स्फटिकतन्तु में जो ऐंठन हुई उसे नापकर आकर्षण-बल का मान ज्ञात किया गया।

(३) सन् १८८१ में जाली[1] ने साधारण रासायनिक तुला का इस कार्य के लिए उपयोग किया। दोनों पलड़ों की जगह दो छोटे गोले बराबर वज़न M_1 के लटका दिये गये और तुला का सन्तुलन कर लिया गया। तब एक बड़ा गोला एक तरफ़वाले गोले के ठीक नीचे रख दिया गया। इसका वज़न M_2 था। इससे तुला का सन्तुलन बिगड़ गया जिसे दूसरी तरफ़ छोटा-सा वज़न m रखकर फिर बराबर कर लिया गया। स्पष्ट है कि दोनों गोलों का पारस्परिक आकर्षण उस छोटे वजन m पर पृथ्वी के आकर्षण के बराबर है अर्थात् mg के बराबर है। इस दशा में छोटे और बड़े गोलों के केन्द्रों के बीच की दूरी d भी नाप ली गयी। अतः

$$mg = G.\frac{M_1 M_2}{d^2}$$

इसमें G के सिवाय सभी राशियाँ ज्ञात थीं अत: G का मान ज्ञात हो गया। ऐसे ही अनेक प्रकार के प्रयोगों से G का माध्यमान 6.66×10^{-8} निकला है।

चन्द्रमा द्वारा गुरुत्वाकर्षण नियम की परीक्षा

यदि यह नियम सार्वत्रिक हो, तो न्यूटन ने सोचा कि चन्द्रमा की पृथ्वी परिक्रमण-कक्षा के प्रेक्षण से इस नियम की परीक्षा हो सकती है। स्पष्ट है कि पृथ्वी और चन्द्रमा के पारस्परिक आकर्षण के ही कारण चन्द्रमा की परिक्रमण-कक्षा वृत्ताकार बनी है। इस आकर्षण-बल का परिमाण होगा

$$F = G.\frac{M.E}{d^2} \qquad (8)$$

1. Joly

जहाँ M तथा E तो क्रमशः चन्द्र तथा पृथ्वी के द्रव्यमान हैं और d उनके केन्द्रों के वीच की दूरी। अतः पृथ्वी की दिशा में चन्द्रमा का त्वरण होगा

$$f=G\frac{E}{d^2} \qquad (9)$$

ऊपर समीकरण 7 में हम देख चुके हैं कि पृथ्वी के निकट गुरुत्वीय त्वरण

$$g=G\frac{E}{R^2} \qquad (7)$$

$$\therefore \quad \frac{f}{g}=\frac{R^2}{d^2}$$

इसमें g, R और d तो पहले ही नापे जा चुके थे और उनके मान थे g= ९८० सेंमी०/सैक^2; R=४००० मील=६·४×१०^6 सेंमी० और

d=२३८००० मील=३·८×१०^{10} सेंमी०

∴ f=·27 सेंमी०/सैकं^{2}

किन्तु चन्द्रमा का त्वरण प्रत्यक्ष प्रेक्षण के द्वारा भी नापा जा सकता है। हम जानते हैं कि वह २७ दिन में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है। अर्थात् उसका परिक्रमणकाल T=27×24×60×60 सैकंड है। अतः उसका रेखीय वेग है

$$v=\frac{2\pi d}{T}$$

और अभिकेन्द्र त्वरण है $f=\frac{v^2}{d}=\frac{4\pi^2 d}{T^2}=\frac{4\pi^2\times3\cdot8\times10^{10}}{(27\times24\times60\times60)^2}$

=·27 सेंमी०/सैकं^{2}

स्पष्ट ही हैं कि प्रेक्षित और सैद्धान्ति त्वरण बराबर हैं।

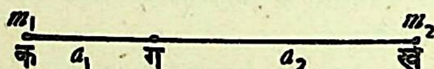
केन्द्रीय गति का अधिक गहरा अध्ययन

केन्द्रीय गति का जो विवरण ऊपर दिया गया है और उसके जो नियम ऊपर बताये गये हैं उनमें यह मान लिया गया है कि केन्द्रीय वस्तु स्थिर रहती

है और उसमें कुछ भी गति नहीं होती। किन्तु वास्तव में ऐसा होना सम्भव नहीं, क्योंकि न्यूटन के तृतीय गति-नियम के अनुसार आकर्षण पारस्परिक होता है और केन्द्रीय वस्तु पर भी उसके चारों ओर परिक्रमण करनेवाली वस्तु उतने ही परिमाण का बल लगाती है। अतः यह अनिवार्य है कि केन्द्रीय वस्तु में भी उसी प्रकार की गति उत्पन्न हो और वह भी दूसरी वस्तु की परिक्रमा करे। यह ठीक है कि यदि केन्द्रीय वस्तु का द्रव्यमान अधिक हो तो उसमें त्वरण कम पैदा होगा और उसकी कक्षा भी छोटी होगी। केन्द्रीय वस्तु अचल तो केवल उस आदर्श अवस्था में ही रह सकेगी जब उसका द्रव्यमान अनन्त हो।

इसलिए न्यूटन ने दोनों ही वस्तुओं की गति का सैद्धान्तिक अध्ययन किया और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि—

(१) दोनों वस्तुओं का गुरुत्व-केन्द्र अथवा द्रव्यकेन्द्र[1] अचल रहता है। गुरुत्वाकर्षण का उस पर कुछ भी असर नही पड़ता। यह गुरुत्व केन्द्र वह बिन्दु होता है जो दोनों वस्तुओं की बीच की दूरी को उनके द्रव्यमानों के उत्क्रम अनुपात में विभाजित करता है। यदि चित्र ५.१ में



आकृति ५.१

क तथा ख दो गोले हैं जिनके द्रव्यमान क्रमशः m_1 और m_2 हैं तो उनका गुरुत्व-केन्द्र ऐसा बिन्दु ग होगा कि

$$\frac{a_1}{a_2}=\frac{CA}{CB}=\frac{m_2}{m_1} \qquad (10)$$

1. Centre of mass

(२) दोनों ही गोले C की परिक्रमा ऐसे दीर्घवृत्तीय पथों पर करते हैं कि उनका गुरुत्वकेन्द्र सदा C पर ही बना रहता है। यही दोनों कक्षाओं की नाभि (फोकस) होती है और इन कक्षाओं के दीर्घ अक्षों की लम्बाइयाँ उन गोलों के द्रव्यमानों की उत्क्रमानुपाती होती हैं। C की अपेक्षा A और B के कोणीय वेग बराबर होते हैं।

(३) यदि m_2 की अपेक्षा m_1 बहुत ही बड़ा हो तो A और C में व्यवधान बहुत कम होता है। जैसे सूर्य का द्रव्यमान पृथ्वी की अपेक्षा ३,३०,००० गुना अधिक है (परिच्छेद ९)। अतः गुरुत्वकेन्द्र C सूर्य के केन्द्र A से केवल ३०० मील की दूरी पर अवस्थित है। यह दूरी सूर्य के व्यास की तुलना में इतनी कम है कि हम गुरुत्वकेन्द्र को सन्निकटतः सूर्य के केन्द्र पर ही मान ले सकते हैं। अतः सूर्य को भी सन्निकटतः अचल समझ सकते हैं।

(४) किन्तु जब m_2 की अपेक्षा m_1 अधिक बड़ा नहीं होता तब ऐसा नहीं समझा जा सकता। जैसे चन्द्रमा का द्रव्यमान m_2 पृथ्वी के द्रव्यमान m_1 के १।८१.५ वें भाग के बराबर है (परिच्छेद ९)। अतः पृथ्वी और चन्द्रमा का गुरुत्वकेन्द्र ग पृथ्वी के केन्द्र पृ से प्रायः २८८० मील पर है। चन्द्रमा वास्तव में इसी बिन्दु ग की परिक्रमा करता है, पृथ्वी के केन्द्र की नहीं। और पृथ्वी भी इसी बिन्दु की परिक्रमा करती है।

(५) ऐसी दशा में अभिकेन्द्र-बल के दो समीकरण होंगे—

$$G\frac{m_1m_2}{(a_1+a_2)^2}=m_1a_1w^2=m_2a_2w^2 \ldots (11)$$

[समी० 3*a* किन्तु समी० 10 से

$$\frac{a_1}{a_1+a_2}=\frac{m_2}{m_1+m_2}$$

$$\therefore a_1=\frac{m_2\ (a_1+a_2)}{(m_1+m_2)} \qquad (12)$$

$$\text{तथा } w=\frac{2\pi}{T}$$

अतः a, तथा w के इन मानों को समी० 11 में निविष्ट करने पर

$$\frac{m_1m_2}{m_1+m_2}(a_1+a_2)\frac{4\pi^2}{T^2}= G\frac{m_1m_2}{(a_1+a_2)^2}$$

$$\text{अथवा } \frac{(a_1+a_2)^3}{T^2}=\frac{a^3}{T^2}= G\frac{m_1+m_2}{4\pi^2}=\text{अचर} \qquad (13)$$

यही केपलर के तृतीय नियम का संशोधित रूप है।
यदि $m_1 \gg m_2$ हो तो इसका सरलतर रूप हो जाता है

$$\frac{a^3}{T^2}=G\ \frac{m_1}{4\pi^2}=\text{अचर}$$

परिच्छेद ६

तारों का सामान्य परिचय

सूर्य तथा सौर परिवार के समस्त ग्रहों, उपग्रहों, धूमकेतुओं आदि गतिशील खगोलीय पिंडों को छोड़कर जब हम अन्य अचल दिखाई देनेवाले तारों का प्रेक्षण करते हैं तब हमें इनके संबंध में कई महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं।

दूरी का अनुमान

सबसे पहले न्यूटन ने ही तारों की दूरी का ठीक ठीक अनुमान किया था। गुरुत्व सिद्धान्त के द्वारा ही उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि ये तारे शनि ग्रह की अपेक्षा सूर्य से सैकड़ों, सहस्रों गुनी दूरी पर अवस्थित होने चाहिए। अन्यथा सूर्य के आकर्षण के कारण या तो वे सूर्य से टकरा जाते या अन्य ग्रहों की तरह वे भी सूर्य की परिक्रमा करते होते। इसके अतिरिक्त, यदि सूर्य के बराबर द्रव्यमान का कोई तारा पृथ्वी से सूर्य की अपेक्षा १००० गुनी दूरी पर भी अवस्थित होता तो उसका प्रभाव यूरेनस तथा नेपटचून ग्रहों की कक्षाओं को अवश्य ही विकृत कर देता। अगले परिच्छेद में तारों की दूरी नापने की विधियों का वर्णन किया गया है। उससे हम देखेंगे कि जो तारा पृथ्वी से निकटतम है, पृथ्वी से उसकी भी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा २,७२,००० गुनी अधिक है। खाली आँख से दिखाई देनेवाले तारों में से आधे से अधिक तो इससे भी १००० गुनी दूरी पर हैं और जो तारे बड़ी दूरबीनों से दिखाई देते हैं वे तो इनसे भी १०,००० गुनी दूरी पर हैं। अतः इस अनन्त विस्तृत आकाश-समुद्र में हमारा यह सौर परिवार एक

अत्यन्त क्षुद्र टापू के सदृश है जिसको दसों दिशाओं में असंख्य तारों-भरे विशाल शून्याकाश ने घेर रखा है।

तारों की दीप्ति

दूसरी बात जो तुरन्त स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि ये समस्त तारे स्वयंदीप्त हैं। ग्रहों की तरह ये सूर्य के प्रकाश के द्वारा प्रदीप्त नहीं हैं। परावर्तित प्रकाश के द्वारा इनका इतनी अधिक दूरी से दिखाई देना सर्वथा असंभव होता। अतः हमें यह मानना पड़ता है कि ये तारे भी हमारे सूर्य के ही समान अत्यन्त गरम पिंड हैं अर्थात् सूर्य के ही समान उनका ताप भी कई हज़ार डिगरी का है।

तारों का वाष्प-मंडल

हमारे सूर्य के समान ही उनमें भी उत्तप्त प्रकाश-मंडल[1] के ऊपर वाष्पीय आवरण विद्यमान है। यह बात उनके प्रकाश का स्पैक्ट्रम देखने से प्रकट होती है। इन स्पैक्ट्रमों में भी सूर्य के स्पैक्ट्रम की ही भाँति प्रदीप्त पृष्ठ-भूमि पर अनेक काली रेखाएँ दिखाई देती हैं। किन्तु इन रेखाओं में तथा सूर्य के स्पैक्ट्रम की रेखाओं में भिन्नता भी बहुत है।

तारों का विस्तार[2]

यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि ये तारे बहुत ही छोटे दिखाई देते हैं तथापि वास्तव में उनमें से बहुत से तो हमारे सूर्य से भी बड़े और अधिक उत्तप्त हैं। अत्यधिक दूरी के ही कारण वे हमें छोटे और मन्द-ज्योति वाले दिखाई देते हैं। यह साधारण अनुभव की बात है कि दूर से आनेवाले प्रकाश की तीव्रता बहुत घट जाती है। प्रकाश की सरल रेखात्मक गति के नियम के द्वारा

1. Photosphere
2. Size

अत्यन्त सरल गणित से ही यह प्रमाणित हो जाता है कि यदि वर्तमान दूरी की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी १००० गुनी अधिक होती तो उसकी ज्योति दस लाख गुनी कम होती और तब वह भी अन्य तारों के ही समान छोटा और मन्द ज्योति वाला दिखाई देता।

आकाशगंगा[1]

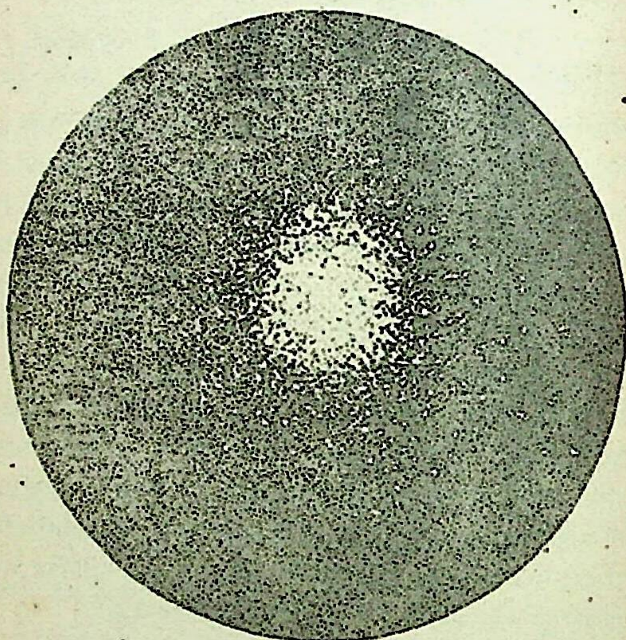
आकाश में इन तारों का वितरण सर्वथा क्रमहीन मालूम पड़ता है। किन्तु खाली आँख से भी दिखाई देता है कि आकाश में लगभग उत्तर-दक्षिण दिशा में अवस्थित एक दीप्त पट्टी है जो आकाशगंगा के नाम से प्रख्यात है। इसे अंग्रेज़ी भाषा में गैलैक्सी या मिलकी वे[2] कहते हैं। इसकी चौड़ाई और दीप्ति सर्वत्र एक-सी नहीं है। इसमें अनेक मन्दज्योति तारे ठसा-ठस भरे हुए हैं जिनकी संख्या अनुमानतः ४.७ × $१०^{१०}$ से कम नहीं है और इसी कारण यह सफ़ेद बादल के समान दिखाई देती है। आकाश में जितने तारे विद्यमान हैं उनमें से अधिकतर संख्या उनकी है जो इस आकाशगंगा के प्रदेश में दिखाई देते हैं। चित्र ६.१ में तारों का यह आकाशगंगेय वितरण दिखाया गया है। इसके अध्ययन से तथा समस्त तारों की दूरियों के अध्ययन से अब यह स्पष्ट हो गया है कि जितने भी तारे हमें खाली आँख से या बड़ी से बड़ी दूरबीन से दिखाई देते हैं वे सब इस आकाशगंगेय संघ के ही तारे हैं और हमारा सूर्य भी इसी संघ का सदस्य है।

तारा-मंडल[3]

विभिन्न तारों के समूहों की आकृतियों को देखकर ज्योतिषियों ने उनमें अनेक जानवरों तथा देवीदेवताओं और अन्य परिचित वस्तुओं के चित्रों से

1. Milky way
2. Galaxy, Milky way
3. Constellations

समानता ढूंढ निकाली है और उन्हीं जानवरों ,आदि के नाम से ये तारा-मंडल प्रसिद्ध हो गये हैं। साधारणतः आजकल सप्तर्षि आदि ८८ तारा-मंडल



आकृति ६.१

सर्वमान्य हो गये हैं और इनमें से भी मुख्य वे हैं जिनमें होकर सूर्य गमन करता दिखाई देता है। ऐसे क्रान्तिवृत्तीय १२ तारा-मंडलों को राशियाँ कहते हैं। इनके नाम क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन हैं। इनमें जानवरों के नामों की बहुलता

स्पष्ट है। किसी विशेष तारे के स्थान को निर्दिष्ट करने के लिए इन तारा-मंडलों का उपयोग किया जाता है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि किसी भी तारा-मंडल के विभिन्न तारों के बीच में कोई भौतिक सम्बन्ध है, वे बहुधा एक दूसरे से अरबों खरबों मील की दूरी पर होते हैं। आकाश के किसी विशेष भाग में पास-पास दिखाई देने के ही कारण उन्हें एक तारामंडल के अन्तर्गत समझा जाता है। अन्यथा वे एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र हैं। इस प्रकार समूहीकरण का उद्देश्य केवल स्थान-निर्देशन मात्र है।

तारा-पुंज[1]

उपर्युक्त तारा-मंडलों के अतिरिक्त आकाश में अनेक तारा-पुंज भी दिखाई देते हैं। इनमें सैकड़ों सहस्रों तारे बिलकुल पास-पास ठसे हुए दिखाई पड़ते हैं। दो-चार पुंजों के तारे तो खाली आँख से भी अलग-अलग दिखाई देते हैं किन्तु अनेक पुंज ऐसे हैं जो बिना दूरबीन के केवल मेघखंड के समान नज़र आते हैं। दूरबीन से अवश्य ही इनके तारे भी स्पष्टतः अलग-अलग हो जाते है। सैकड़ों पुंज तो ऐसे हैं जिनके तारों के विभेदन के लिए बहुत बड़ी दूरबीनों की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ पुंज तो खुले अथवा उन्मुक्त[2] होते हैं अर्थात् उनकी कोई बाह्य परिसीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, किन्तु कुछ पुंज गोलाकृति[3] होते हैं (चित्र ६.१)। इनके केन्द्र में तारों की भीड़ बहुत घनी होती है किन्तु चारों तरफ़ किनारों की ओर यह भीड़ क्रमशः घटती जाती है।

तारा-मेघ[4] तथा नीहारिकाएँ[5]

इनके अतिरिक्त आकाश में अनेक दीप्त धब्बे ऐसे भी हैं जो बहुत दूर

1. Clusters 2. Open 3. Globular
4. Star Clouds 5. Nebula

तक फैले हुए नज़र आते हैं। इनमें से कुछ में तो बहुत बड़ी दूरबीनों के द्वारा अगणित तारे अलग-अलग दिखाई देते हैं, इन्हें तारामेघ कहते हैं। किन्तु अनेक ऐसे भी हैं जो बड़ी से बड़ी दूरबीन में से भी तारों द्वारा बने हुए नहीं मालूम पड़ते। इन दूरबीनों में भी वे बादल के ही समान सफेद और विस्तृत धब्बे-से दिखाई देते हैं। ऐसे धब्बों को नीहारिका कहते हैं। अब यह प्रायः अच्छी तरह प्रमाणित हो गया है कि आकाशगंगा में जो सैकड़ों नीहारिकाएँ दिखाई देतीं हैं वे स्वतः दीप्त नहीं होतीं, आसपास के तारों के प्रकाश से प्रदीप्त होकर ही ये दिखाई पड़ती हैं। यदि इनके पास में कोई तीव्र ज्योति वाला तारा न हो तो ये नीहारिकाएँ काली दिखाई देती हैं और ऐसा मालूम देता है मानो आकाशगंगा को किसी काले परदे



आकृति ६.२

ने ढक लिया हो। जो नीहारिकाएँ आकाशगंगा से बाहर बहुत दूर दिखाई देती हैं और जिनकी संख्या हज़ारों लाखों हैं, वे अन्य प्रकार की

हैं। बहुधा वे सर्पिलाकृति[1] होती हैं (चित्र ६.२)। वे स्वतः दीप्त होती हैं।

युग्म तारा[2]

दूरबीन में कहीं-कहीं दो तारे इतने पास-पास दिखाई देते हैं कि वे परस्पर जुड़े हुए जान पड़ते हैं। कभी-कभी तो वे इतने अधिक मिले रहते हैं कि बहुत बड़ी आवर्धनशक्ति वाली दूरबीनों से ही वे अलग-अलग दिखाई दे सकते हैं। इन्हें युग्म तारे अथवा युगल तारे कहते हैं। इस समय शायद २०,००० से भी अधिक ऐसे युगल तारों का पता लग चुका है। इनके अतिरिक्त कई त्रिक[3] तथा चतुष्क[4] तारे भी विद्यमान हैं। वस्तुतः समस्त तारों में से शायद ८०% युग्म, त्रिक, चतुष्क आदि हैं और केवल २०% ही ऐसे हैं जो हमारे सूर्य की तरह अकेले हैं।

इन युगल तारों में से कुछ तो ऐसे हैं जिनके तारे लगभग एक दृष्टि-रेखा में होने के कारण ही पास-पास दिखाई देते हैं। वास्तव में उनमें कोई पारस्परिक संबंध नहीं होता और न पृथ्वी से दोनों की दूरी ही बराबर होती है। ये प्रकाशीय युग्म[5] कहलाते हैं।

किन्तु अधिकतर युगल तारे भौतिक युग्म[6] होते हैं। वे वास्तव में पास-पास अवस्थित होते हैं और उनमें घनिष्ठ सम्वन्ध रहता है। वे एक-दूसरे की परिक्रमा भी धीरे-धीरे करते रहते हैं। जब यह परिक्रमण आँख से या अच्छी दूरबीन से प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है तब तो इन्हें दृश्य युग्म[7] कहते हैं। किन्तु कुछ युगल तारे ऐसे भी हैं जिनका परिक्रणम दूरबीन से भी

1. Spiral-shaped
2. Binary star
3. Triple
4. Quadruple
5. Optical pair
6. Physical pair
7. Visual binary

नहीं देखा जा सकता। उनके स्पैक्ट्रमों को देखकर ही उनके परिक्रमण का पता चलता है। ये स्पैक्ट्रमीय युग्म[1] कहलाते हैं।

कुछ तारे ऐसे भी होते हैं जिनकी ज्योति घटती-बढ़ती रहती है और इस घट-बढ़ की किसी निश्चित समयान्तराल के बाद पुनरावृत्ति भी होती रहती है। ऐसे तारे भी बहुधा युगल तारे ही होते हैं। इनमें दोनों तारे एक दूसरे की परिक्रमा भी करते रहते हैं। उनकी परिक्रमणकक्षा का तल आकाश में इस प्रकार अवस्थित होता है कि पृथ्वी भी लगभग उसी तल में रहती है। तब कभी-कभी परिक्रमण करते-करते एक तारा दूसरे को ढक लेता है—ठीक वैसे ही जैसे सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है। और यह क्रिया नियत आवर्तकाल के अन्तराल से पुनः-पुनः होती रहती है। जब-जब ऐसा होता है तब-तब युगल तारे की ज्योति घट जाती है। इस प्रकार के ग्रहण अथवा ग्रास के कारण ऐसे युगल तारे ग्रासशील युग्म[2] कहलाते हैं।

जब दो तारे इतने पास-पास होते हैं कि दूरबीन की विभेदन शक्ति उन्हें पृथक् नहीं कर सकती, अथवा उनकी ज्योति इतनी मंद होती है कि उनका स्पैक्ट्रमीय विभेदन भी संभव नहीं होता, तब भी इस प्रकार के ज्योति-परिवर्तन से उनकी युग्मता का आभास मिल जाता है। और जब युग्म में से एक तारा दूसरे की अपेक्षा बहुत मंद ज्योति वाला होता है तब तो यह ज्योति-परिवर्तन बहुत ही स्पष्ट हो जाता है।

इन युग्म-तारों के परिक्रमण-काल यथार्थतापूर्वक नाप लिये गये हैं और उनकी कक्षाएँ भी ठीक-ठीक निर्धारित कर ली गयी हैं। इन प्रेक्षणों से यह अनुमान सत्य प्रतीत होता है कि इस परिक्रमण का कारण पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण ही है, क्योंकि ये तारे केपलर के नियमों का भी पालन करते हैं।

1. Spectroscopic binary
2. Eclipsing binary

अतः इनकी पारस्परिक दूरी का भी ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है

चरकांति तारे[1]

बहुत से तारे युगल न होने पर भी ऐसे हैं जिनकी ज्योति में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता ही रहता है। कभी-कभी तो यह परिवर्तन इतना अधिक होता है कि जहाँ पहले कोई भी तारा दिखाई नहीं देता था वहीं सहसा एक अत्यन्त दीप्तिमान् नया तारा प्रकट हो जाता है। और ऐसे तो कई तारे हैं जिनकी ज्योति एक दो दिन में ही बढ़कर प्रायः दो लाख गुनी हो गयी। ऐसा सहसा प्रकट होनेवाला तारा नव तारा[2] कहलाता है।

चरकांति तारों का आविष्कार अधिकतर फ़ोटोग्राफी के द्वारा ही हुआ हैं। एक ही दूरवीन से विलकुल एक-सी विधि से विभिन्न समयों पर प्राप्त किये हुए तारा-मंडलों के अनेक चित्र वेधशालाओं में संगृहीत रहते हैं। पहले तो ये चित्र नेगेटिव[3] के रूप में ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् इनमें तारों के प्रतिविम्व तो काले होते हैं और पृष्ठ-भूमि का आकाश पारदर्शी होता है। इन गोल प्रतिविम्बों के व्यास तारों की ज्योति के परिचायक होते हैं। जिस तारे की ज्योति जितनी अधिक होती है उसके प्रतिबिम्ब का व्यास भी उतना ही बड़ा होता है। अतः इस व्यास के परिवर्तन को नापने से ज्योति के परिवर्तन का पता चल जाता है। यह नाप अत्यन्त कठिन होने पर भी निम्नलिखित उपाय से उसका ज्ञान सरलता से हो जाता है। उपर्युक्त नेगेटिव चित्रों से पाज़िटिव[4] छाप लिये जाते हैं जिससे ऐसे प्लेट प्राप्त हो जाते हैं जिनमें पृष्ठ-भूमि तो काली होती है और तारों के प्रतिबिम्ब पारदर्शी होते हैं। अब यदि इस पाज़िटिव पर विभिन्न

1. Variable stars
2. Nova
3. Negative
4. Positive

समयों पर प्राप्त किये हुए नेगेटिव प्लेट अध्यारोपित किये जायें तो तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि किस तारे की ज्योति में परिवर्तन हुआ है। तब इसी तारे के विभिन्न समयों के अनेक चित्रों के अध्ययन से उसकी ज्योति के परिवर्तन का इतिहास मालूम हो जाता है।

जिन चरकांति तारों की ज्योति तीव्र होती है उनका आविष्कार तो प्रत्यक्षत: ज्योतिमापन की विधि से हुआ है किन्तु कुछ का आविष्कार स्पैक्ट्रमों से भी हुआ है।

ऐसा अनुमान है कि समस्त तारों में से कम से कम ५% तो चरकांति हैं ही। ५००० से अधिक चरकांति तारों के ज्योति-परिवर्तन का तो अध्ययन किया जा चुका है। अधिकतर ऐंसे तारे तीव्र ज्योति वाले होते हैं। इन तारों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) आवर्ती[1]

इनकी ज्योति कुछ समय तक घटती जाती है और न्यूनतम मान को प्राप्त करने के बाद पुनः बढ़ने लगती है। फिर नियत समय के बाद पुनः घटने लगती है। यही क्रम बार-बार चलता रहता है। ऐंसे तारों की संख्या १००० से अधिक है। ये भी तीन प्रकार के होते हैं—

(क) ग्रासशील[2]—ये तो वास्तव में युगल तारे हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। अत्यन्त पास-पास होने के कारण इनमें दोनों तारे अलग-अलग नहीं दिखाई देते और दोनों मिलकर एक ही तारे के समान मालूम पड़ते हैं।

(ख) अल्प आवर्तकाली[3]—इनके ज्योति-परिवर्तन का आवर्तकाल कुछ घंटों से लेकर प्रायः दो महीनों तक का होता है। यह आवर्तत्व बिलकुल नियमित होता है।

1. Periodic
2. Eclipsing variable
3. Short period variable

(ग) दीर्घ आवर्तकाली[1]—इनका आवर्तकाल ४-५ महीनों से लेकर दो वर्ष तक का होता है। इनका आवर्तत्व नियमित तो होता है किन्तु केवल सन्निकटतः, यथार्थतः नहीं। इनके ज्योति-परिवर्तन का परास बहुत बड़ा होता है और ज्योति ४००० गुनी तक हो जाती है। यह परास बदलता भी रहता है। इनका रंग लाल होता है।

(२) अनावर्ती[2]

ये दो प्रकार के होते हैं—

(क) अनियमित[3]—ये भी लाल रंग के होते हैं और इनकी ज्योति में परिवर्तन थोड़ा ही होता है। इनकी संख्या प्रायः १५० है।

(ख) नव-तारा[4]—वास्तव में इनका यह नाम उचित नहीं है क्योंकि ये सदा नवीन तारे नहीं होते। अधिकतर तो ये पहले अन्य मन्द-ज्योति तारों के रूप में विद्यमान रहते हैं। किन्तु संभवतः किसी भयंकर विस्फोट के कारण इनकी ज्योति सहसा २-३ दिन में, और कभी-कभी इससे भी कम समय में कई सहस्र गुनी वढ़ जाती है। यह डेढ़ लाख गुनी तक होती देखी गयी है। इसके कुछ थोड़े ही समय के बाद इनकी ज्योति घटकर पुनः पूर्ववत् हो जाती है। अतः इनका नाम होना चाहिए अस्थायी तारे।[5]

यह स्पष्ट ही है कि ज्योति में सहसा इतनी वृद्धि होने के साथ-साथ ऊष्मा भी अत्यधिक परिमाण में उत्पन्न होती होगी। अतः ऐसा जान पड़ता है कि इसका कारण कोई भयानक विस्फोट ही होगा। यह अनुमान इस बात से और भी पुष्ट हो जाता है कि उस समय तारे का वाष्पीय आवरण

1. Long period variable
2. Non-periodic
3. Irregular variable
4. Nova
5. Temporary star

प्राय: १००० मील प्रति सैंकड के वेग से फैलता दिखाई देता है। और बहुधा यह विस्फोट एक ही बार होकर रुक नहीं जाता। उत्तरोत्तर कई विस्फोट होते देखे गये हैं।

चरकांति तारों की संख्या इतनी अधिक है कि यह अनुमान किया जा सकता है कि प्राय: समस्त तारे कभी न कभी अवश्य ही नव-तारा की स्थिति को प्राप्त करते होंगे। यदि यह बात सत्य हो तो आश्चर्य नहीं कि कभी हमारा सूर्य भी नव-तारा बन जाय। यदि ऐसा हो जाय तो पृथ्वी तथा समस्त ग्रह और मनुष्य तथा अन्य समस्त प्राणी क्षण भर में नष्ट हो जायेंगे। सौर जगत् में प्रलय हो जायगा। किन्तु अनन्त विश्व की दृष्टि से यह घटना अत्यन्त क्षुद्र ही होगी और शेष संसार ज्यों का त्यों चलता रहेगा। तब संभवत: किसी अन्य तारे के ग्रहों के निवासी अपनी दूरबीनों से इस नव-तारे के जन्म को देख सकेंगे और इस घटना के कारण का अनुमान लगाने का प्रयत्न करेंगे।

ग्रासशील चरकांति तारों को छोड़कर अन्य समस्त चरकांति तारों के विषय में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनकी ज्योति में परिवर्तन आभ्यन्तरिक कारणों से होता है। ज्योति के साथ ही साथ इन तारों के रंगों तथा स्पैक्ट्रमों में जो आनुषंगिक परिवर्तन होता है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन परिवर्तनों का मूल कारण ताप का परिवर्तन ही है।

जिन तारों का आवर्त काल एक दिन से कम होता है वे गोलीय तारा-पुंजों में बहुतायत से पाये जाते हैं। अत: बहुधा इन्हें पुंजीय चरकांति[1] भी कहते हैं। जिनका आवर्तकाल एक सप्ताह के लगभग होता है वे सीफ़ाइड[2] कहलाते हैं, क्योंकि इस वर्ग के एक प्रमुख तारे का नाम सीफाई[3] है। बहुधा अल्प आवर्तकाल वाले सभी तारों को सीफाइड कह देते हैं क्योंकि पुंजीयों और सीफ़ाइडों में कोई वास्तविक भेद नहीं है। तारों

1. Cluster variable 2. Cepheid 3. Cephei

की दूरी नापने के सम्बन्ध में ये सीफ़ाइड तारे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं।

तारों की निजी गति[1]

साधारणतः यह कहा जाता है कि तारे अचल हैं क्योंकि कई शताब्दियों में भी इनकी आपेक्षिक स्थितियों में और तारा मंडलों की आकृतियों में कोई अन्तर नहीं होता। तथापि तथ्य यह है कि संभवतः एक भी तारा ऐसा नहीं है जो गतिमान् न हो। सभी तारे थोड़े-बहुत स्थानान्तरित होते ही रहते हैं। इस विस्थापन का अधिकतम कोणीय मान १०" प्रति वर्ष है। प्रायः ५० तारों का विस्थापन २" प्रति वर्ष से अधिक है और प्रायः २०० का १" से अधिक। किन्तु अधिकतर तारों का विस्थापन इतना कम होता है कि कई वर्षों के सूक्ष्म प्रेक्षण से ही उसका पता चल पाता है।

इस प्रेक्षित कोणीय वेग से यह नहीं मालूम हो सकता कि तारे की गति का रेखीय वेग कितने मील प्रति सैकंड है। प्रथम तो यह वेग तारे की दूरी पर अवलम्बित है। यदि दूरी अधिक हो तो अत्यल्प कोणीय वेग भी बहुत अधिक रेखीय वेग का द्योतक हो सकता है। दूसरे, तारे की दूरी ज्ञात होने पर भी इस कोणीय विस्थापन से तो हमें इतना ही मालूम हो सकता है कि दृष्टि-रेखा से समकोणिक दिशा में तारे का रेखीय वेग कितना है। किन्तु इस वेग के अतिरिक्त उसका कुछ वेग दृष्टि-रेखा की दिशा में भी तो हो सकता है। यह दूरबीन से तो नहीं नापा जा सकता किन्तु स्पैक्ट्रमीय रेखाओं के डापलर प्रभाव के द्वारा अवश्य नापा जा सकता है। इन दोनों समकोणीय वेगों के संयोजन से ही तारे के पूरे वेग और उसकी दिशा का ज्ञान हो सकता है।

1. Proper motion

किन्तु इस प्रसंग में यह न भूल जाना चाहिए कि समस्त सौर परिवार के सहित स्वयं सूर्य भी तो अन्य तारों की ही तरह किसी नियत वेग से गतिमान् है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी की सौर परिक्रमा के कारण भी तारों के स्थानोंमें कुछ वार्षिक परिवर्तन होता है जिसे अपेरण[1] कहते हैं। तारों के विस्थापन के प्रेक्षित मानों में से इन दोनों प्रकार की गतियों का निरसन[2] आवश्यक है। ऊपर विस्थापन के जो कोणीय मान वताये गये हैं वे इन दोनों संशोधनों के बाद प्राप्त हुए मान हैं। स्थूलतः हम कह सकते हैं कि तारों की इस निजी गति का रेखीय वेग २ मील प्रति सेकंड से लेकर प्रायः तीन सौ मील प्रति सैकंड तक पाया गया है।

तारों की इस निजी गति की कोई निश्चित दिशा नहीं है। विभिन्न तारों की गति की अपनी अपनी स्वतंत्र दिशाएँ हैं और सभी दिशाओं में यह गति पायी गयी है। एक ही तारा-मंडल के विभिन्न तारों की निजी गतियों की दिशाएँ भी अधिकतर तो सर्वथा भिन्न होती हैं। इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि एक तारा-मण्डल के विभिन्न सदस्यों में कोई भौतिक सम्वन्व नहीं है। किन्तु किसी-किसी तारा-मंडल के (यथा सप्तर्षि मंडल के) सभी तारे प्रायः एक ही दिशा में चलते हुए भी पाये गये हैं। उनकी दूरी के नाप से यह भी मालूम हुआ है कि वे एक-दूसरे के काफी पास पास भी हैं। ऐसा मालूम देता है कि इनमें अवश्य ही कुछ भौतिक संबन्ध है और वे पक्षियों के झुंड के समान प्रायः साथ-साथ एक ही दिशा में विचरण कर रहे हैं।

तारा-पुंजों के तारों में भी गति का ऐसा ही ऐक्य पाया जाता है। जव पुंज वहुत विस्तीर्ण होता है तव ऐसा जान पड़ता है मानो उसके समस्त तारे किसी विशेष विन्दु की ओर दौड़ रहे हैं। यह अवश्य ही केवल दृष्टि-भ्रम है। वास्तव में वे समान्तर दिशाओं में गमन करते हैं,

1. Aberration 2. Elimination

किन्तु जिस प्रकार रेल की समान्तर पटरियों का व्यवधान क्रमशः घटता दिखाई देता है, उसी प्रकार इनके गमन-पथ भी अभिसारी[1] दिखाई देते हैं।

सूर्य की निजी गति

ऊपर हमने सूर्य की गति का ज़िक्र किया है। जब सभी तारे गतिमान् हैं तो सूर्य की गति का नाप किस मूलबिन्दु को अचल मान कर किया जाय? इस कार्य के लिए कोई भी तारा उपयुक्त नहीं हो सकता। किन्तु समस्त तारों की गति का औसत लेकर एक ऐसी मानक (स्टैण्डर्ड) पृष्ठ-भूमि की कल्पना की जा सकती है, जिसे हम सर्वथा स्थिर समझ सकते हैं। इसी की अपेक्षा सूर्य तथा अन्य समस्त तारों की निजी गति निर्धारित की जाती है। इस दृष्टि से सूर्य का रेखीय वेग। १९.० किलोमीटर (११.८ मील) प्रति सेकंड है।

1. Convergent

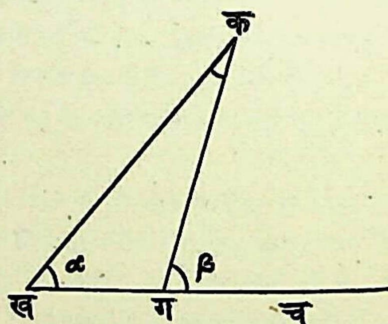
परिच्छेद ७

दूरी का नाप

प्रत्येक खगोलीय पिंड के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण नाप है पृथ्वी से उस की दूरी। जब तक दूरी ज्ञात नहीं हो जाती तब तक हम उसके व्यास, द्रव्यमान आदि के विषय में कुछ भी नहीं जान सकते। अतः सबसे पहले हम यही बतावेंगे कि यह दूरी कैसे नापी जा सकती है।

त्रिकोणमितीय विधि[1]

जब हम किसी ऐसी वस्तु की दूरी नापना चाहते हैं जिसके पास हम स्वयं नहीं पहुँच सकते तब हमें प्रकाश किरणों का और ज्यामिति का सहारा



आकृति ७.१

1. Trigonometrical method

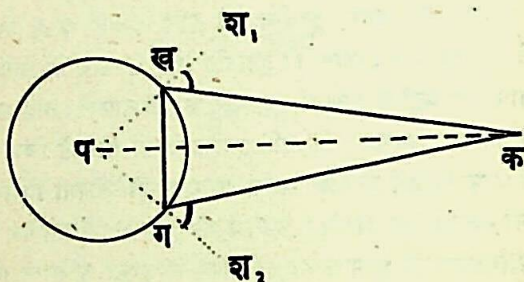
लेना पड़ता है। मान लीजिए कि क कोई दूरवर्ती बिन्दु है और हम ख बिन्दु से उसकी दूरी नापना चाहते हैं। इसका उपाय यह है कि ख पर एक दूरबीन रखकर उसकी सहायता से क को देखें और कोई भी एक रेखा ख ग च खींच कर उससे दूरबीन जो कोण α=क ख ग बनाती हो उसे नाप लें। इसके बाद दूरबीन को हटाकर रेखा ख ग च के किसी बिन्दु ग पर ले जावें और वहाँ से कोण β=क ग च को भी नाप लें। तथा ख ग की लम्बाई भी नाप लें। स्पष्ट है कि यदि इन नापों को छोटे से चित्र में प्रदर्शित किया जाय तो हमें त्रिकोण क ख ग प्राप्त हो जायगा जिसमें दूरबीन के दोनों स्थानों (ख और ग) के बीच की दूरी छोटे पैमाने पर अंकित होगी। इस त्रिकोण की भुजा क ख को नापने से तुरन्त ख से क की दूरी ज्ञात हो जायगी। वास्तव में ऐसा चित्र बनाकर रेखा क ख को नापने की आवश्यकता नहीं है। त्रिकोणमितीय परिकलन के द्वारा यह लम्बाई अधिक यथार्थतापूर्वक ज्ञात हो सकती है।

यह स्पष्ट है कि ख ग से क जितना ही अधिक दूर होगा उतना ही कम अन्तर α तथा β के परिमाणों में होगा। अर्थात् θ उतना ही कम होगा। तब नाप की यथार्थता को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक होगा कि ख और ग के बीच की दूरी यथासम्भव अधिक से अधिक चुनी जाय।

इस विधि से आकाशीय पिंडों की पृथ्वी से दूरी जानने के लिए यह आवश्यक होगा कि पृथ्वी पर दो स्थान ऐसे चुने जायें जो अधिक से अधिक दूर हों और ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में अवस्थित हों अर्थात् जिनका देशान्तर[1] बराबर हो। एक स्थान उत्तर गोलार्ध में होगा और दूसरा दक्षिण गोलार्ध में होगा। दोनों ही स्थानों पर वह पिंड याम्योत्तर-तल[2] में ठीक एक ही क्षण पर पहुंचेगा। ठीक उसी क्षण पर दोनों स्थानों की दूरबीनों से उस पिंड के शिरोबिन्दु कोण[3] नाप लिये जाते हैं। मान लीजिए

1. Longitude 2. Meridian 3. Zenith angle

कि चित्र ७.२ में प पृथ्वी का केन्द्र है और ख तथा ग वे स्थान हैं जहाँ से उस पिंड क का दूरबीनों से प्रेक्षण किया जाता है। चित्र तल ही ख ग का



आकृति ७.२

याम्योत्तर तल है और वेध के समय क भी इसी तल में अवस्थित है। श$_1$ और श$_2$ क्रमशः ख और ग के शिरोबिन्दु हैं। जो शिरोबिन्दु कोण दूरबीनों से नापे जाते हैं वे हैं ∠क ख श$_1$ और ∠क ग श$_2$ अतः ∠प ख क और ∠प ग क भी मालूम हो जाते हैं। वेध स्थानों (ख और ग) के अक्षांश तो पहले ही मालूम कर लिये जाते हैं। अतः हमें ∠ख प ग भी ज्ञात रहता है क्योंकि यह दोनों अक्षांशों के सांख्यिक जोड़ के बराबर होता है।

इस प्रकार चतुर्भुज क ख प ग में हमें तीन कोण (ख, प और ग) और दो भुजाएँ प ख और प ग मालूम हैं क्योंकि ये दोनों भुजाएँ पृथ्वी की त्रिज्या के बराबर हैं। अर्थात् इन दोनों की लम्बाइयाँ ३९५७ मील हैं। अतः अब चतुर्भुज क ख प ग की आकृति निश्चित रूप से खींची जा सकती है और उसमें से क ख, क ग और क प की लम्बाइयाँ मालूम की जा सकती हैं।

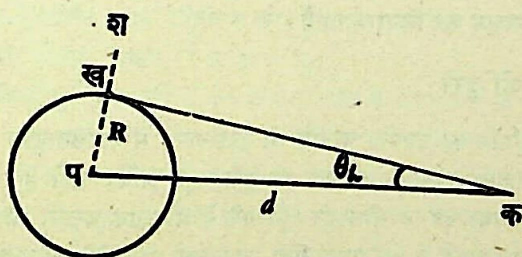
1. Latitude

यह क प ही पृथ्वी के केन्द्र से आकाशीय पिंड क की दूरी है। त्रिकोणमिति की सहायता से यह दूरी अधिक सुगमता से और अधिक यथार्थता पूर्वक मालूम हो सकती है।

जब क की दूरी बहुत अधिक होती है तब चतुर्भुज में कोण क इतना छोटा होता है कि इस नाप में बहुत अधिक ग़लती की संभावना रहती है और यह विश्वसनीय नहीं समझा जा सकता। इसी कारण सूर्य और तारों की दूरी इस प्रकार नहीं नापी जा सकती।

लम्बन[1]

यदि कोई आकाशीय पिंड दो वेध-स्थानों (ख और ग) से देखा जाय तो वह दोनों स्थानों से एक ही दिशा में नहीं दिखाई देता। उसकी दिशाओं में थोड़ा सा अन्तर होता है और सामान्यतः इस कोणीय अन्तर को उस पिंड का लम्बन कहते हैं। चित्र ७·२ में यह लम्बन $\theta =$ ∠ख क ग के बराबर है। स्पष्ट है कि यह लम्बन उस कोण का नाम है जो रेखा ख ग उस पिंड पर अन्तरित करती है।



आकृति ७.२

जब दोनों वेध स्थानों में से एक पृथ्वी का केन्द्र प नियत कर दिया जाता

1. Parallax

है (चित्र ७.३) तब यह भू-केन्द्रीय लम्बन[1] कहलाता है। और इसका मान महत्तम तब होता है जब दूसरा वेध-स्थान ख पृथ्वी-पृष्ठ पर ऐसी जगह हो जहाँ से वह पिंड क्षितिज पर दिखाई दे। तब यह उस कोण प क ख के बराबर होता है जो पृथ्वी की त्रिज्या उस पिंड पर अन्तरित करती है। तब इसे क्षैतिज लम्बन[2] कहते हैं। यदि इसे हम θ_h कहें तो

$$\theta_h = \frac{R}{d}$$

जहां R= पृथ्वी की त्रिज्या ३९५७ मील और d= पृथ्वी से उस पिंड की दूरी। स्मरण रखना चाहिए कि इस समीकरण में θ_h नापने का मात्रक रेडियन[4] है और यह मात्रक ऐसा है कि π रेडियन =१८०° अर्थात्

१ रेडियन=५७°.५५ और १" (एक सैकंड का कोण) $= \frac{१}{२०६२६५}$

रेडियन यह भी स्मरण रहे कि θ_h प्रत्यक्षतः नहीं नापा जा सकता। पहले पृथ्वी-पृष्ठ पर ही दो स्थानों के लिए नापा जाता है और तब परिकलन द्वारा θ_h मालूम कर लिया जाता है।

चन्द्रमा की दूरी

इस विधि का उपयोग चन्द्रमा की दूरी नापने में सफलतापूर्वक किया गया है क्योंकि पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी बहुत अधिक नहीं है। प्रेक्षण के स्थान प्रायः ५४०० मील दूर चुने गये थे और तब चन्द्रमा का माध्य क्षैतिज लम्बन ५७' २.७" पाया गया था। अतः पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी निकली २,४०,००० मील।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि चन्द्र-कक्षा दीर्घवृत्ताकार है। अतः

1. Geometric parallax 2. Horizontal parallax

पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी नित्यप्रति बदलती रहती है। उसके महत्तम तथा लघुत्तम मान क्रमशः २,५२,७१० मील तथा २,३८,४६३ मील हैं।

सूर्य तथा ग्रहों की दूरी

सूर्य का क्षैतिज लम्बन ८".८ के लगभग है। अतः पृथ्वी से सूर्य की दूरी हुई ९,२९,०१,००० मील। किन्तु यह लम्बन इतना छोटा है कि इसके नाप में यथेष्ट यथार्थता नहीं आ सकती। यदि इसमें केवल ०".०१ की भी ग़लती हो तो सूर्य की दूरी में प्रायः एक लाख मील का फ़र्क पड़ जायगा।

जब मंगल ग्रह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर होता है तब भी उसका लम्बन चन्द्रमा के लम्बन के १४०वें भाग के बराबर अर्थात् लगभग २४".५ मात्र होता है। और दूरबीन में उसका प्रतिविम्ब भी काफी बड़ा होता है। अतः इसके लम्बन के नाप में भी काफी भूल रह जाती है। यही हाल शुक्र ग्रह का है। हाँ, इनके उपग्रहों का लम्बन अधिक यथार्थता-पूर्वक नापा जा सकता है क्योंकि उनके प्रतिविम्ब छोटे होते हैं। इसलिए उनकी दूरी का नाप भी अधिक अच्छा हो जाता है।

किन्तु हम बता चुके हैं कि सौर परिवार में मुख्य ग्रहों के अतिरिक्त अनेक क्षुद्र-ग्रह[1] भी हैं। इनमें से ईरोस नामक क्षुद्र-ग्रह कभी-कभी मंगल की अपेक्षा भी पृथ्वी के अधिक निकट आ जाता है। और इसका प्रतिविम्ब भी बहुत ही छोटा होता है। अतः उसका लम्बन बहुत अच्छी यथार्थतापूर्वक नापा जा सकता है। जब यह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर आ जाता है, तब उसका क्षैतिज लम्बन प्रायः ५०" तक का हो जाता है। और तब हम से उसकी दूरी लगभग १४०,००,००० मील की होती

1. Asteroids

है। उसके सौर परिक्रमण-काल में उसकी दूरी अनेक वार नाप लेने से उसकी कक्षा की आकृति भी ठीक-ठीक ज्ञात हो गयी है।

सूर्य से ग्रहों की आपेक्षिक दूरियाँ

यद्यपि लम्बन के नाप से ग्रहों की दूरियाँ यथार्थता-पूर्वक नहीं नापी जा सकतीं, किन्तु निम्नलिखित परोक्ष विधि से समस्त ग्रहों की सूर्य सापेक्ष दूरियां अधिक यथार्थता-पूर्वक नाप ली गयी हैं। इस विधि में सबसे पहले ग्रह का सौर-परिक्रमण-काल नापना आवश्यक है।

पृथ्वी का सौर परिक्रमण-काल

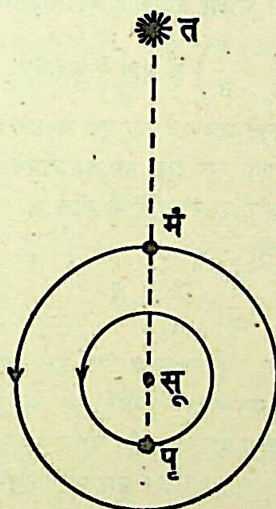
मान लो कि किसी समय पृथ्वी तथा सूर्य को जोड़ने वाली रेखा पर ही कोई विशेष तारा अवस्थित है। इस तारे को हम प्रत्यक्षतः तो देख नहीं सकते क्योंकि सूर्य की उपस्थिति में किसी भी तारे का दिखाई देना संभव नहीं। किन्तु सूर्य तथा तारा-मंडलों की स्थितियों को कई वर्षों तक बराबर नापते रहने पर इस युति[1] का क्षण ठीक-ठीक नापा जा सकता है। इसके बाद जब सूर्य और उसी तारे की युति दूसरी बार हो तब उस क्षण को भी घड़ी के द्वारा नाप लिया जाता है। स्पष्ट है कि इतने समय में पृथ्वी ने सूर्य की पूरी एक प्रदक्षिणा कर ली। यह समय ३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट ९·५ सैकंड अर्थात् लगभग ३६५$\frac{१}{४}$ दिन पाया गया है। इसे नाक्षत्र वर्ष[2] कहते हैं।

ग्रह का परिक्रमण-काल

अन्य ग्रहों का सौर-परिक्रमण काल इस प्रकार प्रत्यक्षतः नहीं नापा जा सकता, क्योंकि जहाँ से हम ग्रह को देखते हैं वह स्थान (पृथ्वी) स्थिर

1. Conjuction 2. Siderial year

नहीं है। किन्तु हम यह आसानी से नाप सकते हैं कि सूर्य के साथ उस ग्रह की क्रमागत युतियों के बीच का समय कितना है। अर्थात् हम यह नाप सकते हैं कि यदि किसी समय पृथ्वी, सूर्य तथा ग्रह तीनों एक ही सरल रेखा पर हो तो कितने समय बाद वे पुनः एक ही रेखा पर पहुंच जायंगे। इस आवर्तकाल को संयुतिकाल[1] कहते हैं। मान लो कि चित्र ७.४ में किसी



आकृति ७.४

समय सूर्य सू, मंगल मं और तारा त एक ही सरल रेखा पर स्थित हैं। तब जितने समय में मंगल पुनः सू-त रेखा पर आ जायगा वही मंगल का नाक्षत्र परिक्रमण-काल[2] $न_1$ है। यह प्रत्यक्षतः नापा नहीं जा सकता।

1. Synodic period 2. Siderial period

किन्तु यदि पृथ्वी मं-सू रेखा के बिन्दु पृ पर हो तो इस सूर्य-मंगल युति का क्षण ठीक-ठीक प्रत्यक्षतः नापा जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि इसके बाद दूसरी युति कब होगी। मान लो कि पृथ्वी का नाक्षत्र परिक्रमण-काल है $न_२$ दिन और मंगल का $न_१$ दिन। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि $न_२$ की अपेक्षा $न_१$ बड़ा है। इसलिए पृथ्वी का कोणीय वेग मंगल के कोणीय वेग की अपेक्षा अधिक है और प्रतिदिन मंगल की अपेक्षा पृथ्वी पूरे चक्कर के $\left(\frac{१}{न_२} - \frac{१}{न_१}\right)$ वें भाग के बराबर आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते जब वह पूरा एक चक्कर आगे बढ़ जायगी तब पृथ्वी, सूर्य और मंगल पुनः एक रेखा पर आ जायेंगे अर्थात् पुनः युति हो जायगी। यदि पहली और दूसरी युति के बीच का समय अर्थात् संयुति-काल य हो तो स्पष्टतः

$$\frac{१}{य} = \frac{१}{न_२} - \frac{१}{न_१}$$

प्रत्यक्ष वेध के द्वारा संयुतिकाल य ठीक-ठीक नापा जा सकता है और पृथ्वी का नाक्षत्र परिक्रमण-काल $न_२$ भी। अतः इस प्रकार ग्रह का नाक्षत्र परिक्रमण-काल $न_१$ मालूम हो जाता है। मंगल का संयुतिकाल ७७९·९४ दिन पाया गया है। अतः उसका नाक्षत्र सौर परिक्रमण-काल हुआ ६८६·९५ दिन। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के नाक्षत्र परिक्रमण-काल भी नाप लिये जाते हैं।

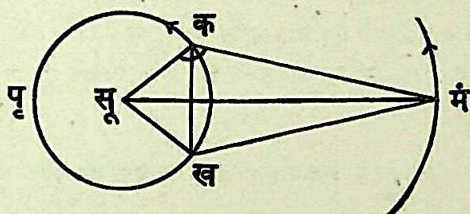
सूर्य से ग्रह की पृथ्वी-सापेक्ष दूरी का नाप

मान लो कि चित्र ७·५ में सू पर सूर्य है और पृ तथा मं क्रमशः पृथ्वी तथा मंगल की कक्षाएँ हैं। मान लो कि किसी समय मंगल मं पर और पृथ्वी क पर है। इस समय मंगल का प्रसरकोण[1] नाप लिया जाता है।

1. Elongation

यह पृथ्वी से सूर्य तथा मंगल की दिशाओं के बीच का कोण |सू क मं है। इसे हम सूर्यान्तर-कोण भी कह सकते हैं। इस नाप के ठीक ६८७ दिन के बाद मंगल पुनः मं पर पहुँच जायगा। किन्तु तब तक पृथ्वी के दो चक्कर पूरे न हो सकेंगे और वह क पर न पहुँच सकेगी। वह ख पर ही रह जायगी। इस समय पुनः मंगल का प्रसरकोण |सू ख मं नाप लिया जाता है।

पृथ्वी का परिक्रमण-काल ३६५$\frac{१}{४}$ दिन है। अतः यह हमें मालूम है कि ६८७ दिनों में पृथ्वी कितना कोण घूम जायगी। अर्थात् हम परिकलन द्वारा |क सू ख भी मालूम कर सकते हैं।



आकृति ७.५

इस प्रकार चतुर्भुज सू क मं ख में हमें तीन कोण (|सू, |क, |ख) ज्ञात हैं। अतः चौथा कोण |मं भी ज्ञात हो जाता है। इसलिए सू-क की मनचाही लम्बाई मानकर हम इस चतुर्भुज की आकृति खींच सकते हैं। और तब हम $\frac{\text{सूमं}}{\text{सूक}}$ का मान यथार्थतापूर्वक मालूम कर सकते हैं। यदि सू-क का मान मीलों में मालूम हो तो सू-मं भी मीलों में मालूम हो सकता है। किन्तु यदि पृथ्वी से सूर्य की दूरी सू-क न भी मालूम हो तो भी $\frac{\text{सूमं}}{\text{सूक}}$ तो अवश्य ही बहुत अच्छी तरह नाप लिया जा सकता है। और मील को मात्रक न मानकर यदि खगोलीय लम्बाई नापने का मात्रक सूर्य और

पृथ्वी के बीच की माध्य दूरी सू-क को मान लिया जाय तो हम यह अवश्य कह सकेंगे कि सूर्य से मंगल की दूरी कितने मात्रक लम्बी है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी पृथ्वी-सापेक्ष दूरी नापी जा सकती है। उपर्युक्त मात्रक ज्योतिष मात्रक[1] कहलाता है। इस मात्रक की लम्बाई मीलों में मालूम हो जाने पर सूर्य से ग्रहों की दूरी भी मीलों में मालूम हो जायगी। वस्तुतः उपर्युक्त परिकलन इतना सरल नहीं है। पृथ्वी तथा ग्रह दोनों की ही कक्षाएँ वृत्ताकार नहीं हैं। वे दीर्घवृत्ताकार हैं। किन्तु हम अनेक प्रेक्षणों से ग्रह की प्रत्येक दिन की स्थिति को अच्छी तरह नाप सकते हैं और तब उसकी कक्षा की आकृति भी यथातथ रूप में जान सकते हैं। केपलर ने इसी प्रकार टाइको ब्राहीं[2] के दीर्घकाल-व्यापी प्रेक्षणों का उपयोग करके समस्त ग्रहों की कक्षाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। दीर्घवृत्तीय कक्षाओं के द्वारा सूर्य से ग्रह की दूरी का परिकलन क्लिष्ट तो अवश्य है, पर हो अवश्य सकता है।

केपलर के नियम द्वारा ग्रहों की दूरी का नाप

सूर्य से ग्रहों की पृथ्वी-सापेक्ष दूरियों को जानने का एक और भी तरीक़ा है। यह केपलर के तृतीय नियम पर आधारित है जिसका वर्णन परिच्छेद ५ में किया जा चुका है। इसके अनुसार यदि किसी ग्रह का नाक्षत्रिक सौर परिक्रमण-काल व वर्ष हो और सूर्य से उसकी दूरी द ज्यौतिष मात्रक हो तो

$$द^3 = व^2$$

अतः उसके परिक्रमण-काल को नापने से द तुरन्त ज्ञात हो जाता है। मंगल के लिए व=६८६.९५ दिन=१·८८१ वर्ष है। अतः सूर्य से मंगल की दूरी द=१·५२४ ज्यौतिष मात्रक है। इसी प्रकार क्षुद्र ग्रह ईरोस के लिए व=१·७६ वर्ष है। अतः द=१·४६ है। शुक्र के लिए द=०·७२४ है।

1. Astronomical unit 2. Tycho Brahe

बोदे का नियम[1]

ग्रहों की इन आपेक्षिक दूरियों को स्मरण रखने के लिए एक नियम बड़ा उपयोगी है। इसे बोदे का नियम कहते हैं। इसका उपयोग करने के लिए प्रत्येक ग्रह के नीचे पहली पंक्ति में ४ का अंक लिख दीजिए। इन अंकों के नीचे दूसरी पंक्ति में क्रमशः उत्तरोत्तर द्विगुणित संख्याएँ १.५, ३, ६ आदि लिख दीजिए। अब तीसरी पंक्ति में उपर्युक्त दोनों पंक्तियों की संख्याओं के जोड़ लिख दीजिए। जोड़ की ये संख्याएँ ही प्रत्येक ग्रह की आपेक्षिक दूरी के बराबर होंगी।

बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	क्षुद्र-ग्रह	शुक्र	शनि	यूरेनस	नेपट्यून
४	४	४	४	४	४	४	४	४
१·५	३·	६	१२	२४	४८	९६	१९२	३८४
५·५	७	१०	१६	२८	५२	१००	१९६	३८८

वास्तविक

३·९, ७·२, १०, १५·२, १४–५७, ५२, ९५·४ १९१·९, ३००·७

अंतिम पंक्ति में नाप द्वारा प्राप्त ग्रहों की वास्तविक दूरियाँ दी हुई हैं। स्पष्ट है कि बुध तथा नेपट्यून के अतिरिक्त अन्य सब ग्रहों के लिए बोदे का नियम बहुत कुछ सही है। इस नियम का सैद्धान्तिक आधार ज्ञात नहीं है।

सूर्य का लम्बन

यह बताया जा चुका है कि चन्द्रमा के समान सूर्य का लम्बन प्रत्यक्षतः यथार्थता-पूर्वक नहीं नापा जा सकता। इसका मान इतना छोटा है, लगभग

1. **Bode's Law**

८.८ सैकंड, कि दूरबीन के द्वारा उसे नापने में काफी भूल रह जाती है और फलतः पृथ्वी से सूर्य की दूरी में लाखों मील की ग़लती हो जाती है।

किन्तु इसको नापने की कई परोक्ष विधियाँ हैं जिनके द्वारा नाप यथेष्ट यथार्थतापूर्ण हो सकता है।

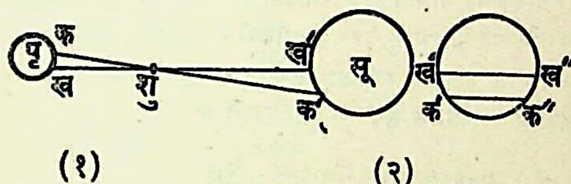
नापने की परोक्ष विधियाँ

(१) ज्यामितीय विधि में पहले किसी ग्रह का या क्षुद्र ग्रह का भूकेन्द्रीय लम्बन नाप लिया जाता है अर्थात् पृथ्वी से उसकी दूरी मीलों में मालूम कर ली जाती है। और सौर परिवार के ग्रहों की सूर्य से दूरी को ज्यौतिष मात्रकों में नापने की जो विधि ऊपर बतायी गयी है, उससे उसी ग्रह की सूर्य से दूरी ज्यौतिष मात्रकों में नाप ली जाती है। इन दोनों नापों से परिकलन द्वारा ज्यौतिष मात्रक का मान अर्थात् पृथ्वी से सूर्य की दूरी मीलों में ज्ञात हो जाती है। ऐसे नाप कई बार लिये गये हैं और इनमें मंगल ग्रह का तथा ईरोस नामक क्षुद्र ग्रह का विशेष रूप से उपयोग किया गया है, क्योंकि मंगल ग्रह कभी-कभी पृथ्वी के इतना निकट आ जाता है कि उसकी दूरी मात्र ३,४६,००,००० मील रह जाती है और ईरोस की न्यूनतम दूरी तो १,३८,००,००० मील तक हो सकती है। ऐसे समय ईरोस का भूकेन्द्रीय लम्बन लगभग ६०″ हो जाता है और बहुत अच्छी तरह नापा जा सकता है, विशेष कर इसलिए कि ईरोस का व्यास केवल १५ मील ही है और दूरबीन में उसका प्रतिबिम्ब बहुत ही छोटा होता है।

(२) सूर्य और शुक्र की युति के समय कभी-कभी शुक्र सूर्य-विम्ब की पृष्ठभूमि पर छोटे-से काले धब्बे के समान चलता हुआ दिखाई देता है। सभी युतियों पर ऐसा नहीं होता, क्योंकि शुक्र की कक्षा क्रान्तिवृत्तीय तल में अवस्थित नहीं है। दोनों के तलों में छोटा-सा कोण है। किन्तु कभी-कभी शुक्र ठीक सूर्य के सामने आ जाता है। ऐसा सन् १७६१, १७६९,

१८७४ तथा १८८२ में हुआ था और २००४ तथा २०१२ में फिर होगा। इसे सूर्यातिक्रान्ति[1] कहते हैं।

चित्र ७·६ (१) में प पृथ्वी, शु शुक्र तथा सू सूर्य है।



आकृति ७.६

पृथ्वी पर दो स्थान क और ख ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में अधिकतम संभव दूरी पर स्थित हैं। क से देखने पर रवि-बिम्ब पर शुक्र क' बिन्दु पर दिखाई देगा और उसका पथ होगा क' क", चित्र ७·६ (२)। इसी प्रकार ख से शुक्र का पथ ख' ख" दिखाई देगा। यह क' क" से उत्तर की ओर हटा हुआ नज़र आयगा। रवि-बिम्ब को केन्द्र में से पार करने के लिए शुक्र को लगभग ८ घंटे लगते हैं और ज्यों-ज्यों उसका पथ केन्द्र से दूर हटता जाता है त्यों-त्यों यह समय भी घटता जाता है। अतः क तथा ख से इस पारगमन के समयों को घड़ी से नाप लेने से यह मालूम हो सकता है कि इन दोनों पथों में कितना कोणीय व्यवधान है। इस विधि में हमें यह छोटा-सा कोण दूरबीन से नहीं नापना पड़ता। हमें तो घड़ी से केवल सूर्यातिक्रान्ति का समय ही नापना पड़ता है। अतः इस नाप में भूल वहुत कम होती है। पृथ्वी के क और ख स्थानों की दूरी मीलों में नाप लेने से पृथ्वी से शुक्र की दूरी तथा पृथ्वी से सूर्य की दूरी भी परिकलन द्वारा ज्ञात हो जाती है। यह विधि हेली[2] ने सन् १६७९ में बतायी थी।

1. Transit 2. Halley

(३) परिच्छेद ३ में हम लिख चुके हैं कि प्रकाश के अपेरण के द्वारा किस प्रकार पृथ्वी का कक्षीय वेग नापा गया था और उसका मान १८·४९ मील प्रति सेकंड पाया गया था। यदि पृथ्वी की कक्षा वृत्ताकार मान ली जाय, जैसी कि वह सन्निकटतः है, तो यह जानना आसान है कि उपर्युक्त वेग से पृथ्वी एक वर्ष में अर्थात् ३६५१/४ दिनों में अथवा ३·१५६ × १०⁷ सैकंड में कितने मील चलेगी। स्पष्टतः यही पृथ्वी की कक्षा की परिधि का मान है। अतः यदि पृथ्वी से सूर्य की दूरी D हो तो

$$2\pi D = 18{\cdot}49 \times 3{\cdot}156 \times 10^7$$

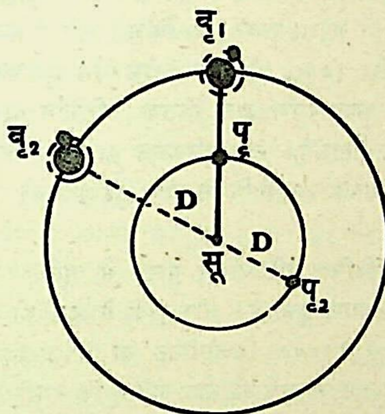
$$\therefore D = 9{,}29{,}00{,}000 \text{ मील}$$

$$= 14{,}95{,}00{,}000 \text{ किलोमीटर}$$

(४) हम जानते हैं कि बृहस्पति के उपग्रह समय-समय पर बृहस्पति के बिम्ब के पीछे छिप जाते हैं अर्थात् उनका ग्रहण हो जाता है। और उपग्रह का परिक्रमण-काल नियत होने के कारण इन ग्रहणों के समय का अन्तराल भी नियत ही होना चाहिए। किन्तु सन् १६७५ में डेनमार्क के ज्योतिषी रोमर[1] ने इन ग्रहणों का वर्ष भर निरन्तर प्रेक्षण करके यह पता लगाया कि यदि वियुति[2] के समय से (जब पृथ्वी और बृहस्पति निकटतम होते हैं) प्रेक्षण प्रारम्भ किये जायँ तो प्रत्येक ग्रहण उस नियत समय से कुछ देर बाद होता है और यह देरी उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते अपना महत्तम मान प्रायः १००० सैकंड उस समय प्राप्त कर लेती है जब युति[3] के समय पृथ्वी से बृहस्पति की दूरी अधिकतम हो जाती है। इसके बाद यह देरी घटने लगती है और अगली वियुति के समय ग्रहण पुनः ठीक समय पर होने लगते हैं। इसका स्पष्टतया कारण यह है कि उपग्रह तो वास्तव में बृहस्पति की परिक्रमा नियत समय में ही पूरी करता है किन्तु ज्यों-ज्यों पृथ्वी से बृहस्पति की दूरी

1. Roemer 2. Opposition 3. Conjunction

बढ़ती जाती है त्यों-त्यों ग्रहण प्रारम्भ होने के क्षण पर चलनेवाले प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में समय अधिक लगने लगता है। और इसी कारण ग्रहण देरी से होते हुए दिखाई देते हैं। चित्र ७·७ में सू सूर्य, बृ बृहस्पति और पृ



आकृति ७.७

पृथ्वी है। स्पष्ट है कि वियुति के समय उपग्रह के प्रकाश को केवल बृ₁ से पृ₁ तक ही चलना पड़ता है, किन्तु युति के समय उसे बृ₂ से पृ०₂ तक चलना पड़ता है। अर्थात् उसे पृथ्वी की कक्षा के व्यास २D के बराबर दूरी अधिक चलना पड़ता है और इसमें उसे १००० सैंकड के लगभग समय लगता है। प्रकाश का वेग तो अब अनेक उपायों से बहुत यथार्थतापूर्वक नाप ही लिया गया है और यह १८,६,००० मील प्रति सैकंड है। अतः पृथ्वी की कक्षा का व्यास स्पष्ट ही १०००×१८६००० मील प्राप्त होता है। अर्थात् पृथ्वी से सूर्य की दूरी इससे आधी अर्थात् ९,३०,००,००० मील है।

जिस समय रोमर ने ये प्रेक्षण किये थे उस समय पृथ्वी से सूर्य की दूरी तो बहुत कुछ ज्ञात थी किन्तु प्रकाश का वेग ज्ञात नहीं था। अतः उस समय तो उनका ध्येय इन प्रेक्षणों से प्रकाश का वेग मालूम करना ही था।

किन्तु अब तो हमें प्रकाश का वेग अच्छी तरह मालूम है। इसलिए हम इस युक्ति का उपयोग सूर्य की दूरी नापने के लिए कर सकते हैं।

(५) **गुरुत्वाकर्षणीय विधि**—यह पृथ्वी से सूर्य की दूरी नापने की एक अन्य विधि है जो अत्यंत उत्कृष्ट है। इसमें पहले यह मालूम किया जाता है कि सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी तथा विभिन्न ग्रहों के द्रव्यमान कितने-कितने हैं (परिच्छेद १०)। और तब ईरोस जैसे क्षुद्र ग्रह की कक्षा में विभिन्न ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण द्वारा कितना परिवर्तन या क्षोभ[1] होता है, यह नाप लिया जाता है। तब परिकलन द्वारा सूर्य का लम्बन ज्ञात हो जाता है। संभवतः इस विधि से नापी हुई दूरी की यथार्थता सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रकार विभिन्न युक्तियों से नापने से सूर्य का माध्य लम्बन ८".८०३ ± .००१ प्राप्त हुआ है। और पृथ्वी से सूर्य की माध्य दूरी D १४९,४५०,००० ± १७००० किलोमीटर या ९,२८,७०,००० मील प्रात हुई है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि यद्यपि युक्तियाँ इतनी विभिन्न हैं, फिर भी सूर्य की दूरी के जो मान उन युक्तियों से प्राप्त हुए हैं उनमें १ प्रतिसहस्र का भी अन्तर नहीं है।

तारों की दूरी नापने का मात्रक

अभी तक तो हमने उन्हीं खगोलीय पिंडों की दूरी नापने की समस्या पर विचार किया है जो सौर परवार के सदस्य हैं। और इन दूरियों को हम मीलों में व्यक्त भी कर सकते हैं। किन्तु सौर परिवार से बाहर जाते ही मील या किलोमीटर दूरी नापने के लिए उपयुक्त मात्रक नहीं रहता। यहाँ तक कि ज्यौतिष मात्रक जो ९ करोड़ मील से भी अधिक लम्बा है

1. Perturbation

वह भी बहुत छोटा पड़ता है। यदि दिल्ली से कलकत्ता की दूरी के अच्छे से अच्छे नाप में भी एक-दो मील की गलती रहना संभव है तो उसे फुटों, इंचों या सेन्टीमीटरों में व्यक्त करने का प्रयत्न हास्यास्पद ही कहा जायगा। ग्रहों की दूरी के नाप में कम से कम ०.१ प्रतिशत की भूल तो हो ही जाती है। यह भूल लाखों मील के बराबर हो सकती है। सौर जगत् के बाहर के तारों की दूरियाँ तो अपेक्षाकृत बहुत ही बड़ी हैं। उनके नाप के लिए ज्यौतिष मात्रक का भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।

इस काम के लिए जिस मात्रक का उपयोग किया जाता है उसका नाम प्रकाश-वर्ष[1] है। यह उस दूरी का नाम है जिसे प्रकाश १,८६,००० मील प्रति सैकंड के वेग से चलकर एक वर्ष में पार कर लेता है। यह मात्रक ५.८८×१०^{१२} मील के बराबर है और पृथ्वी से सूर्य की दूरी की अपेक्षा ६३,३१० गुना लम्बा है । इतना बड़ा मात्रक नियत करने का कारण यह है कि निकटतम तारे की दूरी ४.१६ प्रकाश वर्ष पायी गयी है। यदि इस नाप में ०.१ प्रतिशत की भी भूल हो तो उस तारे की दूरी में लगभग ३० अरब $= ३ \times १०^{१०}$ मील की भूल हो सकती है। अन्य तारे तो और भी अधिक दूर हैं। अतः उनकी दूरी में तो भूल और भी अधिक होगी। ऐसी दशा में इन दूरियों को मीलों में व्यक्त करना उचित नहीं कहा जा सकता।

तारों का सूर्यकेन्द्रीय लम्बन[2]

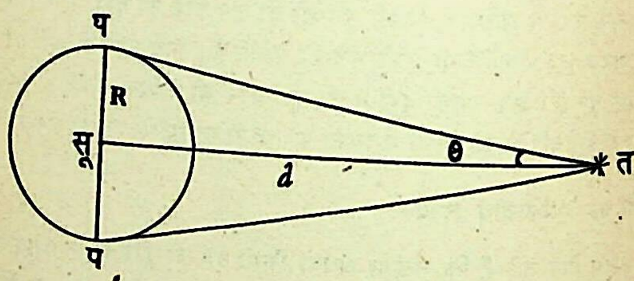
हम देख चुके हैं कि चन्द्रमा अथवा किसी ग्रह की दूरी को ज्यामितीय विधि से नापने के लिए हम उसका भूकेन्द्रीय लम्बन नापते हैं। अर्थात् पृथ्वी पर कई सहस्र मील के फासले पर स्थित दो स्थानों से वेध करके यह पता लगाते हैं कि हमारी यह आधार-रेखा[3] उस ग्रह पर कितना

1. Light-year 2. Helco-centric Parallax
3. Base-line

कोण अन्तरित करती है। और तब परिकलन द्वारा हम यह मालूम कर लेते हैं कि पृथ्वी के गोले की माध्य त्रिज्या (३९५६ मील) उस ग्रह पर कितना कोण अन्तरित करती है। यही भूकेन्द्रीय लम्बन कहलाता है। हम यह भी देख चुके हैं कि सूर्य का यह लम्बन इतना छोटा होता है कि प्रत्यक्षतः यथार्थतापूर्वक नहीं नापा जा सकता। स्पष्ट है कि तारों का भूकेन्द्रीय लम्बन नापना असम्भव ही है।

तारों की दूरी नापने के लिए बहुत ही बड़ी आधार-रेखा की आवश्यकता है। पृथ्वी की कक्षा का व्यास इस कार्य के लिए उपयोगी हो सकता है क्योंकि उसकी लम्बाई १८,६,०००,००० मील अर्थात् पृथ्वी के व्यास से लगभग २३२५० गुनी है।

इस आधार-रेखा का उपयोग करने के लिए हमें छः महीनों के अन्तर से तारे के दो वेध लेने पड़ेंगे। पहला वेध लेने के बाद जब पृथ्वी अपनी



आकृति ७.८ (ऊपर प को $प_1$, नीचे $प_2$ पढ़िये)

कक्षा के व्यास के दूसरे छोर पहुँच जाती है तब तारे का दूसरा वेध लिया जाता है। चित्र ७·८ में दिखाया हुआ वृत्त पृथ्वी की सूर्य-परिक्रमण कक्षा है और जब पृथ्वी $प_1$ और $प_2$ पर होती है तब तारे त के दूरबीन से वेध लिये जाते हैं। इनसे कोण $प_1$ त $प_2$ ज्ञात हो जाता है। इसके आधे कोण सू त प

को उस तारे का वार्षिक या सूर्य-केन्द्रीय[1] लम्बन कहते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि इसका मान महत्तम तब होगा जब पृथ्वी की कक्षा का व्यास ऐसा चुना जाय कि सू त रेखा उस पर लम्बरूप अवस्थित हो। इस महत्तम कोण θ को नापने से सूर्य से तारे की दूरी d=सूत मालूम हो जायगी क्योंकि

$$\tan\theta=\theta=\frac{\text{सू प}_1}{\text{सू त}}=\frac{R}{d}$$

और सूर्य से पृथ्वी की दूरी R=सू प_1 पहले से मालूम है ही। यदि d ज्यौतिष मात्रकों में व्यक्त की गयी हो तो $\theta=\frac{1}{d}$ रेडियन$=\frac{206265}{d}$ सैकंड होगा। सीरियस[2] नामक तारे का वार्षिक लम्बन 0·371 सैकंड पाया गया है। अतः उसकी दूरी है

$$\text{सू त}=\frac{206265}{\cdot 371}=5,55,970 \text{ ज्यौतिष मात्रक,}$$
$$=51.7\times10^{12} \text{ मील,}$$
$$=8{\cdot}8 \text{ प्रकाशवर्ष।}$$

यदि कोई तारा इतनी दूर होता कि उसका वार्षिक लम्बन ठीक १" होता तो उसकी दूरी होती २,०६,२६५ ज्यौतिष मात्रक,

$$=19.2\times10^{12} \text{ मील।}$$
$$=3.258 \text{ प्रकाश-वर्ष।}$$

इस दूरी का नाम पारसैक[3] रख दिया गया है और बहुधा तारों की दूरी को व्यक्त करने के लिए इसे भी मात्रक मान लिया जाता है।

1. Heleocentric 2. Sirius 3. Parsec

तारों के लम्बन आजकल फोटोग्राफी के द्वारा अधिक यथार्थता-पूर्वक नापे जाते हैं। इन चित्रों में निकटवर्ती चमकदार तारे के साथ-साथ बहुत-से मंद ज्योति तारे भी चित्रित हो जाते हैं। ये मंदज्योति तारे अपेक्षाकृत बहुत अधिक दूर होते हैं और उनका लम्बन इतना कम होता है कि उपेक्षणीय समझा जा सकता है। छः महीने के अन्तराल से एक ही तारे के दो चित्रों में मंद तारों की पारस्परिक दूरियाँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं, किन्तु वह तीव्र ज्योतिवाला तारा अन्य तारों की अपेक्षा विस्थापित दिखाई देता है। माइक्रोस्कोप के द्वारा अन्य तारों से इस तारे की दूरियाँ नापने से उसका विस्थापन तथा वार्षिक लम्बन ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार कई सहस्र तारों के लम्बन नाप लिये गये हैं। किन्तु इस नाप की यथार्थता सीमित है। निकटम तारों की दूरी में तो भूल संभवतः १% से अधिक नहीं होती, किन्तु जब तारे की दूरी ७० प्रकाशवर्ष होती है तब यह भूल १०% तक हो जाती है और यदि दूरी १५० प्रकाशवर्ष हो तब तो यह युक्ति विलकुल ही विश्वास योग्य नहीं रह जाती।

युग्म तारों की दूरी

यह परिच्छेद ६ में बताया जा चुका है कि कई युगल तारे ऐसे हैं जो एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं। यह परिक्रमण ठीक उसी प्रकार का होता है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी का परिक्रमण करता है और इसका कारण भी गुरुत्वाकर्षण ही है। इन भौतिक तारा युग्मों[1] के पूरे एक परिक्रमण में कई वर्ष लगते हैं और उनका परिक्रमण काल T आसानी से नापा जा सकता है।

मान लीजिए कि युग्म के तारों की पारस्परिक रैखिक दूरी a ज्यौतिष-मात्रक है और परिक्रमणकाल T वर्ष है। तब गुरुत्वाकर्षण नियम के

1. Physical pairs

अनुसार यदि दोनों तारों का सम्मिलित द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से K गुना हो तो यह प्रमाणित किया जा सकता है कि

$$a^3 = KT^2 \text{ अर्थात् } a = (KT^2)^{\frac{1}{3}}$$

अतः यदि K का मान किसी अन्य उपाय से मालूम कर लिया गया हो तो T को नाप लेने से a का मान मालूम हो जाता है, यदि युग्म ऐसा हो कि उसके दोनों तारों के वीच की महत्तम दूरी का कोणीय मान α'' दूरवीन से या फोटोग्राफ़ी से नापा जा सके तब तो हम से उसकी दूरी d भी ज्यौतिष मात्रकों में तुरन्त मालूम हो जाती है क्योंकि–

$$\alpha'' = \frac{\alpha}{206265} \text{ रेडियन} = \frac{a}{d}$$

और तव उस युग्म का सूर्य-केन्द्रीय लम्वन होगा

$$p'' = \frac{206265}{d} = \frac{\alpha''}{a},$$

किन्तु यदि K का मान मालूम न हो तो K=२ मान लिया जाता है। इस का कारण यह है कि बहुधा तारों के द्रव्यमान में और सूर्य के द्रव्यमान में वहुत अन्तर नहीं होता। वहुधा तारों के द्रव्यमान सूर्य से ०.२ गुने से लेकर १० गुने के वीच में ही पाये गये हैं। अतः सांख्यिकीय परिकलन[1] के प्रथम सन्निकटन[2] के लिए हम यह मान सकते हैं कि प्रत्येक तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान के वरावर ही है। अतः $a^3 = 2T^2$ हो जाता है और

$$p'' = \frac{\alpha''}{a} = \frac{\alpha''}{(2T^2)^{\frac{1}{3}}} = \cdot 794 \times \frac{\alpha''}{T^{2/3}}$$

इस सांख्यिकीय विधि में युग्म तारेका द्रव्यमान K=२ मानने में यह आपत्ति उठ सकती है कि K का मान अनिश्चित है और उसमें वहुत

1. Statistical calculation 2. First approximation

गलती हो सकती है। किन्तु वास्तव में गलती इतनी ज्यादा होती नहीं। यदि $K=10$ हो तब भी $p''=2\cdot15\frac{a''}{T2/3}$ ही होगा। अर्थात् तब भी लम्बन हमारे परिकलित लम्बन की अपेक्षा केवल २.७ गुना ही होगा। और यदि $K=5$ हो तब तो वह केवल २ गुना ही होगा। इस प्रकार प्राप्त किये हुए लम्बन गतिक लम्बन[1] कहलाते हैं और इनसे हमें अत्यन्त उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है।

कांतिमान द्वारा तारों के लम्बन का नाप

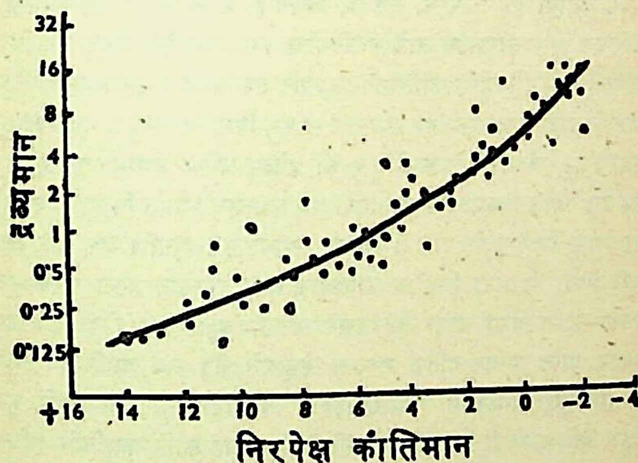
तारों की ज्योतियों[2] के नाप से तारायुग्मों की दूरी का पता और भी अधिक यथार्थतापूर्वक लग सकता है। परिच्छेद १० में इन ज्योतियों के नापने की विधि का वर्णन किया गया है और यह भी बताया गया है कि ज्योति-क्रम के अनुसार किस प्रकार समस्त तारों का वर्गीकरण कर दिया गया है और किस प्रकार इस क्रम में तारे का स्थान व्यक्त करने के लिए एक संख्या का व्यवहार किया जाता है जिसे उस तारे का कांतिमान[3] कहते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष नाप द्वारा प्राप्त कांतिमान केवल आभासी होता है और उससे तारे की वास्तविक निजी ज्योति[4] का पता नहीं चलता क्योंकि प्रकाश के व्युत्क्रम वर्ग नियम[5] के अनुसार तारे की दूरी की अधिकता से भी उसकी दृश्य ज्योति कम हो जाती है। अतः विभिन्न तारों की निजी ज्योतियों की तुलना करने के लिए यह मालूम करना आवश्यक है कि यदि तारा किसी नियत मानक दूरी पर होता तो उसका कांतिमान कितना होता। यह मानक

1. Dynamical parallax
2. Luminosity
3. Magnitude
4. Intrinsic luminosity
5. Inverse square law

दूरी १० पारसैक=३२.६ प्रकाश-वर्ष मान ली गयी है और इस दूरी पर तारे का लम्बन p=0"·1 होता है। इस दूरी के लिए परिकलित कांतिमान निरपेक्ष कांतिमान[1] कहलाता है। यदि तारे का लम्बन p हो, उसके प्रेक्षित तथा निरपेक्ष कांतिमान m तथा M हों तो यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि—

$$M=m+5+5\log p. \quad (\text{परि॰ १०})$$

जिन तारा-युग्मों के लम्बन नाप लिये गये हैं और गुरुत्वाकर्षण नियम



आकृति ७.९

के अनुसार जिनके द्रव्यमान भी नाप लिये गये हैं उनके निरपेक्ष कांतिमानों को तथा द्रव्यमानों के लघुगणकों[2] को यदि एक लेखाचित्र[3] पर अंकित

1. Absolute magnitude
2. Logarithms
3. Graph

किया जाय तो यह मालूम होता है कि इन तारों के निरूपक विन्दु[1] एक विशेष वक्र के आसपास ही अवस्थित होते हैं (चित्र ७.९)। संभवतः यदि लम्बन का नाप अधिक यथार्थतापूर्ण होता तो यह वक्र तारे के द्रव्यमान तथा निरपेक्ष कांतिमान[2] का सम्बन्ध ठीक-ठीक निर्धारित कर देता। यदि यह बात समस्त तारों के लिए सच मान ली जाय तो तारायुग्म के लम्बन का मान अधिक यथार्थतापूर्वक मालूम किया जा सकता है। पहले तो उस युग्म के दोनों तारों का सम्मिलित द्रव्यमान २ मान कर ऊपर वतायी हुई रीति से उसका लम्बन p प्राप्त कर लिया जाता है। फिर इस p के द्वारा उस तारे का निरपेक्ष कांतिमान M मालूम कर लिया जाता है। फिर उपर्युक्त कांतिमान-द्रव्यमान वक्र से M के इस प्रथम सन्निकट मान के द्वारा तारा-युग्म का द्रव्यमान मालूम किया जाता है। यह द्रव्यमान अवश्य ही पूर्व-परिकल्पित मान २ की अपेक्षा अधिक यथार्थतापूर्ण होगा। तब इस नवीन द्रव्यमान से पुनः तारायुग्म का लम्बन प्राप्त किया जाता है। यह मान पहले वाले मान से अधिक यथार्थतापूर्ण होगा। एक बार फिर इसी क्रिया के द्वारा निरपेक्ष कांतिमान तथा द्रव्यमान प्राप्त करके पुनः लम्बन प्राप्त किया जाता है। इसमें गलती वहुत कम होती है। इस प्रकार प्राप्त लम्बन गतिक लम्बन[3] कहलाते हैं। जब ज्यामितीय विधि से नापे हुए लम्बन का नाप 0".१० से कम होता है तब उसमें भूल वहुत अधिक रहती है। ऐसे लम्बनों के लिए यह कांतिमान-विधि अधिक उत्तम है।

सीफाइड तारों के लम्बन

परिच्छेद ६ में सीफाइड नामक चरकांति तारों का वर्णन किया गया था।

1. Representative point 2. Magnitude (of star)
3. Dynamical parallax

इनकी ज्योति-परिवर्तन का कारण वैसा नहीं है जैसा ग्रासशील तारा-युग्मों का होता है। ये तारे युग्म नहीं होते और एक ही तारे के आन्तरिक भौतिक परिवर्तनों के कारण उनकी ज्योति में परिवर्तन होते रहते हैं। इनके ज्योति-परिवर्तन का आवर्तकाल छोटा होता है। केवल कुछ थोड़े-से घंटों से लेकर अधिक से अधिक ५० दिन। यों तो छोटे आवर्तकाल वाले सीफाइड तारे समस्त आकाश में फैले हुए हैं तथापि उनकी अधिक संख्या गोलीय तारा-पुंजों[1] में ही पायी जाती है। अतः वे पुंजीय सीफाइड[2] कहलाते हैं। इनका आवर्तकाल लगभग १२ घंटों का होता है।

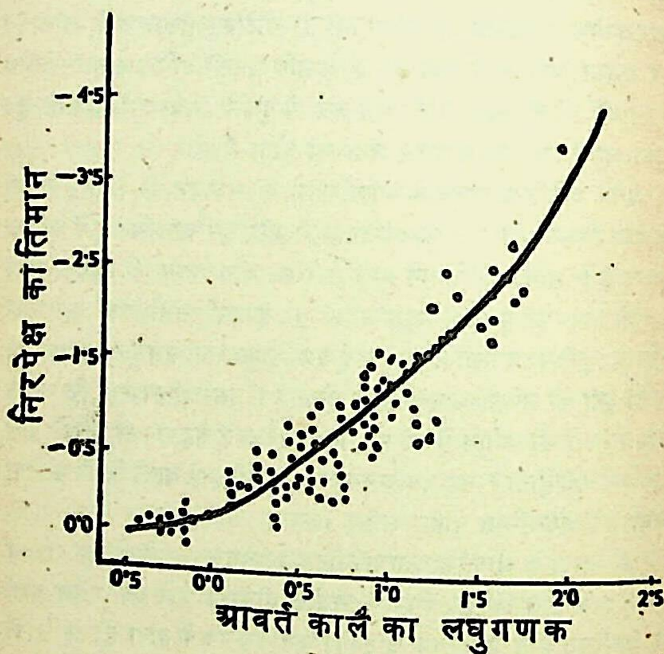
इनके ज्योति-परिवर्तन के आवर्तकालों के अध्ययन से १९१२ में यह परिणाम निकला कि तारे के कांतिमान में और इस आवर्तकाल में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिक कांतिमान वाले तारे का आवर्तकाल भी अधिक होता है। जो तारा-पुंज पृथ्वी से बहुत अधिक दूर है उसके सभी तारों को पृथ्वी से बराबर दूरी पर समझा जा सकता है क्योंकि प्रत्यक्षतः उस पुंज का विस्तार उसकी दूरी की अपेक्षा अत्यन्त छोटा होता है। इसलिए स्पष्ट है कि उसके विभिन्न तारों की ज्योति में जो फ़र्क दिखाई देता है वह उनकी दूरी के फ़र्क के कारण नहीं होता। वह अवश्य स्वयं तारों में ही होने वाली किसी भौतिक घटना पर अवलम्बित होना चाहिए।

इन तारों के आवर्तकाल तथा औसत कांतिमान का लेखाचित्र खींचने से यह ज्ञात हुआ कि इस चित्र में समस्त सीफाइड तारे एक मसृण वक्र[3] पर अवस्थित होते हैं (चित्र ७·१०)। अतः इस वक्र के द्वारा ही उन तारों के वास्तविक कांतिमान मालूम किये जा सकते हैं।

अब मान लीजिए कि दो सीफाइड ऐसे हैं जिनके प्रेक्षित कांतिमान क्रमशः m_1 और m_2 हैं और उनके आवर्तकाल बराबर हैं। अतः उपर्युक्त

1. Globular clusters   2. Cluster cepheid
3. Smooth curve

नियम के अनुसार दोनों सीफाइडों के निरपेक्ष कांतिमान M अवश्य ही बराबर होंगे। अतः यदि उनके लम्बन क्रमशः p_1 और p_2 हों तो



आकृति ७.१०

$$M = m_1 + 5 + 5 \log p_1 = m_2 + 5 + 5 \log p_2$$

$$\therefore\ m_1 - m_2 = 5 \log \left(\frac{p_2}{p_1} \right)$$

अतः यदि m_1 और m_2 फोटोग्राफी के द्वारा यथार्थतापूर्वक नाप लिये गये

हों तो हमें उनके लम्बनों का अनुपात $\frac{p_1}{p_2}$ भी उतना ही यथार्थतापूर्वक ज्ञात हो जायगा और यदि इन दोनों सीफाइडों में से किसी एक का लम्बन हम किसी अन्य उपाय से नाप सकें तो दूसरे का लम्बन भी तुरन्त ज्ञात हो जायगा।

किन्तु कठिनाई यह है कि निकटतम सीफाइड भी पृथ्वी से प्रायः २०० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है और उसका लम्बन 0"·००१६ है। यह लम्बन ज्यामितीय विधि से यथार्थतापूर्वक नापना संभव नहीं है। किन्तु १९१३ में हर्टज्रस्प्रुंग[1] ने बड़े परिश्रम से १३ सीफाइडों की औसत दूरी नापकर उनका औसत कांतिमान मालूम किया था और तब इस नाप के द्वारा अन्य सीफ़ाइडों की दूरी मालूम की गयी थी। इस प्रकार पता चला कि लघु मैगेलैनिक तारामेघ[2] के सीफाइडों की दूरी $१०^५$ प्रकाशवर्ष से भी अधिक है। नीहारिकाओं की दूरी भी उनमें स्थित सीफ़ाइड तारों के द्वारा मालूम की गयी है। जो काली, अस्फुट[3] तथा ग्रहाभ[4] नीहारिकाएँ आकाशगंगेय प्रदेश में दिखाई देती हैं उनकी दूरी १०० से लेकर २०,००० पारसैक तक पायी गयी हैं। और आकाशगंगा से दूर जो हजारों नीहारिकाएँ हैं उनकी दूरी तो और भी अधिक—कई सौ गुनी अधिक—तक पायी गयी है। कई तो इतनी दूर हैं कि जब पृथ्वी पर मनुष्य तो था ही नहीं, संभवतः कोई जीव-जन्तु अथवा वनस्पति भी नहीं थी, उस समय उनका जो प्रकाश उनसे रवाना हुआ था, वह अभी चल ही रहा है और आज तक भी पृथ्वी पर नहीं पहुँचा है। संभवतः इस समय इतनी अधिक दूरी की नापने की इस सीफ़ाइड-विधि से अधिक यथार्थतापूर्ण विधि और कोई ज्ञात नहीं है।

1. Hertzsprung 2. Smaller magellanic cloud
3. Diffuse 4. Planetary

अन्य परोक्ष विधियाँ

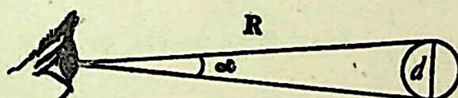
इनके अतिरिक्त तारों की निजी गति आदि अन्य घटनाओं पर अवलम्बित और भी विधियाँ हैं जिनसे तारों की दूरी मालूम की जा सकती है। किन्तु उनका वर्णन यहाँ संभव नहीं है।

परिच्छेद ८

व्यास का नाप

कोणीय व्यास[1]

कोई वस्तु हमें कितनी बड़ी दिखाई देती है, यह इस बात पर अवलम्बित है कि वह हमारी आँख पर कितना बड़ा कोण α अन्तरित करती है (चित्र ८.१)। और यह उस वस्तु की वास्तविक रैखिक चौड़ाई d तथा आँख से



आकृति ८.१

उसकी दूरी R पर अवलम्बित है, क्योंकि

$$\alpha = \frac{d}{R} \ldots\ldots \qquad (1)$$

इस कोण को उस वस्तु का कोणीय व्यास अथवा आभासी व्यास[2] कहते हैं। जितना ही निकट वस्तु होगी उतना ही बड़ा कोणीय व्यास होता है।

सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहों के कोणीय व्यास तो दूरबीन के द्वारा पर्याप्त यथार्थतापूर्वक नापे जा सकते हैं, क्योंकि इनके प्रतिबिम्बों के व्यास बड़े होते हैं। किन्तु तारों के कोणीय व्यास इस प्रकार नहीं नापे जा सकते, क्योंकि

1. Angular Diameter 2. Apparent diameter

इनके प्रतिबिम्ब अत्यन्त छोटे होते हैं। यह बताया जा चुका है कि जितनी ही बड़ी और अच्छी दूरबीन हो, उतना ही छोटा यह प्रतिबिम्ब होता है (परिच्छेद २)। इस प्रतिबिम्ब के व्यास में और तारे के वास्तविक व्यास में कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि इस प्रतिबिम्ब का व्यास केवल प्रकाश के विवर्तन[1] का परिणाम होता है।

रेखीय व्यास[2]

यदि किसी खगोलीय पिंड की दूरी हमें ज्ञात हो तो उसके कोणीय व्यास के नापने से हम परिकलन द्वारा उसका रेखीय व्यास उपर्युक्त सूत्र (1) के द्वारा आसानी से मालूम कर सकते हैं। मान लीजिए कि दूरी R मील है और कोणीय व्यास

$S'' = \frac{S}{206,265}$ रेडियन है, तब उस पिंड का रेखीय व्यास होगा

$$d = \frac{Rs}{206,265} \text{ मील} \qquad (2)$$

सूर्य तथा चन्द्रमा के रेखीय व्यास इसी प्रकार प्राप्त किये गये हैं। ये निम्न सारणी में दिये गये हैं:—

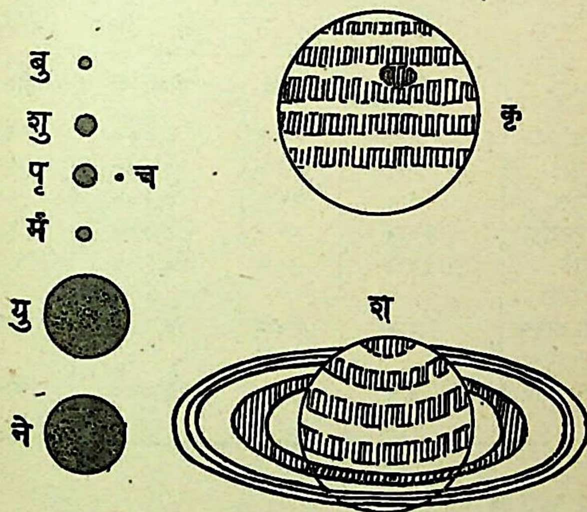
	कोणीय व्यास (माध्य)	पृथ्वी से माध्य दूरी (मीलों में)	रेखीय व्यास (मीलों में)	(पृथ्वी=1)
सूर्य	१९२२"·३६	९,३०,०५,०००	८,६६,०००	१०,९·१
चन्द्रमा	१८६५"	२,३८,८५७	२१६०	·२७३

1. Diffraction 2. Linear Diameter

इसमें कोणीय व्यास के तथा दूरी के जो मान दिये गये हैं वे इनके औसत मान हैं। वास्तव में यह व्यास बदलता रहता है क्योंकि पृथ्वी तथा चन्द्रमा की कक्षाएँ दीर्घवृत्तीय होने के कारण पृथ्वी से इनकी दूरी बदलती रहती है। कोणीय व्यास का यह परिवर्तन ही इनकी कक्षाओं के दीर्घवृत्तीय होने का बहुत अच्छा प्रमाण है।

ग्रहों के व्यास

सूर्य तथा चन्द्रमा के कोणीय व्यास में घटबढ़ अधिक नहीं होती, क्योंकि



आकृति ८.२

पृथ्वी तथा चन्द्रमा की कक्षाओं की उत्केंन्द्रता[1] अधिक नहीं है और वे लगभग वृत्ताकार ही समझी जा सकती हैं। किन्तु पृथ्वी से अन्य ग्रहों की दूरी में

1. Eccentricity

बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है। अतः इनकी दूरी और इनके माध्य कोणीय व्यास में कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता। जिस समय इनका कोणीय व्यास नापा जाय ठीक उसी समय उनकी दूरी भी नापनी चाहिए और इन दोनों तात्कालिक नापों से ही उनके रेखीय व्यासों का परिकलन करना पड़ता है। निम्नलिखित सारणी में ग्रहों के व्यास दिये गये हैं और चित्र ८·२ में उनके आपेक्षिक व्यास दिखाये गये हैं।

ग्रह	कोणीय व्यास सैकंडों में		रेखीय व्यास	
	न्यूनतम	महत्तम	मीलों में	पृथ्वी=१
बुध	४·७	१२·९	३,०००	·३८
शुक्र	९·९	६४·०	७,६००	·९६
मंगल	३·५	२५·१	४,२००	·५३
बृहस्पति	३०·५	४९·८	८८,७००	११·१
शनि	१४·७	२०·५	७५,१००	९·४
युरेनस या वारुणी	३·४	४·२	३०,९००	३·९
नेपट्यून या वरुण	२·२	२·४	३३,०००	४·०

क्षुद्र ग्रहों के व्यास

ये क्षुद्र ग्रह[1] इतने छोटे होते हैं कि इनमें सब से बड़ों के व्यास बड़ी से बड़ी दूरबीन से भी नापना अत्यन्त कठिन है। छोटों के व्यास तो इस प्रकार

1. Asteroid

नापना असंभव ही है। बरनार्ड[1] ने चार सबसे अधिक चमकदार तथा संभवतः बृहत्तम क्षुद्र ग्रहों के व्यास नापे थे और उनके मान १२०, २४०, ३०४ तथा ४८० मील पाये थे। इनके व्यास व्यतिकरण मापी (आगे देखो) के द्वारा भी नापे गये हैं और लगभग इतने ही पाये गये हैं। किन्तु इनसे कम द्युतिवाले क्षुद्र ग्रहों के व्यास का अन्दाज तो केवल उनकी प्रेक्षित द्युति द्वारा ही लगाया जा सकता है।

यदि यह मान लिया जाय कि उनके पृष्ठ भी सूर्य के प्रकाश के उतने ही भाग को परावर्तित करते हैं जितने को उपर्युक्त चार बड़े क्षुद्र ग्रहों के पृष्ठ करते हैं, तो यह परिणाम निकलता है कि संभवतः केवल १०-१५ ही क्षुद्र ग्रह और हैं जिनके व्यास १०० से १५० मील तक के हों। अन्य क्षुद्रग्रहों के व्यास तो बहुत ही छोटे हैं।

धूम केतु की लंबाई-चौड़ाई

जब धूमकेतु हमें दिखाई पड़ते हैं तब उनका विस्तार बहुत बड़ा होता है। अतः उनके सिर और पूँछ की लम्बाई-चौड़ाई दूरबीन से नापना आसान है और दूरी भी आसानी से मालूम हो जाती है। अतः परिकलन द्वारा लम्बाई-चौड़ाई मीलों में भी ज्ञात हो जाती है।

धूमकेतु के सिर[2] का व्यास साधारणतः ३०,००० से १,५०,००० मील तक का होता है। कोई कोई तो १,५०,००० मील से भी बड़े होते हैं। किन्तु शायद १०,००० मील से छोटे कोई भी नहीं होते। इस सिर का केन्द्रीय भाग, जिसे न्यूक्लियस[3] कहते हैं, साधारणतः ५००–१००० मील से अधिक चौड़ा नहीं होता। इस शीर्ष के चारों ओर जो गैसीय प्रभा[4] दिखाई देती है उसका व्यास तो १४ लाख मील तक का देखा गया है।

1. Bernard 2. Head 3. Nucleus
4. Coma

जब पूंछ खाली आँख से दिखाई देती है तब वह ५० लाख मील से कम लम्बी नहीं होती। ३-५ करोड़ मील लम्बी पूँछें भी बहुधा दिखाई देती हैं। १० करोड़ मील की लम्बाई भी देखी गयी है। यह पूँछ पंखे की आकृति की होती है अर्थात् सिर के पास उसकी चौड़ाई कम होती है, किन्तु दूसरे सिरे पर तो वह करोड़ों मील चौड़ी हो जाती है और ज्यों-ज्यों धूमकेतु सूर्य के निकट आता जाता है उसकी पूँछ का विस्तार भी बढ़ता जाता है, और फिर जब सूर्य से उसकी दूरी बढ़ती जाती है तब पूंछ का विस्तार भी घटता जाता है। इसका मुख्य कारण यह माना जाता है कि धूमकेतु की पूंछ असंख्य अत्यन्त छोटे-छोटे कणों का समुदाय है जिन पर सूर्य किरणों के यांत्रिक दबाव के कारण सूर्यापसारी बल लगता है। जब धूमकेतु सूर्य के निकट पहुँचता है तब प्रकाश की तीव्रता के कारण यह बल बहुत बढ़ जाता है और कणों को सूर्य से बहुत दूर तक विस्थापित कर देता है।

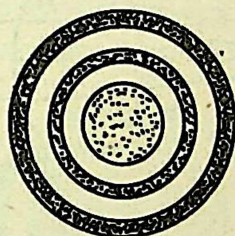
तारों का कोणीय व्यास

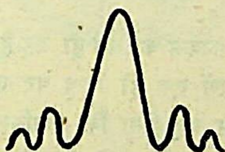
दूरबीन में तारे का जो प्रतिविम्ब दिखाई देता है वह तो दूरबीन के अभिदृश्य द्वारा उत्पन्न प्रकाश-विवर्तन की आकृतिमात्र होता है। इसके मध्य में तो एक प्रदीप्त वृत्ताकार मंडलिका[1] होती है, जिसके केन्द्र में प्रदीप्ति अधिकतम होती है और किनारों की ओर क्रमशः घटती घटती शून्य हो जाती है। इस मंडलिका के चारों ओर दो-एक प्रदीप्त वृत्त दिखाई देते हैं (चित्र ८·३)। इस प्रतिबिम्ब में प्रदीप्ति का वितरण चित्र के नीचे के लेखाचित्र में दिखाया गया है। केन्द्रीय मंडलिका का व्यास दूरबीन के अभिदृश्य के व्यास का उत्क्रमानुपाती होता है। इसके नापने से तारे के व्यास का कुछ भी पता नहीं चल सकता।

1. Disc

व्यतिकरण[1] का उपयोग

प्रकाश के व्यतिकरण का उपयोग करके माइकेलसन[2] ने १८९१ में तारों के व्यास को नापने की विधि का आविष्कार किया था।



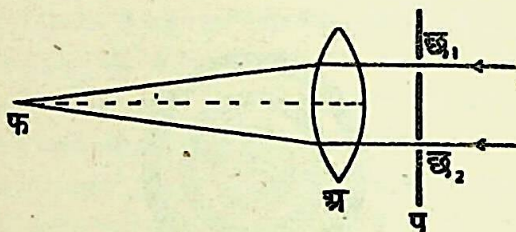


आकृति ८.३

इस युक्ति को समझने के लिए मान लीजिए कि हम दूरबीन के अभिदृश्य[3] अ को एक अपारदर्शक परदे प से ढक देते हैं और उसमें केन्द्र से बराबर दूरी पर और एक ही व्यास पर दो छिद्र $छ_१$, $छ_२$ बना देते हैं (चित्र ८.४)। इनमें से प्रत्येक छिद्र में से प्रवेश करने वाला प्रकाश तारे का उपर्युक्त प्रकार का विवर्तन-प्रतिबिम्ब फ़ोकस फ पर बनायेगा। छिद्र छोटा होने के कारण इस प्रतिबिम्ब में प्रदीप्ति तो बहुत कम होगी,

1. Interference 2. Michelson 3. Objective

किन्तु वह विस्तार में काफी बड़ा होगा। यदि दोनों छिद्र खुले हों तो दो प्रतिबिम्ब अलग-अलग नहीं बनेंगे किन्तु दोनों एक-दूसरे पर अध्यारोपित[1]



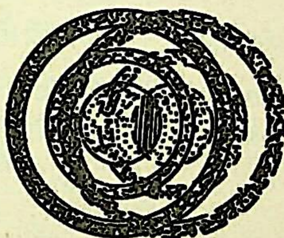
आकृति ८.४

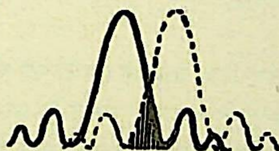
रहेंगे, क्योंकि दूरबीन के फ़ोकस का अर्थ ही यह है कि अभिदृश्य के प्रत्येक भाग से आनेवाली किरणें एक ही बिन्दु पर एकत्रित हो जायँ। इस अध्यारोपण का परिणाम यह होगा कि प्रतिबिम्ब में केन्द्रीय मंडलिका तथा परिवेष्टी वृत्तों के व्यास तो उतने ही रहेंगे, जितने केवल एक छिद्र के द्वारा बनते किन्तु मंडलिका में कई दीप्त और अदीप्त समान्तर रेखाएँ दिखाई देने लगेंगी (चित्र ८.५)। इन्हें व्यतिकरण फ्रिन्ज[2] कहते हैं। इनके बनने का कारण यह है कि दोनों छिद्रों से पहुँचने वाले प्रकाश के पथों की लम्बाइयाँ मंडलिका के केन्द्र को छोड़कर प्रतिबिम्ब के किसी भी बिन्दु पर बराबर नहीं होतीं। अतः यद्यपि तारे का प्रकाश दोनों छिद्रों पर समान कला में पड़ता है, तथापि प्रतिबिम्ब में पहुँचने पर दोनों छिद्रों के प्रकाश में कला का अन्तर हो जाता है। केन्द्र पर तथा जहाँ यह पथान्तर एक, दो अथवा तीन तरंग-दैर्घ्य (λ, 2λ, 3λ) के बराबर होता है वहाँ तो दोनों

1. Superposed 2. Interference fringes

की कलाएँ समान होती हैं। अतः वहाँ प्रदीप्ति महत्तम होती है। किन्तु इन स्थानों के बीच में जहाँ पथान्तर $\frac{\lambda}{2}, \frac{3\lambda}{2}, \frac{5\lambda}{2}$ इत्यादि होता है वहाँ दोनों की कलाएँ विपरीत होती हैं। फलतः वहाँ अंधकार ही रहता है।

अब मान लो कि दो तारे इतने पास-पास हैं कि उनके प्रतिबिम्बों का विभेदन दूरबीन नहीं कर सकती। वास्तव में प्रतिबिम्ब तो दो ही बनते





आकृति ८.५

हैं किन्तु दोनों में व्यवधान इतना कम होता है कि दोनों मिलकर एक ही प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं। किन्तु दोनों की फ्रिंजें यथार्थतः संपतित नहीं होतीं। एक की फ्रिंजें दूसरे की फ्रिंजों की अपेक्षा कुछ विस्थापित होती हैं। फलतः ऐसी दशा में फ्रिंजें उतनी स्पष्ट दिखाई नहीं देतीं। दोनों तारों के बीच की दूरी जितनी ही अधिक होती है उतना ही अधिक फ्रिंजों का विस्थापन भी होता है। यदि दूरी इतनी हो कि यह विस्थापन एक फ्रिंज की चौड़ाई से आधा हो जाय, तो स्पष्ट है कि तब एक तारे की दीप्त फ्रिंजें दूसरे की अदीप्त

फ्रिंजों पर संपतित हो जायँगी। परिणाम यह होगा कि अब फ्रिंजें बिलकुल दिखाई नहीं देंगी, क्योंकि सर्वत्र एक-समान प्रदीप्ति हो जायगी।

यह तो प्रकट है कि फ्रिंजों का विस्थापन दोनों तारों के प्रतिबिम्बों के विस्थापन के बराबर होगा। यदि दोनों तारों का कोणीय व्यवधान[1] a हो और दूरबीन के अभिदृश्य का फ़ोकस अन्तर F हो तो फ्रिंजों का

$$\text{रेखीय विस्थापन} = F.\, a$$

किन्तु व्यतिकरण के नियमों के अनुसार फ्रिंजों की चौड़ाई होती है $\frac{F\lambda}{D}$ जहाँ λ=प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य, तथा D=अभिदृश्य के सम्मुख रखे हुए दोनों छिद्रों का व्यवधान। अतः फ्रिंजों के लुप्त होने के लिए आवश्यक है कि

$$Fa = \frac{1}{2}\frac{F\lambda}{D}$$

$$\text{अर्थात्}\ D = \frac{\lambda}{2a} \qquad (3)$$

अतः यदि ऐसा प्रबंध कर दिया जाय कि हम D को धीरे-धीरे बढ़ा सकें तो हम फ्रिंजों को आसानी से लुप्त कर सकते हैं और तब D को नापने से दोनों तारों का कोणीय व्यवधान a ज्ञात हो सकता है। ऐसी व्यवस्था वाले यंत्र को तारा-व्यतिकरणमापी[2] कहते हैं।

इस यंत्र में अकेले एक तारे की फ्रिंजें भी D के एक विशेष मान पर लुप्त हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि एक तारा भी वास्तव में अनेक ज्योतिर्मय विन्दुओं का समुदाय होता है और प्रत्येक बिन्दु अपनी-अपनी फ्रिंजें बनाता है जो परस्पर थोड़ी-थोड़ी विस्थापित होती हैं। इसका गणित जरा क्लिष्ट है, किन्तु यह प्रमाणित कर दिया गया है कि यदि तारे का मंडलक

1. Angular separation 2. Stellar interferometer

या बिम्ब सर्वत्र एक समान ज्योति वाला हो तो फ्रिंजें लुप्त तब होंगी जब

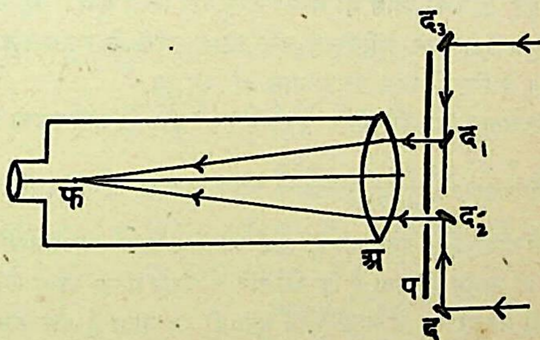
$$D=\frac{1.22\lambda}{a} \qquad (4)$$

जहाँ a तारे के विम्ब का कोणीय व्यास है। किन्तु वास्तव में सूर्यबिम्ब के समान ही तारे के विम्ब में भी केन्द्र से किनारों की ओर ज्योति घटती जाती है। ऐसी अवस्था में फ्रिंजों के लोप के लिए

$$D=\frac{1.43\lambda}{a} \qquad (5)$$

अतः D को नापने से तारे का कोणीय व्यास a नापा जा सकता है। यह प्रकट है कि इस प्रकार १००"=२५० सें०मी० चौड़े अभिदृश्य वाली दूरबीन से भी जो कोणीय व्यास नापा जा सकता है उसका मान होगा

$$\frac{१.४३\,\lambda}{२५०} \text{ रेडियन}=\text{लगभग } ०''.०६$$



आकृति ८.६

इस ताराव्यतिकरणमापी को और भी शक्तिशाली बनाने की युक्ति माइकेलसन ने सन् १९२० में मालूम कर ली। चित्र ८.६ में यह दिखायी

गयी है। इसमें दूरबीन के अभिदृश्य के सामने लोहे की एक लम्बी पटरी लगा दी गयी है और उस पर चार छोटे समतल दर्पण इस प्रकार लगाये गये हैं कि उनमें से दो (द$_1$ और द$_2$) का व्यवधान तो अभिदृश्य के व्यास से कम है और शेष दो (द$_3$ द$_4$) का व्यवधान प्रायः २० फुट=६०० सें० मी० तक बढ़ाया जा सकता है। तारे से आनेवाली किरणें द$_3$ और द$_4$ पर पड़ती हैं, वहाँ से परावर्तित होकर द$_1$ और द$_2$ पर पड़ती हैं और वहाँ से पुनः परावर्तित होकर अभिदृश्य में प्रवेश करती हैं। इस व्यवस्था का परिणाम यह होता है कि तारे के कोणीय व्यास के लिए ऊपर जो सूत्र (5) दिया गया है उसमें D को द$_3$ से द$_4$ की दूरी के बराबर माना जा सकता है। अतः अब और भी छोटे व्यास नापे जा सकते हैं। १९३० में ५० फुट व्यवधान वाला व्यतिकरणमापी भी बना लिया गया था और उसके द्वारा ०".०१२ तक के कोणीय व्यास अच्छी तरह नापे जा सकते थे।

१८९१ में तो बृहस्पति के उपग्रहों के व्यास (लगभग १") का ही नाप संभव हुआ था। किन्तु १९२० के नये व्यतिकरणमापी के द्वारा बीटलग्यूज़[1] तारे का व्यास भी अच्छी तरह नाप लिया गया। यह लगभग ०".०४७ है। इसके अतिरिक्त और भी ६ तारों के व्यास उस समय नापे गये थे जिनमें सबसे छोटा व्यास ०".०२ था।

बीटलग्यूज़ तारे की दूरी १.१२७×१०^{१५} मील है, अतः उसका रेखीय व्यास है $\frac{१.१२७\times१०^{१५}\times.०४७}{२०६२६५}$ =२५.७ करोड़ मील। यह सूर्य के व्यास से प्रायः ३०० गुना बड़ा है। कई वर्षों तक इसका व्यास नापते रहने से यह भी मालूम हो गया है कि इस तारे का व्यास घटता-बढ़ता रहता है। कभी तो घटकर सूर्य से प्रायः २१० गुना ही रह जाता है और कभी बढ़कर ३०० गुना तक हो जाता है।

1. Betelgeuse

तारे की दूरी नापने की परोक्ष विधि

इस विधि में तारे का ताप (टेम्परेचर) तथा उसका निरपेक्ष कांतिमान[1] नाप लिये जाते हैं। स्पैक्ट्रम के द्वारा ताप कैसे नापा जाता है यह परिच्छेद ११ में बताया गया है। और निरपेक्ष कांतिमान नापने की विधि का वर्णन परिच्छेद १० में किया गया है।

यदि तारे को आदर्श विकीर्णक[2] मान लिया जाय तो विकिरण के सुपरिचित नियमों के द्वारा हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि उस नापे हुए ताप पर तारे के बिम्ब के प्रत्येक वर्ग सें० मी० में से कितनी विकिरण-ऊर्जा अथवा प्रकाश-ऊर्जा प्रति सैकंड विकीर्ण होती है।

और निरपेक्ष कांतिमान हमें यह बताता है कि तारे के पूरे बिम्ब में से कितनी ऊर्जा प्रति सैकंड विकीर्ण होती है। यह प्रकट ही है कि पूरे तारे की ऊर्जा=तारे के बिम्ब का क्षेत्रफल × प्रति वर्ग सें० मी० से विकीर्ण ऊर्जा। यदि तारे का व्यास d हो तो तारे के बिम्ब का क्षेत्रफल होगा $\frac{\pi d^2}{4}$। अतः ताप और कांतिमान के नाप से d का परिकलन आसानी से हो सकता है। इसके लिए निम्नलिखित सूत्र प्राप्त कर लिया गया है—

$$\log d = \frac{5900}{T} - 0{\cdot}2\, M\alpha - 0{\cdot}02 \quad (6)$$

इसमें d=(तारे का व्यास) ÷ (सूर्य का व्यास), T=तारे का परम ताप[3] तथा $M\alpha$=तारे का निरपेक्ष कांतिमान हैं। बीटलग्यूज़ तारे का ताप २६००° है और उसका कांतिमान –२.९ है।

अतः d=२९०

1. Magnitude 2. Perfect radiator
3. Absolute temperature

d का यह मान व्यतिकरणमापी द्वारा प्राप्त मान के सन्निकट ही है। इस युक्ति के द्वारा कई ऐंसे तारों के व्यास नाप लिये गये हैं जो इतने छोटे हैं कि व्यतिकरणमापी के द्वारा उनके व्यास का नाप संभव नहीं है।

तारे का नाम	ताप	निरपेक्ष कांतिमान,	व्यास (सूर्य का व्यास=१)
वीगा (Vega)	११,२००	०·६	२·४
सीरियस (Sirius A)	११,२००	१·३ से ११·३	१·८
ऐल्टेयर (Altair)	८,६००	२·४	१·४
प्रोकियान (Procyon)	६,५००	३·० से १५.५	१·९
कैपेला (Capella A)	५,५००	—०·६	१२
आर्कट्यूरस (Arcturus)	४,१००	—०·२	३०
ऐल्डीबरन (Aldebaran)	३,३००	—०·१ से १२	६०
ऐन्टरेस (Antares)	३,१००	—४·०	४८०
बीटलग्यूज़ (Betelgeuse)	२,६००	—२·९	२९०
ऐल्फ़ा हरक्यूलिस (α-Hercules)	२,५००		४००
मीरा (Mira)	२,४००		३००

तारों के व्यास और टेम्परेचर का सम्बन्ध

इस सारणी से तथा उपर्युक्त सूत्र (6) से भी प्रकट है कि बहुधा जिन तारों का ताप कम होता है और इस कारण जिनका रंग लाल होता है, उनका व्यास बहुत बड़ा होता है। इन्हें लाल दानव[1] कहते हैं। ज्यों-

1. Red giant

ज्यों ताप बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उनके प्रकाश में नीले रंग की मात्रा बढ़ती जाती है और उनका व्यास भी उसी क्रम से घटता जाता है। ये नीले तारे वामन[1] कहलाते हैं। किन्तु कभी-कभी अत्यन्त छोटे व्यास वाले तारों का रंग लाल और ताप लगभग लाल दानवों के ही बराबर पाया जाता है। इन्हें लाल वामन[2] कहते हैं। इनमें से कुछ तो बृहस्पति या शनि के उपग्रहों से अधिक बड़े नहीं होते। कुछ तारे इनसे भी छोटे होते हैं। उन्हें श्वेत वामन[3] कहते हैं। इन का रंग श्वेत होता है और ताप लगभग १००००° होता है। सीरियस का साथी तारा इसी प्रकार का श्वेत वामन है और उसका व्यास केवल ३०,००० मील के लगभग है।

तारों के आयतन[4]

व्यास मालूम हो जाने पर तारे का आयतन मालूम करना आसान है। इस परिकलन में यह मान लिया जाता है कि तारा गेंद की तरह गोलाकार[5] होता है। इस मान्यता का मुख्य कारण यह है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण यही आकृति स्थायी सन्तुलन उत्पन्न कर सकती है। पृथ्वी की आकृति भी ऐसी ही है। हाँ, जिस प्रकार अक्षीय घूर्णन के कारण पृथ्वी का निरक्षीय व्यास ध्रुवीय व्यास की अपेक्षा कुछ थोड़ा-सा बड़ा होता है, वैसे ही तारों में हो सकता है। किन्तु यहाँ इस सूक्ष्मता में जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि गोले का व्यास d और त्रिज्या r हो तो हम जानते हैं कि उसका आयतन $V=\frac{4}{3}\pi r^3=\frac{\pi d^3}{6}$ होगा। इसी सूत्र से ग्रहों तथा तारों का आयतन मालूम किया जाता है।

1. Dwarf 2. Red dwarf 3. White dwarf
4. Volume 5. Spherical

पृथ्वी की त्रिज्या R=३९५७ मील=६३६८ किलोमीटर, अतः इस सूत्र के अनुसार पृथ्वी का आयतन होगा—२५,९०० करोड़ घन मील= १.०८३×१०^{२७} घन सें० मी० ।

यदि पृथ्वी के आयतन को मात्रक माना जाय अर्थात् यदि उसे अंक १ द्वारा व्यक्त करें तो सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहों के आयतन निम्नलिखित सारणी में दिये गये हैं—

आयतन (पृथ्वी=१)

सूर्य	१३,००,०००
चन्द्र	०·०२०४=$\frac{१}{४९}$
बुध	०·०६
शुक्र	०·९२
मंगल	०·१५
बृहस्पति	१३१२
शनि	७३४
यूरेनस (वारुणी)	६४
नेपट्यून (वरुण)	६३

परिच्छेद ९

द्रव्यमान[1] का नाप

द्रव्यमान तथा गुरुत्वाकर्षण

परिच्छेद ५ में गुरुत्वाकर्षण बल का विवेचन हो चुका है और यह भी बताया जा चुका है कि सौर परिवार में ग्रह तथा उपग्रह इसी बल के कारण परिक्रमण करते रहते हैं। और उस परिच्छेद के समीकरण (5) के अनुसार यह बल होता है

$$F = G.\ \frac{Mm}{r^2} \qquad (1)$$

तथा G का मान होता है $6 \cdot 66 \times 10^{-8}$। इसी सूत्र का उपयोग कर के पृथ्वी, सूर्य, ग्रहों तथा उपग्रहों के तथा युग्म-तारों के द्रव्यमान मालूम किये गये हैं।

पृथ्वी का द्रव्यमान

परि० (५), समी० (7) के अनुसार

$$E = \frac{gR^2}{G} \qquad (2)$$

जहां E पृथ्वी का द्रव्यमान है, R पृथ्वी की त्रिज्या है और g पृथ्वी के

1. Mass

पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण है। इसमें $g=980$, $R=6{\cdot}366\times10^5$ तथा $G=6.66\times10^{-8}$ को निविष्ट करने पर

$$E=\frac{980\times(6{\cdot}366\times10^5)^2}{6{\cdot}66\times10^{-8}}=5{\cdot}966\times10^{27} \text{ ग्राम}$$

$$=6\times10^{21} \text{ टन}$$

अत्यन्त यथार्थतापूर्ण नापों से पृथ्वी का द्रव्यमान $E=5{\cdot}98\times10^{27}$ ग्राम है। और आकृति गोलाकार होने के कारण पृथ्वी का आयतन है—

$$V=\tfrac{4}{3}\pi R^3=\tfrac{4}{3}\pi\,(6{\cdot}366\times10^5)^3=1.083\times10^{27} \text{ घन सेंमी०।}$$

$$\text{अतः पृथ्वी का औसत घनत्व} = \frac{5{\cdot}966\times10^{27}}{1.083\times10^{27}}=5.53$$

अर्थात् जल, थल आदि को लेकर समस्त पृथ्वी का औसत घनत्व जल से ५·५३ गुना है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पृथ्वी के गर्भ में द्रव्य का घनत्व बहुत अधिक है क्योंकि पृथ्वीतल की चट्टानों तथा जल का घनत्व तो इससे कम ही है।

सूर्य का द्रव्यमान

मान लो कि सूर्य तथा ग्रह के द्रव्यमान S तथा P हैं, तथा ग्रह की वृत्ताकार कक्षा की त्रिज्या D है और ग्रह सूर्य की एक परिक्रमा समय T में पूरी कर लेता है। तब—

$$\text{गुरुत्वाकर्षण बल}=G\,.\,\frac{S\,P}{D^2} \qquad (3)$$

$$\text{और ग्रह कक्षा की परिधि}=2\pi D$$

$$\therefore \text{ ग्रह का रेखीय वेग } v=\frac{2\pi D}{T}$$

$$\text{अतः ग्रह का केन्द्रापसारी बल } \frac{Pv^2}{D}=\frac{4\pi^2D^2P}{T^2D}=\frac{4\pi^2D}{T^2}\,.\,P$$

और सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि गुरुत्वाकर्षण बल=केन्द्रापसारी बल। अतः

$$\frac{GS}{D^2} = \frac{4\pi^2 D}{T^2} \qquad (4)$$

$$\therefore \frac{D^3}{T^2} = \frac{GS}{4\pi^2} = K \qquad (4a)$$

किन्तु समी० (2) के अनुसार

$$\frac{GE}{R^2} = g \qquad (5)$$

इन दोनों समीकरणों में से G का निरसन करने पर

$$\frac{S}{E} = \frac{4\pi^2 D^3}{gT^2R^2} \qquad (6)$$

इसमें पृथ्वी-कक्षा की त्रिज्या D=१.४९४५×१०^{13} सें०मी० तथा उसका परिक्रमण काल T=३६५$\frac{१}{४}$ दिन=३·१५६×१०^{7} सैकंड है। इन मानों का तथा g और R के मानों का निवेषण करने से

$$\frac{S}{E} = 3.\ 31,\ 950$$

अर्थात् सूर्य का द्रव्यमान पृथ्वी से प्रायः ३ १/३ लाख गुना अधिक है। इस वृहत् द्रव्यमान को ग्रामों में या टनों में व्यक्त करना वृथा है। पृथ्वी का द्रव्यमान ही इन खगोलीय पिंडों के द्रव्यमानों के लिए उपयुक्त मात्रक है।

सूर्य का द्रव्यमान मालूम करने की एक विधि और भी है, किन्तु वह है बहुत जटिल। इसमें पृथ्वी के निकटवर्ती किसी ग्रह की कक्षा में पृथ्वी के आकर्षण के कारण जो थोड़ा-सा क्षोभ[1] होता है उसे नापा जाता है।

1. Perturbation

इससे भी परिणाम वही निकलता है जो ऊपर दिया गया है, किन्तु संभवतः इस विधि से नाप में यथार्थता अधिक प्राप्त होती है।

सूर्य के द्रव्यमान और आयतन के नापों के अनुसार

$$\text{सूर्य का घनत्व} = \frac{3,31,950}{(109.1)^3} = 0.256$$

इस परिकलन में द्रव्यमान का मात्रक पृथ्वी का द्रव्यमान है और आयतन का मात्रक है पृथ्वी का आयतन। अतः सूर्य का घनत्व पृथ्वी के घनत्व का ०.२५६ अर्थात् लगभग चौथाई है। जल की अपेक्षा घनत्व है ५.५३× ०.२५६=१ ४१ अर्थात् लगभग जल से डेढ़ गुना।

यह परिणाम है बड़ा विचित्र क्योंकि हम देखेंगे कि सूर्य के स्पैक्ट्रम के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें धातुओं का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त उसका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक है कि अत्यधिक दबाव के कारण भी घनत्व बढ़ जाना चाहिए। यदि इस विचित्रता की कोई व्याख्या संभव है तो केवल यही कि सूर्य का टेम्परेचर इतना अधिक है कि उसके द्रव्य का अधिकांश भाग गैसीय अवस्था में है, और उसमें हाइड्रोजन की मात्रा बहुत अधिक है।

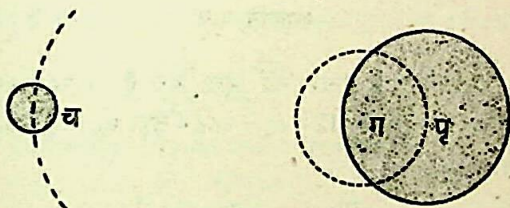
यह भी प्रगट है कि यदि सूर्य का घनत्व उसके पूरे आयतन में एक-समान भी मान लिया जाय तब भी उसके केन्द्र पर दबाव पृथ्वी के वायु-मंडल से अरबों गुना होना चाहिए। अतः इसमें भी सन्देह नहीं हो सकता कि सूर्य के केन्द्रीय भाग का टेम्परेचर कई करोड़ डिगरी होना चाहिए।

चन्द्रमा का द्रव्यमान

यद्यपि चन्द्रमा पृथ्वी से अत्यन्त निकट है तथापि उसका द्रव्यमान नापना बहुत कठिन है। सुदूर स्थित यूरेनस-जैसे ग्रह का द्रव्यमान नापना इसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा आसान है। इस कठिनाई का कारण यह है कि, जैसा कि परिच्छेद ५ के अन्त में बताया गया था, चन्द्रमा वास्तव में पृथ्वी

के केन्द्र की परिक्रमा नहीं करता। वह पृथ्वी और चन्द्रमा के गुरुत्व-केन्द्र की परिक्रमा करता है और साथ ही पृथ्वी भी इसी गुरुत्व-केन्द्र की परिक्रमा करती है। सूर्य और ग्रह के परिक्रमण में भी ऐसा ही होता है, किन्तु इनका गुरुत्व-केन्द्र सूर्य के केन्द्र से इतनी कम दूरी (केवल ३०० मील) पर है कि हम सूर्य को स्थिर समझ सकते हैं और ग्रह को सूर्य के ही केन्द्र की परिक्रमा करता हुआ समझ सकते हैं।

जब पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तब उसका उपग्रह चन्द्रमा भी इस परिक्रमा में पृथ्वी के साथ रहता है। अतः केपलर के नियमानुसार

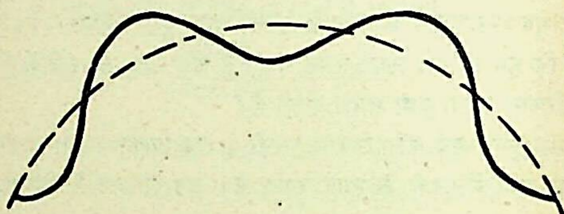


आकृति ९.१

जो बिन्दु दीर्घवृत्तीय कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करता है वह पृथ्वी का केन्द्र नहीं हो सकता। वह बिन्दु वास्तव में पृथ्वी (पृ) तथा चन्द्रमा (च) का गुरुत्व-केन्द्र ग है (चित्र ९.१)। पृथ्वी भी इस गुरुत्व-केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाती जाती है। फलतः पृथ्वी का पथ गुरुत्व-केन्द्र के दीर्घ-वृत्तीय पथ से थोड़ा इधर-उधर होता रहता है (चित्र ९.२)। इसमें गुरुत्व-केन्द्र का पथ बिन्दुमय रेखा द्वारा तथा पृथ्वी के केन्द्र का पथ अविरत रेखा द्वारा प्रदर्शित है। पृथ्वी के इस विचरण को नाप लिया गया है और

1. Centre of mass

तब परिकलन द्वारा यह मालूम कर लिया गया है कि पृथ्वी-केन्द्र का ऐसा पथ होने के लिए गुरुत्व-केन्द्र को पृथ्वी-केन्द्र से २८८० मील दूर होना



आकृति ९.२

चाहिए। और पृथ्वी से चन्द्रमा की कुल दूरी है २,३८,००० मील। अर्थात् परि० (५) के समी० 12 में a_1=२८८० तथा a_1+a_2=२,३८,००० मील है। अतः

$$\frac{m_2}{m_1+m_2}=\frac{a_1}{a_1+a_2}=\frac{1}{82 \cdot 5}$$

$$\frac{m_2}{m_1}=\frac{1}{81 \cdot 5}=0 \cdot 0123$$

अर्थात् चन्द्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान का ८१·५ वाँ भाग मात्र है। इस द्रव्यमान को नापने की और भी विधियाँ हैं जिनमें चन्द्रमा की गति का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करने की आवश्यकता होती है। यह प्रेक्षण और परिकलन अत्यन्त कठिन है, किन्तु इसके परिणाम अधिक यथार्थतापूर्ण हैं।

और चन्द्रमा का आयतन पृथ्वी की अपेक्षा ०·०२०४ होने के कारण उसका घनत्व होगा पृथ्वी की अपेक्षा $\frac{1}{81 \cdot 5} \div \cdot 0204 = 0 \cdot 604$ और जल की अपेक्षा $5 \cdot 53 \times 0.604 = 3 \cdot 33$

पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रमा का घनत्व कम होने का कारण संभवतः यह है कि जिस समय चन्द्रमा पृथ्वी में से टूट कर अलग हुआ था उस समय पृथ्वी का लोहमय भारी भाग पृथ्वी में ही रह गया था और केवल पृष्ठीय हलका भाग ही पृथक् होकर चन्द्रमा के रूप में परिणत हुआ था।

सौर परिवार के अन्य ग्रहों के द्रव्यमान

जिस ग्रह के साथ कोई उपग्रह लगा हुआ हो उसके द्रव्यमान का नाप अत्यन्त सरल है। और इस नाप में यथार्थता भी काफ़ी हो सकती है।

यदि ग्रह का द्रव्यमान P हो, और उसके उपग्रह का परिक्रमण-काल Ts हो तथा ग्रह से उपग्रह की दूरी Ds हो तो समी० (4) की भाँति ही

$$\frac{GP}{D_s^2}\times\frac{4\pi^2 D_s}{T_s^2} \quad \cdots\cdots \quad (7)$$

और इसमें समी० (5) का उपयोग करने से

$$\frac{P}{E}=\frac{4\pi^2 Ds^3}{gTs^2R^2} \quad \cdots\cdots \quad (8)$$

तथा समी० 8 में समी० 6 का भाग देने पर

$$\frac{P}{S}=\left(\frac{D_s}{D}\right)^3\times\left(\frac{T}{T_s}\right)^2 \quad \cdots\cdots \quad (9)$$

यदि सूर्य से पृथ्वी की दूरी D को दूरी का मात्रक (ज्यौतिष मात्रक) मान लिया जाय तथा पृथ्वी के परिक्रमण-काल T (=१ वर्ष) को समय का मात्रक मान लिया जाय तो

$$\frac{P}{S}=\frac{D_s^3}{T_s^2} \quad \cdots\cdots \quad (10)$$

वस्तुतः परि० ५ के समी० (13) के अनुसार इस समीकरण को हमें यों लिखना चाहिए

$$\frac{P+p}{S+E}=\frac{Ds^3}{Ts^3} \quad \cdots\cdots \quad (10\ a)$$

जहाँ p उपग्रह का द्रव्यमान है। किन्तु S की तुलना में E उपेक्षणीय है और पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा को छोड़ कर अन्य समस्त ग्रहों के उपग्रहों के द्रव्यमान p भी ग्रह के द्रव्यमान P की तुलना में उपेक्षणीय ही होते हैं। अतः इस संशोधन की साधारणतः कोई आवश्यकता नहीं होती।

उदाहरण के लिए यहाँ हम मंगल ग्रह के द्रव्यमान का परिकलन करेंगे।

इस ग्रह के दो उपग्रह हैं—फ़ोबोस[1], डीमोस[2]। फ़ोबोस के लिए $D_s=6{\cdot}27 \times 10^{-5}$ ज्यौतिष मात्रक तथा $T_s=8{\cdot}73 \times 10^{-4}$ वर्ष

$$\text{अतः } \frac{P}{S}=\frac{(6{\cdot}27\times10^{-5})^3}{(8{\cdot}73\times10^{-4})^2}=3{\cdot}24\times10^{-7}$$

इसी प्रकार डीमोस के लिए $D_s = 1{\cdot}57\times10^{-4}$ तथा $T_s =3{\cdot}46\times10^{-3}$ वर्ष

$$\therefore \frac{P}{S}=\frac{(1{\cdot}57\times10^{-4})^3}{(3{\cdot}46+10^{-3})^2}=3{\cdot}24\times10^{-7}$$

अर्थात् दोनों ही उपग्रहों द्वारा मंगल सूर्य की अपेक्षा $3{\cdot}24\times10^{-7}$ गुना है। पृथ्वी की अपेक्षा यह द्रव्यमान है 0·108। अर्थात् मंगल का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान का दशमांश मात्र है।

जिन ग्रहों के साथ कोई उपग्रह नहीं होता (यथा बुध और शुक्र) उनका द्रव्यमान नापना कुछ कठिन है। इसके लिए यह जानना आवश्यक होता है कि जब कोई अन्य ग्रह अथवा धूमकेतु ऐसे ग्रह के निकट आ जाता है तो यह उसके पथ में कितनी विकृति उत्पन्न कर देता है। यह नाप कठिन होने पर भी शुक्र के कारण पृथ्वी तथा मंगल की कक्षाओं में जो विकृति होती है उसे नाप कर शुक्र का द्रव्यमान तो काफ़ी अच्छी तरह नाप लिया

1. Phobos 2. Deimos

गया है। किन्तु बुध का द्रव्यमान उतनी यथार्थतापूर्वक नहीं नापा जा सका है।

निम्न सारणी में ग्रहों के द्रव्यमान दिये गये हैं:—

ग्रह	द्रव्यमान (पृथ्वी=१)	घनत्व (जल=१)
बुध	०·३७०	३·७३
शुक्र	०·८२६	५·२१
पृथ्वी	१·०००	५·५३
मंगल	०·१०८६	३·९४
बृहस्पति	३१८·४	१·३४
शनि	९५·२	०·६९
युरेनस (वारुणी)	१४·६	१·३६
नेपट्यून (वरुण)	१७·३	१·३२

उपग्रहों का द्रव्यमान

चन्द्रमा के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि उपग्रह का द्रव्यमान नापना आसान नहीं है। किन्तु जब किसी ग्रह के कई उपग्रह होते हैं तो उनके पारस्परिक आकर्षण के कारण उनके पथ की जो विकृति होती है उसे नाप कर इन उपग्रहों के द्रव्यमान नाप लिये गये हैं। ये बहुत ही छोटे होते हैं। यह बात उनके अत्यल्प व्यास से भी प्रगट है।

क्षुद्र ग्रहों[1] का द्रव्यमान

क्षुद्र ग्रह इतने छोटे आकार के होते हैं कि उनका द्रव्यमान नापना संभव नहीं है। किन्तु अनुमान लगाने के लिए यह मान लिया जाता है कि

1. Asteroids

उनका घनत्व भी पृथ्वी के घनत्व के बराबर ही है। संभवतः घनत्व इससे भी कम ही है। हम देख चुके हैं कि इनका औसत व्यास प्रायः २० मील माना जा सकता है। अतः ऐसे एक लाख क्षुद्र ग्रहों का सम्मिलित आयतन पृथ्वी के आयतन के १/६४०वें भाग से अधिक नहीं है। फलतः उन सबका सम्मिलित द्रव्यमान भी पृथ्वी के १/६४०वें भाग के बराबर ही हो सकता है। संभवतः यह द्रव्यमान और भी कम है। शायद १/२०० वें भाग से अधिक न हो।

धूमकेतु का द्रव्यमान

जब धूमकेतु पृथ्वी अथवा किसी अन्य ग्रह के निकट आ जाता है तब हम देखते हैं कि उसकी कक्षा में ग्रह के आकर्षण के कारण बहुत अधिक परिवर्तन हो जाता है, किन्तु स्वयं ग्रह की गति में कुछ भी परिवर्तन होता दिखाई नहीं देता। यदि कुछ होता हो तो वह अत्यन्त ही सूक्ष्म और उपेक्षणीय होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ग्रह की तुलना में धूमकेतु का द्रव्यमान बहुत ही कम होता है। इस बात को हम दो उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करेंगे।

(१) सन् १७७० में लैक्सैल[1] का धूमकेतु पृथ्वी के इतना निकट आ गया था कि पृथ्वी के आकर्षण के कारण उसके परिक्रमण काल में २।। दिन से भी अधिक की कमी हो गयी थी। किन्तु पृथ्वी के परिक्रमण-काल में एक सैकंड की भी कमी नहीं हुई। यदि धूमकेतु का द्रव्यमान पृथ्वी के १/१३००० वें अंश के बराबर भी होता तो कम से कम एक सेकंड की कमी तो हो ही जाती। अतः उस धूमकेतु का द्रव्यमान इससे भी कम ही था।

(२) सन् १८८६ में ब्रुक्स[2] का धूमकेतु वृहस्पति के पास से निकला था। इस धूमकेतु का परिक्रमण-काल २९ वर्ष से घट कर केवल ७ वर्ष रह

1. Lexel

2. Brooks

गया था। किन्तु बृहस्पति के परिक्रमण काल में जो परिवर्तन हुआ वह २ मिनट से भी कम था। इससे यह परिणाम निकला कि इस धूमकेतु का द्रव्यमान भी पृथ्वी के १/१०००० वें अंश से भी कम था।

अब तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बड़े से बड़े धूमकेतु का द्रव्यमान भी पृथ्वी के द्रव्यमान के दस लाखवें भाग से भी कम होता है। यद्यपि पृथ्वी की तुलना में यह द्रव्यमान इतना नगण्य है तथापि हमारे व्यावहारिक मात्रकों के हिसाब से वह इतना छोटा नहीं है। यदि वह पृथ्वी के $\frac{१}{१०^{१२}}$ वें अंश के बराबर भी हो तो उसका मान ६×१०^{९}=६०० करोड़ टन हो जायगा।

यह बताया जा चुका है कि धूमकेतु का आयतन बहुत ही अधिक होता है। साधारणतः उसके शिर का ही व्यास प्रायः ८०,००० मील होता है और उसकी पूँछ तो करोड़ों मील लम्बी-चौड़ी होती है। अतः यदि उसका द्रव्यमान पृथ्वी से एक लाखवें भाग के बराबर हो तब भी उसके शिर का घनत्व भी हमारी वायु की अपेक्षा भी २-३ लाख गुना कम होगा। अच्छे वायु-पम्प से शून्यीकृत पात्र में भी वायु का घनत्व सम्भवतः इससे अधिक ही रहता है। और कृत्रिम रूप से जितना उच्चतम शून्यक[1] हम उत्पन्न कर सकते हैं उसकी तुलना में भी धूमकेतु की पूँछ का घनत्व बहुत कम होता है।

इस अत्यन्त कम घनत्व का एक प्रमाण यह है कि ये धूमकेतु सर्वथा पारदर्शक होते हैं। उनके शिर तक में से पीछे वाले तारे दिखाई देते रहते हैं। जब १९१० में हेली[2] का धूमकेतु सूर्य के सामने से निकला था तब वह बिलकुल अदृश्य हो गया था और उसके कारण सूर्य-बिम्ब में बहुत अच्छी दूरबीनों से ढूंढ़ने पर भी उसकी उपस्थिति का थोड़ा-सा भी आभास नहीं मिला।

1. Vacuum 2. Hailey

उल्का का द्रव्यमान

उल्का के द्रव्यमान का अनुमान उससे निकली हुई प्रकाश-ऊर्जा से किया जा सकता है। उसकी दूरी, उसकी द्युति या चमक और उसके प्रज्वलन-काल के नाप से इस ऊर्जा का अन्दाज़ा लगाया जाता है। फिर प्रकाशोत्पादक साधारण पार्थिव वस्तुओं से तुलना करके यह अनुमान किया जाता है कि उसकी समस्त यान्त्रिक ऊर्जा का कितना अंश प्रकाश-ऊर्जा के रूप में परिणत हुआ होगा। इससे हमें उसकी गतिज ऊर्जा $1/2mv^2$ का पता लग जाता है। उल्का का वेग v भी उसके फोटो-चित्रों से नापा जा सकता है। और तब उसके द्रव्यमान का अन्दाज़ा हो जाता है।

इस प्रकार ज्ञात हुआ है कि साधारणतः उल्का या टूटते तारे का द्रव्य-मान कुछ थोड़े से मिलीग्राम (१/१००० ग्राम) से अधिक नहीं होता। किन्तु कभी-कभी जो भारी उल्काएँ पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं उनका द्रव्यमान तो कई किलोग्राम तक पाया गया है। ये जब पृथ्वी पर गिरती हैं तब तो उनका प्रकाश इतना तेज़ होता है कि पूर्ण चन्द्रमा की ज्योत्स्ना भी उसके सामने फीकी पड़ जाती है।

यद्यपि ये उल्काएँ इतनी हलकी होती हैं, किन्तु इनमें से जो वास्तव में गिरकर पृथ्वी पर पहुँच जाती हैं उनकी ही संख्या इतनी बड़ी होती है कि प्रतिवर्ष सहस्रों टन नया द्रव्य अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आ जाता है। किन्तु इससे पृथ्वी के दैनिक घूर्णन या वार्षिक परिक्रमण की गति पर कोई भी प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता, क्योंकि पूरी पृथ्वी के द्रव्यमान की तुलना में यह नया द्रव्य बिलकुल उपेक्षणीय है।

युग्म-तारों के द्रव्यमान

(१) दृश्य युग्म[1]—यह पहले बताया जा चुका है कि युग्म-तारे

1. Visual binary

के दोनों तारे पृथ्वी तथा चन्द्रमा के ही समान पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण के कारण एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं। दूरबीन से यह परिक्रमण देखा जा सकता है और न केवल उनका परिक्रमण काल, किन्तु प्रत्येक तारे की दीर्घवृत्तीय कक्षा का दीर्घ अक्ष तथा लघु अक्ष तथा दोनों तारों की माध्य दूरी भी नापी जा सकती है। और यदि ऐसे युग्म-तारे की दूरी ज्योतिष मात्रकों में ज्ञात हो तो दोनों की पारस्परिक दूरी a भी ज्योतिष मात्रकों में ज्ञात हो जाती है।

यदि इस परिक्रमण का कारण गुरुत्वाकर्षण ही है तो स्पष्ट है कि इस पर भी वे ही नियम लागू होंगे जो ग्रह और उपग्रह के पारस्परिक परिक्रमण पर लागू होते हैं। अतः यदि युग्म-तारे में तारों की पारस्परिक माध्य दूरी a ज्योतिष मात्रकों में नापी जाय और उनका परिक्रमण-काल वर्षों में नापा जाय तो इसी परिच्छेद के समी० (10 *a*) के अनुसार

$$\frac{a^3}{T^2}=\frac{m_1+m_2}{S+E}=\frac{m_1+m_2}{S} \quad \text{(सन्निकटतः)} \qquad (11)$$

जहाँ m_1+m_2 युग्म-तारे के दोनों तारों का सम्मिलित द्रव्यमान है और S सूर्य का द्रव्यमान है।

अतः a और T को नाप लेने पर युग्म के दोनों तारों का सम्मिलित द्रव्यमान मालूम हो जाता है किन्तु दोनों तारों के द्रव्यमान अलग-अलग नही मालूम हो सकते। परन्तु यदि इन दो तारों में से एक का भी स्थान किसी अन्य अचल तारे की अपेक्षा विभिन्न समयों पर मालूम हो सके तो युग्म-तारे का गुरुत्व-केन्द्र भी मालूम हो जाता है और दोनों तारों के द्रव्यमान अलग-अलग भी मालूम हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि युग्म के दो तारों में से केवल एक ही तारा दिखाई देता है और दूसरा अदृश्य रहता है। किन्तु उस एक ही तारे की गति के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भी किसी गुरुत्व-केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है। सीरियस[1] तारेके विषय

1. Sirius

में ऐसा ही अनुमान लगाया गया था। बाद में तो दूसरा तारा भी देख लिया गया था। इसकी ज्योति मुख्य तारे की अपेक्षा १/१०००० मात्र है। किन्तु उसका द्रव्यमान मुख्य तारे के द्रव्यमान के २/५वें भाग के बराबर है।

(२) **स्पैक्ट्रमीय युग्म**—ऐसे युग्म के दोनों तारे पृथक् नहीं दिखाई देते। वे इतने पास-पास होते हैं कि दूरबीन उनका विभेदन नहीं कर सकती। अतः ऐसे तारे की परिक्रमण-कक्षा का दूरबीन से अनुमान करना सम्भव नहीं है। किन्तु स्पैक्ट्रम की सहायता से ऐसे तारों के वेग (दृष्टि-दिशा में) बहुत आसानी से नापे जा सकते हैं, क्योंकि डापलर[1] के नियमानुसार इस वेग के कारण स्पैक्ट्रमीय रेखाओं का विस्थापन हो जाता है। यह वेग मील प्रति सेकण्ड जैसे साधारण मात्रकों में प्राप्त हो जाता है।

यदि युग्म के दोनों तारों की ज्योति लगभग बराबर हो तब तो प्रत्येक रेखा के स्थान में दो रेखाएँ दिखाई देने लगती हैं जिनके विस्थापन विपरीत दिशाओं में होते हैं। इससे दोनों तारों के वेग अलग-अलग मालूम हो जाते हैं। और इन वेगों में जो आवर्तकालीन परिवर्तन होते हैं वे भी नाप लिये जाते हैं। इन वेगों का लेखाचित्र खींचने से परिकलन द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि उनकी कक्षाएँ वृत्ताकार हैं या दीर्घ वृत्ताकार, उन कक्षाओं की उत्केन्द्रता[2] कितनी है तथा परिक्रमण-काल कितना है। किन्तु इस स्पैक्ट्रमीय प्रेक्षण से यह नहीं मालूम हो सकता कि दोनों तारों का वास्तविक व्यवधान a कितना है।

इसका कारण यह है कि तारों के कक्षीय समतल का अभिलम्ब साधारणतः दृष्टि-रेखा से कुछ कोण i बनाता है। अतः उपर्युक्त प्रेक्षित वेग तारों का वास्तविक वेग v नहीं होता। वह होता है $v \sin i$। यदि कक्षा तल पर दृष्टि-रेखा अभिलम्बित हो अर्थात् $i=0$ हो तब तो दृष्टि-रेखीय वेग O होगा और स्पैक्ट्रमीय रेखाओं का विस्थापन होगा ही नहीं। अतः हम

1. Doppler 2. Eccentricity

गुरुत्व-केन्द्र से तारों की दूरी a_1 या a_2 नहीं मालूम कर सकते। हमें केवल $a_1 \sin i$ और $a_2 \sin i$ ही मालूम हो सकते हैं। इसलिए हमें समी० (11) को यों लिखना पड़ेगा—

$$\frac{a^3 \sin^3 i}{T^2} = \frac{(a_1+a_2) \sin^3 i}{T^2} = \frac{(m_1+m_2)\sin^3 i}{S} \quad (12)$$

इसमें a तथा T तो हमें स्पैक्ट्रमीय प्रेक्षण से ज्ञात हो जायेंगे। फिर भी जब तक $\sin^3 i$ का मान न मालूम हो तब तक हम m_1+m_2 का मान मालूम नहीं कर सकते। यद्यपि किसी भी विशेष युग्म-तारे के लिए $\sin^3 i$ का मान मालूम नहीं किया जा सकता, फिर भी समस्त युग्म-तारों के लिए $\sin^3 i$ का औसत मान गणित के द्वारा आसानी से ज्ञात हो सकता है। यह औसत मान ०·५९ है। किन्तु छोटे i वाले युग्मों का प्रेक्षण तो सम्भव ही नहीं है। अतः प्रेक्षित युग्मों के लिए $\sin^3 i$ का मान उपर्युक्त मान से कुछ अधिक ही होगा। उसे हम $\frac{2}{3}$ के बराबर समझ सकते हैं।

(३) **ग्रासशील युग्म**—जब युग्मतारा ग्रासशील[1] अथवा ग्रहणकारी हो तो उसकी द्युति के परिवर्तन का लेखाचित्र खींच लिया जाता है। इसे द्युति-वक्र[2] कहते हैं। इस चित्र की आकृति कक्षातल की आनति i पर, दोनों तारों की द्युतियों के अनुपात पर, तथा कक्षाओं की त्रिज्याओं के अनुपात पर अवलम्बित होती है। ऐसी गणितीय युक्तियाँ मालूम कर ली गयी हैं जिनसे द्युतिवक्र प्राप्त हो जाने पर इन सब राशियों के मान ज्ञात हो जाते हैं। और i ज्ञात होने पर प्रेक्षित $(a_1+a_2) \sin i$ के मान से $a=a_1+a_2$ भी ज्ञात हो जाता है। अतः समी० (11) के द्वारा m_1+m_2 का मान मालूम हो जाता है।

और ग्रहण के काल से तारों के व्यास भी मालूम हो जाते हैं। अतः उन तारों के घनत्व का भी परिकलन किया जा सकता है।

1. Eclipsing 2. Light-curve

अनेक युग्म-तारों के द्रव्यमान नापने से यह आश्चर्यजनक परिणाम निकला है कि अधिकतर तारों का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान की ही कोटि का होता है। बहुत ही थोड़े-ऐसे हैं जिन का सूर्य से १०-१२ गुना हो और केवल एक-दो ही ऐसे तारे पाये गये हैं जिनका ६०-७० गुना है। ऐसे तारों की ज्योति और टेम्परेचर भी बहुत अधिक होते हैं।

और प्रायः समस्त ग्रासशील युग्म-तारों का घनत्व सूर्य की अपेक्षा कम पाया गया है। कुछ थोड़े ही ऐसे हैं जिनका घनत्व सूर्य से अधिक हो। महत्तम घनत्व सूर्य से २·६ गुना पाया गया है। किन्तु अधिकतर तारों के घनत्व तो सूर्य के $\frac{१}{१००}$ वें अंश से भी कम हैं और कुछ के तो $\frac{१}{१०^६}$ वें अंश से भी कम हैं। ये सब तारे गैसीय हैं।

द्रव्यमान तथा कांतिमान

परिच्छेद १० में तारों की ज्योति के नाप के द्वारा इस ज्योति के द्योतक कान्तिमान[1] का वर्णन है। और तारे की दूरी ज्ञात होने पर निरपेक्ष कान्तिमान मालूम करने की विधि भी बतायी गयी है। परिच्छेद ७ में यह भी बताया गया था कि अनेक तारों के द्रव्यमान तथा निरपेक्ष कान्तिमान नाप कर उन्हें लेखाचित्र पर अंकित करने से यह ज्ञात होता है कि समस्त तारों के निरूपक बिन्दु एक मसृण वक्र के निकट ही अवस्थित होते हैं। इस वक्र को द्रव्यमान-कान्तिमान वक्र[2] कहते हैं (चित्र ७·९)। ऐसा क्यों होता है, इसकी व्याख्या एडिंगटन[3] ने कर दी है। किन्तु यहाँ हम इसे केवल प्रेक्षण-लब्ध नियम ही के रूप में मान सकते हैं। अतः जो तारे

1. Magnitude
2. Mass-luminosity curve
3. Eddington

युग्म नहीं हैं या जिन युग्मों का परिक्रमण-काल बहुत बडा होने के कारण यथार्थतापूर्वक नहीं नापा जा सकता, उनके द्रव्यमान उपर्युक्त लेखाचित्र के द्वारा मालूम कर लिये जाते हैं।

गुरुत्वीय त्वरण

परिच्छेद ५ के समी० 7 में हम देख चुके हैं कि पृथ्वी के पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण

$$g=\frac{GE}{R^2}$$

इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह या तारे के पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण होगा

$$g'=\frac{GM}{r^2}$$

जहाँ M उस तारे या ग्रह का द्रव्यमान है और r उसके गोले की त्रिज्या।

$$\therefore \frac{g'}{g}=\frac{M/E}{(r/R)^2}$$

मंगल ग्रह के लिए $\frac{M}{E}=0{\cdot}1086$ तथा $\frac{r}{R}=0533$

$$\therefore \frac{g'}{g}=\frac{0{\cdot}1086}{(0{\cdot}533)^2}=0{\cdot}38$$

अर्थात् मंगल पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण पृथ्वी की अपेक्षा ०.३८ गुना है।

चन्द्रमा के लिए

$$\frac{M}{E}=\frac{1}{81{\cdot}5} \text{ तथा } \frac{r''}{R}=0{\cdot}273$$

अतः $$\frac{g}{g}=\frac{0{\cdot}123}{(0{\cdot}273)^2}=0{\cdot}166$$

अर्थात् चन्द्रमा के पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण पृथ्वी की अपेक्षा $\frac{1}{6}$ के लगभग होगा। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जितना भार पृथ्वी पर उठा सकता

है उससे छः गुना अधिक भार वह चन्द्रमा के पृष्ठ पर उतनी ही आसानी से उठा सकेगा।

पलायन वेग[1]

यदि कोई वस्तु अनन्त दूरी से किसी तारे या ग्रह के गुरुत्वाकर्षण के कारण उस तारे या ग्रह पर गिर पड़े तो यह आसानी से प्रमाणित हो सकता है कि उस तारे या ग्रह के पृष्ठ पर पहुँचने पर उसका वेग हो जायगा

$$v=\sqrt{2gR}=\sqrt{\frac{2GM}{R}}$$

जहाँ g=तारे के पृष्ठ पर गुरुत्वीय त्वरण और R तारे की त्रिज्या, M=तारे का द्रव्यमान और G गुरुत्वीय नियतांक। विपरीत इसके यदि उस वस्तु को तारे के पृष्ठ से बाहर की ओर इतने ही वेग से फेंका जाय तो वह तारे के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र को लांघ कर, और इस गुरुत्व बल से मुक्त होकर अनन्ताकाश में निकल भागेगी। अतः इस वेग को पलायन वेग कहते हैं।

पृथ्वी पर g=९८१ है और R=६.३८×१०^{८} सेंमी० है। अतः पृथ्वी पर से पलायन का वेग होगा ११.२ कि०मी० प्रति सैकण्ड=लगभग ७ मील प्रति सैकण्ड=२५,००० मील प्रति घंटा।

आजकल राकेट द्वारा अन्य ग्रहों तक पहुँचने का जो प्रयत्न किया जा रहा है उसमें यह आवश्यक है कि पृथ्वी का पृष्ठ छोड़ते समय राकेट का वेग कम से कम ११.२ कि० मी० प्रति सेकंड हो।

प्रत्येक तारे या ग्रह के लिए अपना-अपना निश्चित पलायन-वेग है। तारों या ग्रहों के गैसीय वाष्पमंण्डल के स्थायित्व या अस्तित्व के सम्बन्ध में यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अणु-गति सिद्धान्त[2] के अनुसार गैस के अणु

1. Velocity of escape 2. Kinetic Theory

वहाँ के टेम्परेचर के कारण निश्चित औसत वेग से इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। किन्तु कुछ अणुओं का वेग इस औसत वेग से बहुत अधिक भी होता है। अतः जिन अणुओं का वेग उक्त पलायन-वेग से अधिक होगा वे निश्चय ही तारे के गुरुत्व का अतिक्रम करके अनन्ताकाश में विलीन हो जायेंगे। यह भी स्पष्ट है कि जिन तारों का द्रव्यमान कम होगा उनके लिए पलायन-वेग भी कम होगा। अतः उनमें से ऐसे अणुओं के निकल भागने की सम्भावना भी अधिक होगी। यही कारण है कि छोटे ग्रहों में से हाइड्रोजन और हीलियम के अत्यन्त वेगवान् अणु निकल गये हैं और पृथ्वी, मंगल, आदि ग्रहों के वायुमण्डल में हाइड्रोजन नहीं है। किन्तु बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों में वे प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

यदि पृथ्वी पर किसी वस्तु को क्षैतिज दिशा में फेंका जाय तो गुरुत्वाकर्षण के कारण उसका पथ पृथ्वी की ओर मुड़ जाता है। जितना ही प्रक्षिप्त वस्तु का वेग अधिक होगा उतनी ही कम इस पथ की वक्रता होगी। यह प्रमाणित करना कठिन नहीं कि यदि यह वेग ८ कि० मी०=५ मील प्रति सैकण्ड=१८,००० मील प्रति घण्टा का हो जाय तो उसके पथ की वक्रता पृथ्वी-पृष्ठ की वक्रता के बराबर हो जायगी। परिणाम यह होगा कि वह वस्तु पृथ्वी पर गिरेगी नहीं और उपग्रह के समान निरन्तर पृथ्वी की परिक्रमा करती रहेगी (यदि वायुमण्डल की रुकावट को हम उपेक्षणीय समझ लें)। जो कृत्रिम उपग्रह हाल में ही आकाश में उड़ाये गये हैं उनमें उपयुक्त ऊँचाई पर पहुँचने पर कम से कम इतना क्षैतिज वेग उत्पन्न कर दिया जाता है।

परिच्छेद १०

तारों की ज्योति[1]

तारों की द्युति[2]

यह तो सभी जानते हैं कि विभिन्न तारों की जो द्युति या चमक नेत्र को दिखाई देती है उसमें बड़ा फरक मालूम पड़ता है। स्थूल रूप से इन द्युतियों का खाली आँख से भी कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। अब से प्रायः २००० वर्ष पहले ही ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस[3] द्वारा ऐसा अन्दाज़ा लगा कर द्युति की अपेक्षा तारों का वर्गीकरण भी कर दिया गया था और प्रायः १००० तारों के ६ वर्ग बना दिये गये थे। सबसे अधिक चमकदार तारे प्रथम वर्ग में रखे गये थे और सबसे मन्द तारे छठे वर्ग में रखें गये थे। अन्य तारे क्रमशः द्वितीय, तृतीय आदि वर्गों में रखे गये थे। जितनी ही अधिक किसी तारे की द्युति थी उतनी ही कम संख्या वाले वर्ग में वह तारा रखा गया था।

किन्तु इससे कहीं अच्छा अनुमान दूरबीन में तारों के प्रतिविम्ब की प्रदीप्ति के नाप से हो सकता है। इसके लिए ज्योतिमापकीय विधि[4] का उपयोग किया जाता है (परिच्छेद २)। या तो किसी विशेष तारे की द्युति को मानक[5] मान कर यह मालूम किया जाता है कि अन्य तारे की द्युति मानक द्युति से

1. Luminosity of Stars
2. Brightness
3. Hipparchus
4. Photometric method
5. Standard

कितनी गुनी है। अधिक यथार्थता के लिए एक कृत्रिम मानक बिन्दु-दीप का निर्माण किया जाता है और दूरबीन में तारे के प्रतिबिम्ब के पास ही इस बिन्दु-दीप का प्रतिबिम्ब भी प्राप्त किया जाता है और तब बिन्दु-दीप से आने वाले प्रकाश को इतना घटाया जाता है कि दोनों प्रतिबिम्ब बराबर प्रदीप्ति के दिखाई देने लगें। प्रकाश को घटाने के अनेक ऐसे उपाय मालूम कर लिये गये हैं जिनके द्वारा यह भी यथार्थतापूर्वक मालूम हो जाता है कि प्रतिबिम्बों की प्रदीप्तियों के सन्तुलन के समय मानक बिन्दु-दीप के प्रकाश का कितना अंश दूरबीन में प्रवेश करता है।

इस प्रकार तारे की आपेक्षिक द्युति तो मालूम हो ही जाती है, किन्तु यह भी मालूम हो सकता है कि तारे से प्रति सैकण्ड कितनी प्रकाश-ऊर्जा[1] हमारी आँख में या दूरबीन के अभिदृश्य में पहुँचती है। अथवा और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में हम यह नाप सकते हैं कि पृथ्वी के एक वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र पर तारे से कितना प्रकाश प्रति सैकण्ड पहुँचता है।

चाक्षुष कांतिमान[2]

इस प्रकार आँख से नापी हुई द्युतियों के क्रम के अनुसार तारों का वर्गीकरण कर दिया गया है और इस क्रम में किसी भी तारे का स्थान व्यक्त करनेके लिए एक संख्या का व्यवहार किया जाता है जिसे तारे का कान्तिमान[3] कहते हैं। ये चाक्षुष कान्तिमान इस प्रकार नियत किये गये हैं कि जिस तारे का कान्तिमान १ हो उसकी द्युति ६ वाले तारे से १०० गुनी अधिक होती है। और बीच वाले कान्तिमान ऐसे होते हैं कि यदि विभिन्न कान्तिमानों द्वारा व्यक्त द्युतियाँ क्रमशः L_1, L_2, $L_3 \cdots L_6$ हों तो

1. Energy of light 2. Visual Magnitude
3. Magnitude

$$\frac{L_1}{L_6}=100 \qquad (1)$$

और $$\frac{L_1}{L_2}=\frac{L_2}{L_3}=\frac{L_3}{L_4}=\frac{L_4}{L_5}=\frac{L_5}{L_6}=100^{1/5}=10^{0\cdot4}=2\cdot5119 \qquad (2)$$

अतः यदि दो तारों के कान्तिमान क्रमशः n तथा m हों तो

$$\frac{Ln}{Lm}=(2.5119)^{(m-n)} \qquad (3)$$

इस सूत्र से परिकलन में सुविधा नहीं होती। अतः लघु गणकों[1] का उपयोग किया जाता है और तब इस सूत्र का रूप हो जाता है—

$$\text{Log}\left(\frac{Ln}{Lm}\right)=(m-n)\ \text{Log}\ 2\cdot5119=0\cdot4\ (m-n)$$

$$\therefore\ m-n=2\cdot5\ \text{Log}\left(\frac{Ln}{Lm}\right) \qquad (4)$$

और यदि मानक तारे का कान्तिमान n=o मान लिया जाय तो

$$m=2\cdot5\ \text{Log}\left(\frac{Lo}{Lm}\right) \qquad (5)$$

इस परिभाषा के अनुसार कान्तिमान में 1, 2, 3 आदि की वृद्धि होने से तारे की द्युति क्रमशः 2·51, 6·30, 15·84, 39·8, 100, 251·2 गुनी कम हो जाती है। ये संख्याएँ क्रमशः 2·5119, $(2\cdot5119)^3$ $(2\cdot5119)^3$,..... आदि हैं।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि 0 कान्तिमान वाला मानक तारा ही सबसे अधिक द्युति वाला होता है। ये कातिन्मान ऋणात्मक संख्याएँ

1. Logarithms

भी हो सकती हैं। –१ कान्तिमात्त वाला तारा 0 कान्तिमान वाले तारे की अपेक्षा २·५१ गुनी अधिक द्युति वाला होगा, और –२ कान्तिमान वाला तारा ६·३० गुनी अधिक द्युति वाला होगा।

इसके अतिरिक्त कांतिमान भिन्नात्मक[1] भी हो सकते हैं—यथा १·२७, २·३४ इत्यादि। इन संख्याओं का अर्थ यह है कि

$$\frac{Lo}{L1{\cdot}27} = (2\ 5119)^{1\ 27}, \frac{Lo}{L{\cdot}234} = (2{\cdot}5119)^{2{\cdot}34}$$

इस प्रकार ज्योतिमापकीय विधि से हम तारों के कान्तिमानों का अन्तर m – n तो नाप सकते हैं, किन्तु जब तक किसी विशेष तारे को मानक मान कर उसके कांतिमान को 0 नियत न कर दें तब तक किसी भी तारे का कान्तिमान निर्दिष्ट नहीं हो सकता। आजकल जो मानक सर्वमान्य हो गया है उसके अनुसार विभिन्न खगोलीय पिंडों के कान्तिमान निम्न प्रकार हैं—

	कान्तिमान
ऐल्डीबरन[2], ऐल्टेयर[3]	१
ध्रुवतारा[4]	२
कैपेला[5]	०·२१
सीरियस[6]	—१·५८
शुक्र ग्रह (पूर्ण कला)	—४·३
चन्द्रमा (पूर्ण कला)	—१२·५
सूर्य	—२६·७

1. Fractional
2. Aldebaran
3. Altair
4. Pole star
5. Capella
6. Sirius

फोटोग्राफी कांतिमान तथा वर्णांक

तारों की द्युति का माप फोटोग्राफ़ी से भी किया जा सकता है। किन्तु इस नाप का परिमाण चाक्षुष नाप के परिमाण से भिन्न होगा क्योंकि फ़ोटो के प्लेट की सुग्राहिता नेत्र की अपेक्षा लाल रंग के प्रकाश के लिए कम और नीले के लिए अधिक होती है। जो लाल तारे आँख को काफ़ी चमकदार दिखाई देते हैं उनका चित्र फ़ोटो के साधारण प्लेट पर आता ही नहीं। किन्तु नीले तारे जो नेत्र को अत्यन्त मन्द द्युति वाले दिखाई देते हैं वे फ़ोटो में बहुत अधिक द्युति वाले मालूम पड़ते हैं। फिर भी फोटोग्राफ़ी ज्योतिमापन के लिए मानक ऐसा निर्धारित कर लिया गया है कि जिन तारों का चाक्षुष कान्तिमान ६ हो उनका फ़ोटोग्राफ़ी कान्तिमान भी ६ ही रहता है। अन्य तारों के इन दोनों प्रकार के कान्तिमानों में फ़रक रहता है। इस फ़रक को तारे का वर्णांक[1] कहते हैं। अर्थात् यदि किसी तारे के चाक्षुष तथा फ़ोटोग्राफ़ी कान्तिमान क्रमश: M_v तथा M_p हों तो उसका वर्णांक

$$I = M_p - m_v \qquad (6)$$

इस वर्णांक के द्वारा तारे के रंग का अच्छा अनुमान हो जाता है। लाल तारों के लिए I धन-चिह्नीय[2] होता है और नीले तारों के लिए ऋण चिन्हीय। I का मान प्राय: ०.३ और +२.० के बीच में ही रहता है।

ऊष्मीय कांतिमान[3]

इसी प्रकार तारे की पूर्ण विकिरण ऊर्जा के नाप के द्वारा जो कान्तिमान प्राप्त किये जाते हैं उन्हें ऊष्मीय कान्तिमान कहते हैं तथा ऊष्मीय और चाक्षुष कान्तिमानों के अन्तर को तारे का ऊष्मांक[4] कहते हैं।

1. Colour index
2. Positive
3. Radiometric magnitude
4. Heat index

निरपेक्ष कांतिमान[1]

इस प्रकार नापे हुए कान्तिमान हमें केवल उसी द्युति का ज्ञान कराते हैं जो हमें नेत्र से दिखाई देती है या फ़ोटो के प्लेट पर अंकित होती है। किन्तु इससे हमें यह पता नहीं चलता कि तारे की वास्तविक ज्योति[2] कितनी है अर्थात् उसके विम्ब से कितना प्रकाश प्रति सेकण्ड निकलता है। इसका कारण यह है कि तारे हम से विभिन्न दूरियों पर स्थित हैं। यह हो सकता है कि किसी तारे की ज्योति तो कम हो, किन्तु वह हमारे अधिक निकट हो। ऐसी अवस्था में उसकी द्युति अधिक मालूम दे सकती है। प्रकाश-विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि प्रकाश की तीव्रता दूरी के साथ घटती जाती है और वह भी उत्क्रम वर्ग नियम[3] के अनुसार अर्थात् इस हिसाब से कि दूरी दुगुनी होने पर तीव्रता चौथाई रह जाती है और दूरी तीन गुनी होने पर तीव्रता घट कर $\frac{1}{9}$ मात्र रह जाती है। अतः तारों की ज्योतियों की तुलना तब ही हो सकती है जब हमें यह मालूम हो कि यदि समस्त तारों को बराबर दूरी पर रख दिया जाय तो उनकी द्युतियों के मान अथवा उनके कान्तिमान क्या-क्या होंगे। यदि तारे की वास्तविक दूरी d प्रकाश वर्ष तथा प्रेक्षित द्युति *Lm* मालूम हो और यदि उपर्युक्त मानक दूरी d_0 प्रकाश वर्ष हो तथा उतनी दूर से उस तारे की द्युति L दिखाई दे तो

$$\frac{L}{Lm} = \frac{d_0^2}{d^2} \qquad (7)$$

और यदि उसका प्रेक्षित कान्तिमान m हो और उसे मानक दूरी पर रखने पर उसका कान्तिमान M हो तो

$$\frac{L}{Lm} = (2.5112)^{(m-M)} \qquad \text{(समी॰ 4 से)}$$

1. Absolute Magnitude 2. Luminosity
3. Inverse square law

अतः $$m-M=2.5 \log\left(\frac{L}{Lm}\right)=5 \log\left(\frac{d}{d_0}\right) \quad (8)$$

इस प्रकार परिकलित कान्तिमान M उस तारे का निरपेक्ष कान्तिमान कहलाता है। इसके लिए मानक दूरी d_o=१० पारसैक=३२.६ प्रकाश वर्ष मान ली गयी है। इस दूरी पर तारे का लम्बन p_0=O·"१ होता है।

अतः $$M=m+5 \log 32{\cdot}6-5 \log d$$
$$=m+7{\cdot}566-5 \log d \quad (9)$$

इसी को तारे के लम्बन p" के द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है।

$$M=m-\log p_0+\log p$$
$$=m+5+5 \log p \quad (10)$$

उदाहरण के लिए तारे सीरियस का प्रेक्षित कान्तिमान—१·५८ है, और उसकी दूरी ८.७८ प्रकाश वर्ष है, तथा लम्बन O"·३७१ है। अतः उसका निरपेक्ष कान्तिमान उपर्युक्त दोनों ही सूत्रों से +१·२७ निकलता है। इसी प्रकार सूर्य का निरपेक्ष कान्तिमान +४·८५ पाया गया है।

दानव तथा वामन तारे—परिच्छेद ८ में हम बता चुके हैं कि बहुत विस्तार वाले तारे दानव तारे[1] कहलाते हैं और बहुत छोटे विस्तार वाले तारे वामन कहलाते हैं। दानव तारों का निरपेक्ष कान्तिमान बहुत बड़ी ऋणात्मक संख्या होती है। अर्थात् उनकी ज्योति बहुत अधिक होती है। वामन[2] तारों का निरपेक्ष कान्तिमान बहुत बड़ी धनात्मक संख्या होती है। अर्थात् उनकी ज्योति कम होती है। जिन तारों की ज्योति अत्यधिक होती है वे अति दानव[3] कहलाते हैं। वास्तव में पहले यह नामकरण तारों

1. Giant
2. Dwarf
3. Super-giants

की ज्योति की दृष्टि से ही किया गया था। किन्तु बाद में पता चला कि तारोंके व्यास या विस्तार की दृष्टि से भी यह नामकरण बहुत कुछ ठीक ही है।

तारे की नैज ज्योति

ऊपर तारे से आने वाले जिस प्रकाश के नाप का वर्णन किया गया है वह तारे के पूरे विम्ब से निकलने वाला समस्त प्रकाश है। किन्तु इससे यह पता नहीं चलता कि तारे का पृष्ठ वास्तव में कितना उद्दीप्त है। अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि उसके पृष्ठ के प्रत्येक वर्ग सें० मी० में से कितना प्रकाश निकलता है। प्रकाश की इस मात्रा को तारे की नैज ज्योति[1] कहते हैं। स्पष्ट है कि यदि तारे के बिम्ब का क्षेत्रफल A वर्ग सें० मी० हो और उस की नैज ज्योति L_0 हो तो पूरे तारेसे निकलने वाले प्रकाश की मात्रा अर्थात् तारे की ज्योति होगी

$$L = L_0 \times A \qquad (1)$$

इस नैज ज्योति का माप तारे के विम्बका क्षेत्रफल जाने बिना प्रत्यक्षतः नहीं हो सकता। किन्तु तारे का टेम्परेचर ज्ञात होने पर परिकलन द्वारा इसका मान आसानी से मालूम हो सकता है (परिच्छेद ११)।

कांतिमान तथा तारे की दूरी और द्रव्यमान का सम्बन्ध—ये सम्बन्ध परिच्छेद ७ तथा परिच्छेद ९में बताये जा चुके हैं और निरपेक्ष कान्तिमान के नाप से तारे का लम्बन (या दूरी) तथा तारे का द्रव्यमान जानने की विधि भी बतायी गयी है। उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

1. Intrinsic luminosity

परिच्छेद ११

तारे का टेम्परेचर

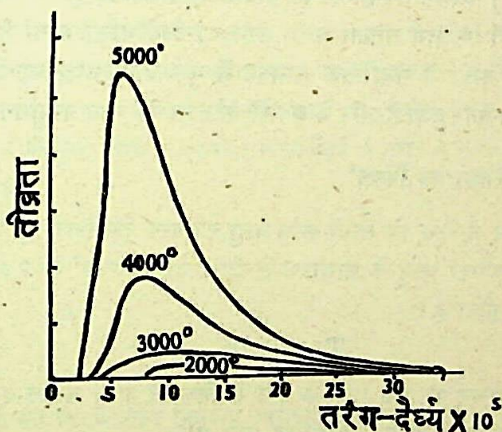
ऊष्मीय विकिरण[1]

यह तो सभी जानते हैं कि जब कोई वस्तु गरम हो जाती है तो उसमें से गरमी उसी तरह चारों ओर दूर-दूर तक फैलती है जैसे दीपक में से प्रकाश फैलता है। इसे ऊष्मीय विकिरण कहते हैं। जब तक टेम्परेचर ज्यादा ऊँचा नहीं होता तब तक तो यह विकिरण अदृश्य रहता है और हमें उसका अनुभव हमारी चमड़ी के गरम होने से ही होता है। किन्तु ज्यों-ज्यों टम्परेचर ज्यादा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इस विकिरण की मात्रा भी बढ़ती जाती है और उसमें से क्रमशः लाल, पीला और अन्त में श्वेत प्रकाश भी निकलने लगता है। वास्तव में अदृश्य ऊष्मीय विकिरण में और इस प्रकाश में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों ही विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें हैं। भेद केवल इन तरंगों की लम्बाई अर्थात् तरंग-दैर्घ्य[2] का है। प्रकाश की तरंगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और उनमें भी लाल, पीले, हरे, नीले रंग के प्रकाश की तरंगें उत्तरोत्तर छोटी होती हैं। लाल प्रकाश की तरंगों से बड़ी अदृश्य तरंगें अवरक्त[3] कहलाती हैं। नीले, बैंगनी प्रकाश की तरंगों से छोटी तरंगें भी अदृश्य होती हैं। उन्हें परा-बैंगनी[4] तरंगें कहते हैं।

1. Heat Radiation
2. Wave-length
3. Infra-red
4. Ultra-violet

ज्यों-ज्यों उत्तप्त-वस्तु का टेम्परेचर वढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसके विकिरण में क्रमशः छोटी तरंगों की मात्रा बढ़ती जाती है।

विकिरण और प्रकाश की उत्पत्ति का सरलतम कारण टेम्परेचर की वृद्धि ही है। इसमें न तो कोई रासायनिक क्रिया होती है और न कोई वैद्युत क्रिया। और ठंडी अवस्था में जो वस्तुएँ जितनी ही अधिक काली होती हैं उनमें से गरम होने पर उतनी ही अधिक ऊर्जा का विकिरण होता है। अतः पूर्णतः काली वस्तु को हम आदर्श विकीर्णक[1] समझ सकते हैं। ऐसी वस्तु को कृष्ण-वस्तु[2] कहते हैं। अतः ऊष्मीय विकिरण का एक नाम कृष्ण-वस्तु-विकिरण भी है।



आकृति ११.१

ऐसे विकिरण का अध्ययन करने से ज्ञात हो गया है कि ऊष्मीय विकिरण में बहुत छोटी से लेकर बहुत बड़ी तक अगणित (सिद्धान्ततः अनन्त

1. Perfect radiator 2. Black body

संख्यक) तरंगें सम्मिलित रहती हैं। इस विकिरण का जो स्पैक्ट्रम प्राप्त होता है वह अनन्त विस्तृत अखंड[1] स्पैक्ट्रम होता है। किन्तु विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों के प्रकाश की तीव्रताएँ[2] वरावर नहीं होतीं। चित्र ११·१ में तरंग-दैर्घ्य और तीव्रता का सम्वन्ध लेखाचित्र के द्वारा प्रदर्शित है। इससे प्रगट है कि तीव्रता पहले तो तरंग-दैर्घ्य के साथ-साथ बढ़ती जाती है, किन्तु एक महत्तम मान को प्राप्त करने के बाद यह तीव्रता घटती जाती है। कृष्ण-वस्तु के विभिन्न टेम्परेचरों के लिए कई वक्र चित्र में दिखाये गये हैं।

इन वक्रों से यह प्रगट होता है कि ज्यों-ज्यों कृष्ण वस्तु का टेम्परेचर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों

(१) प्रत्येक तरंग-दैर्घ्य की तीव्रता वढ़ती जाती है;

(२) महत्तम तीव्रता वाली तरंग का दैर्घ्य घटता जाता है।

इन वातों के सैद्धान्तिक अध्ययन से मुख्यतः तीन महत्त्वपूर्ण नियमों का आविष्कार हुआ है और वे प्रयोगों के द्वारा भी सत्य प्रमाणित हुए हैं।

(१) स्टीफ़न का नियम[3]

मान लीजिए कि किसी कृष्ण वस्तु का परम टेम्परेचर[4] T° है। यह परम टेम्परेचर वस्तु के साधारण सेन्टीग्रेड टेम्परेचर t° में २७३ जोड़ने से प्राप्त होता है।

$$T = t + 273 \tag{1}$$

इस टेम्परेचर पर उस वस्तु के पृष्ठ से निकलने वाली समस्त तरंग-दैर्घ्यों की विकिरण ऊर्जा का सम्मिलित मान होगा

$$E = \sigma T^4 \text{ अर्ग प्रतिवर्ग सें॰ मी॰ प्रति सैकंड} \tag{2}$$

जहां σ एक नियतांक है और उसका मान 5.72×10^{-5} है।

1. Continuous
2. Intensity
3. Stefan's Law
4. Absolute temperature

(२) वीन का नियम[1]

कृष्ण-वस्तु के विकिरण में महत्तम तीव्रतावाले तरंग-दैर्घ्य का मान होता है—

$$\lambda_m=\frac{0{\cdot}289}{T} \text{ सें॰ मी॰} \qquad (3)$$

$$\text{अर्थात्}\ \lambda_m \times T=0{\cdot}289$$

(३) प्लान्क का नियम[2]

यदि किसी भी उत्तम कृष्ण-वस्तु के स्पैक्ट्रम के किसी भी संकीर्ण अंश (अर्थात् तरंग-दैर्घ्य λ से लेकर $\lambda+d\lambda$ तक के अंश) की तीव्रता नाप ली जाय (परिच्छेद २) और उससे यह परिकलन कर लिया जाय कि उस वस्तु के पृष्ठ से ऐसी कितनी ऊर्जा E_λ प्रति सैकंड प्रति वर्ग सें॰ मी॰ विकीर्ण होती है जिसका तरंग-दैर्घ्य λ तथा $\lambda+d\lambda$ के बीच का हो तो

$$E_\lambda=\frac{C_1\lambda^{-5}}{\frac{C_2}{E\lambda T-1}} \qquad (4)$$

प्लान्क ने यह नियम अपने विख्यात क्वान्टम-सिद्धान्त[3] के द्वारा प्राप्त किया था। इसमें नियतांक C_1 और C_2 के मान क्रमशः 3.71×10^{-5} तथा 1.435 हैं और $e=2.718$ है जो प्रकृत लघुगणकों[4] का आधार है।

1. Wien's Law
2. Planck's Law
3. Quantum Theory
4. Natural Logarithms

वस्तुतः इन तीनों नियमों में प्लान्क का नियम ही मुख्य है क्योंकि इसी नियम में से अन्य दोनों नियम भी परिकलन द्वारा प्राप्त हो जाते हैं।

यद्यपि कृष्ण-वस्तु के अतिरिक्त अन्य साधारण वस्तुओं का विकिरण इन नियमों का ठीक ठीक पालन नहीं करता, फिर भी उनके विकिरण के सम्बन्ध में भी इन नियमों से बड़ी सहायता मिलती है। सूर्य और तारों के विकिरण का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनके विकिरण का तरंग-दैर्घ्य-वितरण वक्र भी लगभग कृष्ण-वस्तु के चित्र ११.१ में प्रदर्शित वक्र के ही समान होता है। इस चित्र में सूर्य का वक्र अखंड रेखा द्वारा दिखाया गया है। अतः सन्निकटतः सूर्य को तथा अन्य तारों को भी हम कृष्ण-वस्तु तुल्य ही समझ सकते हैं। और इसलिए इन तीनों नियमों के उपयोग से हम सूर्य तथा तारों का टेम्परेचर भी नाप सकते हैं। कारखानों की भट्टियों के उच्च टेम्परेचर भी इन्हीं नियमों की सहायता से नापे जाते हैं।

सूर्य का टेम्परेचर

(१) **स्टीफ़न के नियम से**—हम यह आसानी से नाप सकते हैं कि पृथ्वी के प्रतिवर्ग सें० मी० क्षेत्र पर अभिलम्बतः आपतित सूर्यकिरणों से प्रति मिनट कितनी ऊर्जा (समस्त तरंग-दैर्घ्यों की सम्मिलित ऊर्जा) पड़ती है। इसे सौर नियतांक[1] कहते हैं। इसको नापने के लिए जल से भरा तांबे का एक छोटा-सा पात्र लिया जाता है और उसके एक समतल पृष्ठ को काजल से काला कर दिया जाता है ताकि वह छोटी-बड़ी समस्त तरंगों के प्रकाश को पूर्णतः अवशोषित कर ले। इस काले समतल पृष्ठ पर सूर्य की किरणें अभिलम्बतः[2] डाली जाती हैं और जल के टेम्परेचर की वृद्धि को नापकर यह मालूम कर लिया जाता है कि उस पृष्ठ पर कितनी ऊर्जा प्रति

1. Solar constant 2. Normally

सेकंड पहुँचती है। इस नाप के लिए कई अन्य प्रकार के यंत्र भी बना लिये गये हैं।

किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी का वायुमंडल बहुत-सी ऊर्जा का अवशोषण कर लेता है—विशेषकर परा-बैंगनी प्रकाश का। अतः उपर्युक्त प्रयोग में सूर्य की जितनी ऊर्जा जल में पहुँचनी चाहिए थी उससे कम पहुँचती है। यह कमी कितनी होती है इसे नापने की युक्ति भी मालूम कर ली गयी है और इसके द्वारा संशोधन करके सौर नियतांक का वास्तविक मान १·९३८ कलरी प्रति मिनट प्रति वर्ग सें० मी० प्राप्त हुआ है। इसे ऊर्जा के मात्रक अर्गों में व्यक्त करने से यह $१·३५\times१०^६$ अर्ग प्रति सैकंड प्रति वर्ग सें० मी० होता है।

इन संख्याओं से यह समझना ज़रा कठिन है कि सूर्य से पृथ्वी पर कितनी ऊर्जा आती है। यांत्रिक शक्ति का साधारण मात्रक अश्वशक्ति[1] है जो $7·46\times10^9$ अर्ग प्रति सेकंड के बराबर होता है। अतः पृथ्वी पर पड़ने वाली सूर्य की ऊर्जा का मान $\frac{1·35\times10^6}{7·46\times10^9}$ अश्वशक्ति प्रति वर्ग सें० मी०

=1·81 अश्वशक्ति प्रतिवर्ग मीटर
=46,90,000 अश्वशक्ति प्रति वर्गमील है।

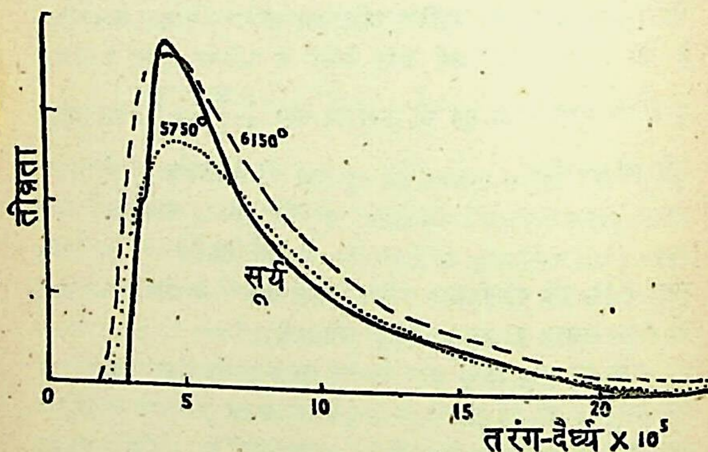
स्पष्ट है कि यदि इस विशाल शक्ति का हम उद्योगों में उपयोग कर सकें. तो मनुष्य-समाज का बहुत लाभ हो सकता है।

यदि यह मान लिया जाय कि सूर्य का विकिरण समस्त दिशाओं में एक समान है तो यह जानना आसान है कि समस्त सूर्य-बिम्ब से कितनी ऊर्जा प्रति मिनट समस्त दिशाओं में उत्सर्जित होती है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी R हो तो, R त्रिज्या वाले गोले के पृष्ठ का क्षेत्रफल होगा $4\pi R^2$। इस

1. Horse-power

क्षेत्रफल को सौर नियतांक से गुणा करने से यह ऊर्जा ज्ञात हो जायगी। R=9,30,00,000 मील $=1\cdot 49\times10^{13}$ सें० मी० और सौर नियतांक $=1\cdot 35\times10^{6}$। अतः सूर्य से उत्सर्जित समस्त ऊर्जा $=3.8\times10^{33}$ अर्ग प्रति सैकंड है। इसमें सूर्य-पृष्ठ के क्षेत्रफल $6\cdot 06\times10^{22}$ वर्ग सें० मी० का भाग देने से यह मालूम हो जाता है कि सूर्य-पृष्ठ के प्रति वर्ग सें० मी० से $6\cdot 25\times10^{10}$ अर्ग ऊर्जा प्रति सैकंड निकलती है। यह लगभग 84000 अश्वशक्ति प्रतिवर्ग मीटर के बराबर है।

अब स्टीफ़न के नियम का उपयोग करके हम तुरन्त जान सकते हैं कि सूर्य का टेम्परेचर कितना है। यह टेम्परेचर ५७५०° (परम) निकलता है।



आकृति ११.२

(२) वीन के नियम से—सूर्य के स्पैक्ट्रम में महत्तम तीव्रतावाला तरंग-दैर्घ्य $\lambda_m=4\cdot 7\times10^{-5}$ सें० मी० पाया गया है। अतः

$$T = \frac{0 \cdot 289}{\lambda m} = \frac{0 \cdot 289}{4{\cdot}7 \times 10^{-5}} = 6150^{\circ} \text{ (परम)}$$

(३) प्लान्क के नियम से—सूर्य के स्पैक्ट्रम से प्राप्त तरंग-दैर्घ्य-वितरण वक्र (चित्र ११ ˙ २) की तुलना विभिन्न टेम्परेचरों पर प्राप्त कृष्ण-वस्तु के तरंग-दैर्घ्य वितरण-वक्रों से करने से ज्ञात होता है कि स्पैक्ट्रम के लाल प्रदेश में और बैंगनी प्रदेश में भी वह ५८००° वाले वक्र के समान है। किन्तु, हरे प्रदेश में तरंग-दैर्घ्य λ=५×१०⁻⁵ सें० मी० पर सूर्य के प्रकाश की तीव्रता ६१५०° वाली कृष्ण-वस्तु से भी थोड़ी अधिक है। वायु-मंडल के अवशोषण का संशोधन करके विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों की तीव्रता का अध्ययन करने से निश्चित हो जाता है कि सूर्य का माध्य टेम्परेचर लगभग ६०००° है।

स्पष्ट है कि तीनों ही नियमों से नापे हुए टेम्परेचर में इतना कम अन्तर है कि हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि सूर्य के टेम्परेचर को ६०००° मानने में ५% से अधिक भूल की संभावना नहीं है।

अव तो नापने के यंत्रों की उत्कृष्टता इतनी बढ़ गयी है कि हम सूर्य के तथा ग्रहों के विभिन्न भागों के टेम्परेचर (ताप) भी अलग-अलग नाप सकते हैं। ऐसे नापों से ज्ञात हो गया है कि सूर्य विम्व के केन्द्रीय भाग का टेम्परेचर ६३००° है और क्रमशः घटते-घटते विम्व के किनारों के पास टेम्परेचर ५०००° मात्र रह जाता है। सूर्य में जो धब्बे[1] दिखाई देते हैं उनमें तो टेम्परेचर और भी कम है और औसत रूप से शायद ४०००° से अधिक नहीं है। प्रकाश मंडल[2] के चारों ओर जो द्रव्य वर्ण-मंडल[3] और किरीट[4] के रूप में है (परिच्छेद ३) उसका टेम्परेचर भी ३०००° के लगभग है। इतने ऊँचे टेम्परेचर पर कोई भी द्रव्य ठोस अथवा द्रव अवस्था में

1. Sunspots
2. Photosphere
3. Chromosphere
4. Corona

नहीं रह सकता। अतः सूर्य में वह अवश्य ही वाष्परूप में परिणत हो गया होगा।

तारों का टेम्परेचर

(१) स्पैक्ट्रमीय ऊर्जा-वितरण-वक्र से—सूर्य का विकिरण सन्निकटतः कृष्ण-वस्तु के ही समान होता है। इस बात से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि अन्य तारे भी कृष्ण-वस्तु के ही समान विकिरण उत्सर्जित करते हैं। अतः उनका टेम्परेचर भी उपयुक्त नियमों के ही द्वारा नापा जा सकता है। आधुनिक उत्कृष्ट यंत्रों से तारों के स्पैक्ट्रम में विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों की ऊर्जाएँ यथार्थतापूर्वक नापी जा सकती हैं। और उनके स्पैक्ट्रमीय ऊर्जा-वितरण वक्रों की तुलना कृष्ण-वस्तु के वक्रों से करके तारे का टेम्परेचर ठीक वैसे ही नापा जा सकता है जैसे सूर्य का। इस नाप के कुछ परिणाम निम्न सारणी में दिये गये हैं :—

तारा	टेम्परेचर
बीटा ओरियोनिस (β Orionis)	१६०००
ऐल्फ़ा लायरी (α Lyrae)	१४०००
ऐल्फ़ा कैन मैजोरिस (α Can. majoris)	११०००
ऐल्फ़ा कैन माइनारिस (α Can. minoris)	८०००
ऐल्फ़ा आरिगी (α Aurigae)	५८००
ऐल्फ़ा टौरी (α Tauri)	३०००
ऐल्फ़ा ओरियोनिस (α Orionis)	२६००
बीटा पेगासी (β Pegasi)	२८५०
ऐल्फ़ा हरक्यूलिस (α Hercules)	२५००

(२) वर्णांक से[1]—परिच्छेद १० में बताया गया था कि तारे के फ़ोटोग्राफ़ी तथा चाक्षुष कांतिमानों के अन्तर को वर्णांक कहते हैं। यद्यपि इन

1· Colour index

कांतिमानों के नाप में अनेक तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश सम्मिलित होता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि चाक्षुष कांतिमान के नाप में प्रभावकारी तरंग दैर्घ्य[1] ५.२९×१०⁻⁵ सें० मी० होता है। और फ़ोटोग्राफ़ी कांतिमान के लिए प्रभावकारी तरंग दैर्घ्य ४·२५×१०⁻⁵ सें० मी० होता है। अतः प्लान्क के नियम तथा निरपेक्ष कांतिमान के सूत्रों से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि

$$Mv = \frac{29{,}500}{T} - 5 \log R - 0{\cdot}08 \qquad (5)$$

और $$Mp = \frac{36{,}700}{T} - 5 \log R - 0{\cdot}72 \qquad (9)$$

इन समीकरणों में Mp तथा *Mv* तारे के फ़ोटोग्राफ़ी तथा चाक्षुष निरपेक्ष कांतिमान हैं, T तारे का टेम्परेचर है तथा R तारे के विम्ब की त्रिज्या है (सूर्य की त्रिज्या को मात्रक मान कर)। अतः वर्णांक

$$I = Mp - Mv = \frac{7200}{T} - 0{\cdot}64 \qquad (7)$$

या $$T = \frac{7200}{I + 0{\cdot}64} \qquad (8)$$

तारे का वर्णांक मालूम होने पर इस सूत्र से उसका टेम्परेचर तुरन्त ज्ञात हो जाता है।

(३) ऊष्मांक[2] से—इसी प्रकार तारे के ऊष्मांक को नाप कर भी उसका टेम्परेचर नापा जा सकता है। इसमें स्टीफ़न के नियम का उपयोग किया जाता है और निम्नलिखित सूत्र प्राप्त किया गया है।

$$\text{ऊष्मांक} = Mp - Mv = 10 \log T + \frac{29{,}500}{T} - 42{\cdot}1 \qquad (9)$$

इसमें *Mp* तारे का ऊष्मीय निरपेक्ष कांतिमान है।

1. Effective wave-length 2. Heat-index

(४) कांतिमान तथा कोणीय व्यास से—जिस तारे का निरपेक्ष चाक्षुप कांतिमान *Mv* ज्ञात हो और जिसकी त्रिज्या R नाप ली गयी हो उसका टेम्परेचर उपर्युक्त समी०$_5$ से ज्ञात हो जाता है। किन्तु यदि तारे की दूरी ज्ञात न हो तो निरपेक्ष कांतिमान नहीं मालूम हो सकता। उस दशा में प्रेक्षित कांतिमान *Mv* और तारे के कोणीय व्यास d″ के नाप से भी तारे का टेम्परेचर मालूम हो सकता है। क्योंकि तव यह आसानी से प्रमाणित हो सकता है कि

$$T=\frac{5900}{3{\cdot}05 \div 0.20Mv = \log d''} \qquad (10)$$

इन चारों विधियों से नापे हुए टेम्परेचरों में वहुत अन्तर नहीं निकलता। इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि तारों का विकिरण कृष्ण-वस्तु के विकिरण के समान ही होता है।

ग्रहों के टेम्परेचर

(१) उपर्युक्त विधि से ग्रहों तथा चन्द्रमा के टेम्परेचर भी नापे जा सकते हैं। किन्तु मुश्किल यह है कि इनके प्रकाश तथा विकिरण का अधिकांश तो सूर्य का ही परावर्तित प्रकाश है। जव तक इसे पृथक् न कर दिया जाय तव तक हमें यह नहीं मालूम हो सकता कि स्वयं ग्रह का टेम्परेचर-विकिरण कितना है। सौभाग्य से यह काम सरल है क्योंकि शुद्ध जल में इस परावर्तित प्रकाश का अवशोषण नहीं होता, किन्तु स्वयं ग्रह के टेम्परेचर के कारण जो लम्वे तरंग-दैर्घ्य का अवरक्त विकिरण[1] होता है वह जल में अवशोपित हो जाता है। इसलिए हमें इनकी प्रकाश-ऊर्जा को दो वार नापना पड़ता है—पहले समस्त ऊर्जा को और वाद में जल भरे पारदर्शक पात्र में से पारगमित ऊर्जा को। इससे तुरन्त पता चल

1. Infra-red

जाता है कि कुल विकिरण का कितना अंश परावर्तित है और कितना स्वयं ग्रह से आया है। और तब उपर्युक्त तीनों नियमों के द्वारा ग्रह का टेम्परेचर तुरन्त ज्ञात हो जाता है। प्लान्क के नियम का उपयोग करने के लिए स्पैक्ट्रम का अवरक्त प्रदेश (तरंग-दैर्घ्य $1\cdot0\times10^{-3}$ से $1\cdot4\times10^{-3}$ सें० मी० तक) सबसे अधिक उपयुक्त है क्योंकि पृथ्वी का वायुमंडल इस विकिरण का अवशोषण नहीं करता।

(२) ग्रहों के टेम्परेचर को जानने की एक सरल सैद्धान्तिक विधि भी है। यह इस बात पर अवलम्बित है कि ग्रहों का टेम्परेचर ऐसा होना चाहिए कि उसके टेम्परेचर-विकिरण की ऊर्जा उस ग्रह पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा के बराबर हो जाय।

हम जानते हैं कि सूर्य से पृथ्वी पर प्रति सैकंड पहुँचने वाली ऊर्जा का मान $1\cdot35\times10^{6}$ अर्ग प्रतिवर्ग सें० मी० है। अतः पृथ्वी से R गुनी दूरी पर जो ग्रह होगा उस पर प्रति सैकंड पहुंचने वाली सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा उत्क्रम वर्ग नियम[1] के अनुसार होगी।

$$\frac{1.35\times10^{6}}{R^{2}} \text{ अर्ग प्रतिवर्ग सें० मी०}$$

और यदि ग्रह का टेम्परेचर T° (परम) हो तो स्टीफ़न के नियमानुसार उस ग्रह से प्रति सैकंड उत्सर्जित विकिरण ऊर्जा होगी

$$\sigma T^{4}=5\cdot72\times10^{-5}\times T^{4} \text{ अर्ग प्रति वर्ग सें० मी०}$$

अतः सन्तुलन के लिए

$$5\cdot72\times10^{-5}\times T^{4}=\frac{1\cdot35\times10^{6}}{R^{2}}$$

अर्थात् $$T^{4}= 253\times10^{8}/R^{2}$$

$$\therefore \qquad T=\frac{392^{\circ}}{\sqrt{R}} \quad \text{(परम)} \qquad (11)$$

1. Inverse square law

इस परिकलन में सरलता के लिए यह मान लिया गया है कि ग्रह के चारों ओर किसी तरह का वायुमंडल अथवा वाष्प-मंडल नहीं है। ऐसा वाष्पमंडल अवश्य ही ग्रह के वास्तविक विकिरण में से कुछ भाग का अवशोषण कर के उसे घटा देगा। और यह भी मान लिया गया है कि ग्रह सूर्य की परिक्रमा इस प्रकार करता है कि सूर्य की किरणें सदा उसके एक ही पार्श्व पर पड़ती रहती हैं और दूसरा पार्श्व सदा अंधकार में ही रहता है। ग्रह के इसी पार्श्व में सूर्य की ऊर्जा का अवशोषण होता है और इसी पार्श्व से विकिरण भी होता है। अतः समी० 11 द्वारा प्राप्त टेम्परेचर भी ग्रह के उस भाग का है जिस पर सूर्यकिरणें निरन्तर अभिलम्बतः पड़ती रहती हैं। दूसरा पार्श्व तो बहुत ही ठंडा रहेगा।

बुध ग्रह के सम्बन्ध में उपर्युक्त परिकल्पनाएँ बहुत कुछ सही हैं। और उसके लिए R= 306 है। अतः उसके आलोकित भाग का टेम्परेचर होगा T=723° (परम)=450° सेन्टीग्रेड।

किन्तु जब ग्रह अपने अक्ष पर इस प्रकार घूर्णन करता हो कि विभिन्न समयों पर उसके विभिन्न भागों पर सूर्य की किरणें पड़ें (यथा पृथ्वी) तब न तो दिन में आलोकित भाग का टेम्परेचर इतना ऊँचा हो सकेगा और न रात्रि में अंधेरे भाग का टेम्परेचर इतना कम हो सकेगा, क्योंकि सूर्यास्त के बाद वह जल्दी ठंडा न हो सकेगा और घूर्णन का वेग जितना ही अधिक होगा उतना ही कम अन्तर दिन और रात्रि के टेम्परेचरों में होगा। ऐसी दशा में हम यह मान सकते हैं कि औसत टेम्परेचर सर्वत्र एक-सा है।

इस औसत टेम्परेचर का परिकलन करने के लिए हमें यह स्मरण रखना होगा कि सूर्य का प्रकाश तो ग्रह के एक गोलार्ध पर ही पड़ता है और वह भी सर्वत्र अभिलम्बतः नहीं, किन्तु स्वयं ग्रह का टेम्परेचर विकिरण उसके सम्पूर्ण पृष्ठ से चारों ओर उत्सर्जित होता है। यदि ग्रह के गोले की त्रिज्या r हो तो

$$\text{ग्रह पर पड़ने वाली सूर्य की समस्त ऊर्जा} = \pi r^2 \times \frac{1\cdot35 \times 10^6}{R^2}$$

तथा ग्रह की विकिरण ऊर्जा $=4\pi r^2 \times \sigma T^4$

अतः सन्तुलन के लिए

$$4\pi r^2 \times \sigma T^4 = \pi r^2 \frac{1 \cdot 35 \times 10^6}{R^2}$$

$$\text{अर्थात्} \quad T = \frac{283^\circ}{\sqrt{R}} \text{ (परम)} \qquad (12)$$

पृथ्वी के लिए $R=1$ है। अतः पृथ्वी का टेम्परेचर$=283^\circ$ परम$=$ $10^\circ C$ वास्तव में भी पृथ्वी का औसत टेम्परेचर लगभग इतना ही ($14^\circ C$) है।

इस परिकलन में वाष्प-मंडल की उपस्थिति के कारण कुछ संशोधन और भी करना पड़ता है। प्रथम तो इस वाष्प अथवा वायु के संचरण के कारण विभिन्न स्थानों के टेम्परेचरों का अन्तर कम हो जाता है। दूसरे यह वाष्प-मंडल प्रकाश के लिए तो पारदर्शक होता है किन्तु अवरक्त विकिरण के लिए अपारदर्शक। अतः सूर्यका प्रकाश तो उसमें होकर ग्रह-पृष्ठ पर जा पहुँचता है, किन्तु ग्रहपृष्ठ से उत्सर्जित अवरक्त-विकिरण इस वाष्पमंडल से वाहर नहीं निकल सकता। यही कारण है कि अक्सर पृथ्वी पर पौधों को सरदी से बचाने के लिए काच की छत लगे कमरों में रख दिया जाता है जिससे दिन में तो उनमें गरमी पहुँच जाती है किन्तु रात्रि में वे ठंडे नहीं हो पाते। और इसी कारण सर्दी के मौसिम में मेघाच्छन्न रातें अपेक्षाकृत गरम रहती हैं।

इसके अतिरिक्त यह वाष्प मंडल सूर्य के वहुत से प्रकाश को परावर्तित करके भी लौटा देता है। पृथ्वी में वायुमंडल तथा बादल प्रायः ३७% प्रकाश को परावर्तित कर देता है और पृथ्वी को गरम करने के लिए सूर्य के प्रकाश का केवल ६३% भाग ही पहुंच पाता है। यदि समी० 12 में इस बातके लिए संशोधन किया जाय तो पृथ्वी का टेम्परेचर $\frac{283^\circ}{(0.63)^{1/4}} = 247^\circ$ परम$=$ $-26^\circ C$ निकलेगा। किन्तु मुख्यतः उपर्युक्त अवरक्त अवशोपण के कारण टेम्परेचर इतना कम नहीं हो पाता।

इन सब कारणों से सिद्धान्ततः परिकलित टेम्परेचर में कई संशोधन करने पड़ते हैं जिनमें से २० से २५% तक फरक पड़ जाता है। निम्न सारणी में ग्रहों के प्रेक्षित तथा परिकलित सेन्टीग्रेड टेम्परेचर दिये हुए हैं। परिकलित टेम्परेचर वह औसत टेम्परेचर है जो यह मानकर प्राप्त किया गया है कि दिन और रात के टेम्परेचरों में कोई फरक नहीं है।

ग्रह	प्रेक्षित टेम्परेचर	परिकलित टेम्परेचर (औसत)
बुध	४००	१७२
शुक्र	५५	५४
पृथ्वी	१४	४
मंगल	२०	−५१
बृहस्पति	−१४०	−१५१
शनि	−१५५	−१८३
यूरेनस (वारुणी)	−१८०	−२१०
नेपट्यून (वरुण)		−२२२
चन्द्रमा (आलोकित भाग का केन्द्र)	१२०	४

परिच्छेद १२

स्पैक्ट्रम और उसकी उत्पत्ति

परिच्छेद २ में यह बताया जा चुका है कि स्पैक्ट्रम किस प्रकार प्राप्त किया जाता है और किस प्रकार उसमें प्रकाश का विश्लेषण होकर विभिन्न तरंग-दैर्घ्य पृथक्-पृथक् चित्रित हो जाते हैं। यह भी बताया गया था कि तारों के सम्बंध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके प्रकाश के स्पैक्ट्रम का अध्ययन बहुत सहायता करता है। अतः स्पैक्ट्रम विज्ञान की कुछ मुख्य बातों का वर्णन कर देना उचित मालूम होता है।

स्पैक्ट्रम की जातियाँ

ये स्पैक्ट्रम मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं।

(१) अखंड स्पैक्ट्रम[1]—इसमें एक छोर से दूसरे छोर तक कहीं किसी प्रकार का विच्छेद नहीं होता और विभिन्न तरंग-दैर्घ्य एक-दूसरे से सटे हुए अंकित होते हैं। अर्थात् इसमें छोटे से लेकर बड़े समस्त तरंग-दैर्घ्यों के प्रकाश विद्यमान होते हैं। ऐसा स्पैक्ट्रम प्रज्ज्वलित ठोस द्रव्य के प्रकाश से प्राप्त होता है।

(२) रेखिल स्पैक्ट्रम[2]—इस स्पैक्ट्रम में काली पट-भूमि पर अनेक दीप्त रेखाएँ दूर-दूर प्रकट होती हैं (चित्र १२.१-क)। जिस प्रकाश से यह उत्पन्न होता है उसमें समस्त संभव तरंग-दैर्घ्य विद्यमान नहीं रहते, किन्तु कुछ

1. Continuous spectrum   2. Line spectrum

थोड़े से विशेप तरंग-दैर्घ्य ही उसमें रहते हैं। ऐसा स्पैक्ट्रम उत्तेजित गैसों या वाष्पों के प्रकाश से पैदा होता है।


क


ख


ग

आकृति १२.१

इस प्रकार के स्पैक्ट्रमों के अध्ययन से यह ज्ञात हो गया है कि कोई भी परमाणु जब गैसीय अवस्था में होता है तव उसमें से उत्पन्न होनेवाले प्रकाश में कुछ विशेष मानों के निर्दिष्ट तरंग-दैर्घ्य ही विद्यमान रहते हैं और विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के स्पैक्ट्रमों में ये तरंग-दैर्घ्य सर्वथा भिन्न मानों के होते हैं। अतः उनकी रेखाओं के नाप से परमाणुओं की असंदिग्ध पहचान हो सकती है। किस यौगिक[1] पदार्थ के अणु में कौन कौन से परमाणु विद्यमान हैं इस वात का निर्णय करने का सवसे सुग्राही साधन वस्तुतः यह स्पैक्ट्रमीय विश्लेपण ही है। जो काम रासायनिक विश्लेपण के द्वारा होता है वही काम इन स्पैक्ट्रमों के द्वारा भी हो जाता है और विशेषता यह है कि इस कार्य के लिए उस वस्तु की वहुत ही थोड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है। रेखिल स्पैक्ट्रम को हम परमाणु का हस्ताक्षर कह सकते हैं या और भी अधिक यथार्थतापूर्वक कह सकते हैं कि जिस प्रकार पुलिसवाले मनुष्य की पहचान

1. Compound

उसकी अँगुलियों की छाप से कर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार स्पैक्ट्रम के द्वारा वैज्ञानिक परमाणु को पहचान सकता है। और इस पहचान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जिस वस्तु में वह परमाणु अवस्थित है वह हमारे निकट हो। हमें तो केवल उसमें से निकले हुए प्रकाश की ही आवश्यकता होती है। अतः अत्यन्त दूरवर्ती तारों में कौन कौन से परमाणु विद्यमान हैं इसका पता हमें उनके रेखिल स्पैक्ट्रमों के द्वारा लग जाता है।

(३) **बैंड स्पैक्ट्रम**[1]—कुछ स्पैक्ट्रम ऐसे होते हैं जिनमें एक-दूसरी से पृथक् अनेक चौड़ी-चौड़ी पट्टियाँ-सी दिखाई देती हैं। (चित्र १२.१ ग) जिन्हें बैंड[2] कहते हैं। वास्तव में प्रत्येक बैंड भी अगणित बारीक रेखाओं का समूह ही होता है जो स्पैक्ट्रमदर्शी की अपर्याप्त विभेदन-शक्ति के कारण परस्पर मिलकर चौड़ी पट्टी के रूप में दिखाई देती हैं। ऐसे स्पैक्ट्रम यौगिक अणुओं[3] के अस्तित्व को सूचित करते हैं और इनके द्वारा अणुओं की पहचान भी बहुत अच्छी तरह हो जाती है।

(४) **अवशोषण स्पैक्ट्रम**[4]—इन दीप्त रेखायुक्त स्पैक्ट्रमों के अतिरिक्त कुछ स्पैक्ट्रम ऐसे भी होते हैं जिनमें प्रदीप्त पटभूमि पर काली रेखाएँ या काले बैंड दिखाई देते हैं (चित्र १२.१ ख)। ये स्पैक्ट्रम तब उत्पन्न होते हैं जब प्रकाश किसी प्रज्वलित ठोस या द्रव पदार्थ से चलकर किसी गैस या वाष्प में होकर स्पैक्ट्रमदर्शी में पहुँचता है। इस वाष्प में जो परमाणु या अणु होते हैं वे प्रकाश की उन्हीं तरंगों का अवशोषण कर लेते हैं जिनको वे स्वयं उत्तेजित होने पर उत्पन्न करते। अतः इस वाष्प की अनुपस्थिति में ठोस या द्रव पदार्थ के प्रकाश का जो अखंड स्पैक्ट्रम बनता उसमें से कुछ तरंग-दैर्घ्य गायब हो जाते हैं और उनके स्थान में काली रेखाएँ बन जाती हैं। इन रेखाओं को फ्रानहोफर[5] रेखाएँ कहते हैं और इन से भी

1. Band spectrum 2. Band 3. Molecules
4. Absorption spectrum 5. Fraunhofer

उस वाष्प के अणुओं और परमाणुओं की पहचान हो सकती है। इन्हें अवशोपण स्पैक्ट्रम कहते हैं।

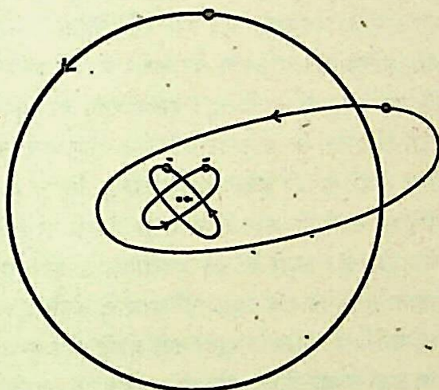
परमाणु की संरचना[1]

स्पैक्ट्रम-सम्बंधी उपर्युक्त वातों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह भी जान लें कि परमाणु की संरचना कैसी है। १९वीं शताब्दी के अन्त तक तो वैज्ञानिकों का विश्वास यही था कि परमाणु अविभाज्य होता है। किन्तु पिछले ६०-६५ वर्षों में परमाणु से भी छोटी अनेक प्रकार की सूक्ष्म कणिकाओं का आविष्कार हुआ है। इनमें मुख्य हैं, इलैक्ट्रान[2] प्रोटान[3] तथा न्यूट्रान[4]। प्रोटान तथा न्यूट्रान का भार तो हाइड्रोजन के परमाणु के भार के वरावर होता है किन्तु इलैक्ट्रान का भार उसके १८६०वें भाग के वराबर होता है। न्यूट्रान सर्वथा विद्युत्-विहीन होता है, किन्तु प्रोटान पर धन-विद्युत् तथा इलैक्ट्रान पर ऋण-विद्युत् बरावर मात्राओं में विद्यमान रहती है। द्रव्य के विभिन्न परमाणु इन्हीं तीन प्रकार के सूक्ष्माणुओं के विभिन्न-संख्यक सम्मेलनों के द्वारा वने हैं।

प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में एक नाभिक[5] होता है जो व्यास में छोटे से छोटे परमाणु से भी सम्भवतः एक लाख गुना छोटा होता है, किन्तु इस नाभिक का भार पूरे परमाणु के भार के लगभग वराबर ही होता है। इस पर धन-विद्युत् का आवेश रहता है। इसमें कुछ न्यूट्रान तथा कुछ प्रोटान रहते हैं जिनकी संख्याएँ विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं में विभिन्न होती हैं। प्रोटानों की संख्या अधिक होने के ही कारण नाभिक पर धन-आवेश रहता है।

1. Structure of the atom
2. Electron
3. Proton
4. Neotron
5. Nucleus

इस केन्द्रीय नाभिक के अतिरिक्त परमाणु में अनेक ऋणाविष्ट इलैक्ट्रान भी रहते हैं जो धनाविष्ट नाभिक के चारों ओर वैद्युत आकर्षण के कारण



आकृति १२.२

ठीक उसी प्रकार चक्कर लगाते रहते हैं जिस प्रकार ग्रह सौर परिवार में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक परमाणु भी इस दृष्टि से एक अत्यन्त सूक्ष्म सौर-परिवार ही समझा जा सकता है। जिस प्रकार हमारे सौर परिवार के आयतन का अधिकांश शून्याकाश है, ठीक उसी प्रकार परमाणु के आयतन का भी अधिकाश शून्याकाश ही है। और इन इलैक्ट्रानों की परिक्रमण-कक्षाएँ कुछ नियमों के अनुसार निर्दिष्ट परिमाणों की होती हैं। जो इलैक्ट्रान परमाणु के वाह्यतम प्रदेश में चक्कर लगाते हैं उन्हीं के द्वारा परमाणु के रासायनिक गुण निर्धारित होते हैं और वे ही परमाणु में से प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं।

परमाणु में से प्रकाश का उत्सर्जन

जब तक ये इलैक्ट्रान अपनी निर्दिष्ट कक्षाओं में घूमते रहते हैं तब तक

परमाणु में से किसी तरह का प्रकाश नहीं निकलता। किन्तु जब किसी कारण से, यथा अन्य परमाणुओं की टक्कर से, वाह्य प्रकाश के अवशोषण से अथवा वैद्युत बल के प्रभाव से परमाणु में कुछ ऊर्जा वाहर से प्रवेश करती है तब परमाणु केवल उतनी ही ऊर्जा का अवशोषण कर सकता है जितनी से उसका वाह्यतम इलैक्ट्रान किसी अधिक बड़े परिमाण की कक्षा में परिक्रमण करने लगे। ये बड़ी कक्षाएँ उत्तरोत्तर अधिक विस्तार वाली अनेक हो सकती हैं किन्तु वे सब भी क्वान्टम सिद्धान्त[1] के अनुसार नियमित परिमाण की होती हैं। अतः अवशोषित ऊर्जा के भी कई विभिन्न किन्तु नियत मान E_1, E_2, E_3, ...आदि हो सकते हैं और ये मान भी प्रत्येक तत्त्व के परमाणु के लिए भिन्न भिन्न होते हैं। ऊर्जा के इस अवशोषण से परमाणु में ऊर्जा का आधिक्य हो जाता है। तब उसे उत्तेजित[2] परमाणु कहते हैं।

किन्तु यह उत्तेजित अवस्था स्थायी नहीं होती और परमाणु शीघ्र ही अपनी साधारण ऊर्जा से अतिरिक्त उपर्युक्त ऊर्जा E_1,E_2 आदि को उत्सर्जित करके पुनः अपनी साधारण अवस्था प्राप्त कर लेता है। यह उत्सर्जित ऊर्जा प्रकाश-तरंग के रूप में निकलती है और उसका तरंग-दैर्घ्य एक निश्चित मान का होता है अर्थात् यह प्रकाश एक-वर्ण[3] होता है। उत्सर्जित ऊर्जा के मान E पर ही तरंग-दैर्घ्य λ निम्नलिखित समीकरण के अनुसार अवलम्बित होता है—

$$\lambda = \frac{hc}{E}$$

इसमें h क्वान्टम-सिद्धान्त के जन्मदाता विख्यात वैज्ञानिक प्लान्क[4] का नियतांक है। और c प्रकाश के वेग का मान है। इस समीकरण का अर्थ यह है कि उत्सर्जित ऊर्जा जितनी ही अधिक होगी, उत्सर्जित प्रकाश

1. Quantum Theory 2. Excited
3. Monochromatic 4. Planck

का तरंग-दैर्घ्य उतना ही छोटा होगा। इस प्रकार प्रत्येक उत्तेजित परमाणु कुछ निर्दिष्ट तरंग-दैर्घ्यों के प्रकाश को ही उत्सर्जित कर सकता है। अतः उसके स्पैक्ट्रम में केवल कुछ निर्दिष्ट स्पैक्ट्रम-रेखाएँ ही उपस्थित रह सकती हैं। उनके अतिरिक्त अन्य तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश उसमें से निकल ही नहीं सकता। यही कारण है कि इस प्रकाश का स्पैक्ट्रम रेखिल होता है और इन रेखाओं के तरंग-दैर्घ्य नापकर तुरन्त परमाणु को पहचाना जा सकता है।

आयनित परमाणु[1]

कभी-कभी परमाणु का उत्तेजन इतना अधिक हो जाता है कि उसमें से एक या अधिक इलैक्ट्रान नाभिक के आकर्षण का अतिक्रमण करके निकल भागते हैं और स्वतंत्ररूप से विचरण करने लगते हैं। परमाणु का जो अंश बच रहता है वह आयनित परमाणु कहलाता है। यह आयनित परमाणु भी सामान्य परमाणु की ही तरह उत्तेजित किया जा सकता है और तब उसमें से भी प्रकाश का उत्सर्जन हो सकता है। स्पष्ट ही है कि इसके प्रकाश में भी तरंग-दैर्घ्यों के मान उसी प्रकार नियत होंगे। किन्तु इसका स्पैक्ट्रम सामान्य परमाणु के स्पैक्ट्रम से भिन्न होगा। वह आयनित स्पैक्ट्रम कहलाता है। इसकी स्पैक्ट्रम-रेखाओं से भी उस परमाणु की पहचान हो सकती है।

परमाणु द्वारा प्रकाश का अवशोषण

परमाणु की संरचना से यह भी प्रकट है कि यदि विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश उस पर डाला जाय तो वह केवल उन्हीं तरंग-दैर्घ्यों के प्रकाश का अवशोषण कर सकेगा, जिनके कारण उसका बाह्य इलैक्ट्रान किसी संभव बाह्य कक्षा में पहुँच सके। यह क्रिया उत्सर्जन की क्रिया से ठीक उलटी होती है। अतः उत्तेजित अवस्था में परमाणु जिन तरंग-दैर्घ्यों का उत्सर्जन करता है

1. Ionised atom

ठीक उन्हीं तरंग-दैर्घ्यों का अवशोषण वह कर सकेगा, अन्य का नहीं। यदि प्रकाश का उद्गम ऐसा हो कि उसका स्पैक्ट्रम अखंड बने और यदि यह प्रकाश किसी वाष्प में होकर स्पैक्ट्रमदर्शी की स्लिट पर पड़े, तो उस अखंड स्पैक्ट्रम में से उस वाष्प के परमाणुओं से सम्बंधित तरंग-दैर्घ्य गायब हो जायेंगे और उनकी जगह काली रेखाएँ दिखाई देंगी। ये अवशोषण-रेखाएँ[1] कहलाती हैं। स्पष्ट है कि इन के द्वारा भी परमाणुओं की पहचान हो सकती है।

अणु का[2] प्रकाश

कई परमाणुओं से मिलकर एक अणु बनता है। ठीक परमाणु के ही समान वह भी उत्तेजित हो सकता है और तब उसमें से भी कुछ निर्दिष्ट तरंग-दैर्घ्यों का ही प्रकाश निकलता है। उसका स्पैक्ट्रम भी रेखिल होता है। किन्तु विभिन्न तरंग-दैर्घ्यों में अन्तर इतना कम होता है कि स्पैक्ट्रम में रेखाएँ बहुत ही पास-पास होती हैं और वे परस्पर मिलकर सामान्यतः चौड़ी पट्टियों जैसी दिखाई देती हैं। इन्हें बैंड[3] कहते हैं और अणु का स्पैक्ट्रम बैंड स्पैक्ट्रम कहलाता है। इन बैंडों के द्वारा भी अणु की पहचान हो जाती है।

स्पैक्ट्रम-रेखाओं की तीव्रता[4]

यह तो प्रकट ही है कि एक परमाणु या अणु में से जो प्रकाश उत्सर्जित होगा वह बहुत ही थोड़ा होगा। हमें उसका तो आभास भी न मिल सकेगा। किन्तु यदि एक ही प्रकार के बहुत-से परमाणु या अणु उत्तेजित हों तो उनका सम्मिलित प्रकाश काफी तीव्र हो सकता है। जितनी ही अधिक उन परमाणुओं की संख्या होगी उतनी ही अधिक प्रकाश की तीव्रता भी होगी। और उतनी ही अधिक द्युति[5] स्पैक्ट्रम रेखाओं की होगी। अतः इन रेखाओं की द्युति

1. Absorption lines 2. Molecule 3. Band
4. Intensity 5. Brightness

को नापने से यह भी मालूम हो सकता है कि प्रकाशोत्पादक वाष्प में विभिन्न परमाणुओं की मात्राएँ किस अनुपात में विद्यमान हैं।

इसी तरह अवशोषण-स्पैक्ट्रम में रेखाओं के कालेपन की गहराई या कृष्णता भी अवशोषक परमाणुओं की संख्या पर अवलम्बित होती है और अधिक कृष्णता अधिक परमाणुओं की उपस्थिति प्रकट करती है।

द्रव्य के घनत्व का प्रभाव

उपर्युक्त रेखिल स्पैक्ट्रम की उत्पत्ति के लिए आवश्यक है कि प्रकाशोत्पादक द्रव्य गैसीय अथवा वाष्पीय अवस्था में हो अर्थात् उसके परमाणु इतने अधिक दूर-दूर हों कि किसी भी परमाणु का किसी अन्य परमाणु पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सके। यदि ऐसा न हो तो इस पारस्परिक प्रभाव के कारण कम से कम कुछ परमाणुओं की स्वाभाविक अवस्था में तो थोड़ा परिवर्तन हो ही जायगा और उनसे उत्सर्जित प्रकाश के तरंग-दैर्घ्यों में भी थोड़ी घट-बढ़ हो जायगी। फलतः स्पैक्ट्रम-रेखाएँ अधिक चौड़ी हो जायेंगी और ज्यों-ज्यों वाष्प का दबाव अधिक होता जायगा त्यों-त्यों यह चौड़ाई भी बढ़ती जायगी। अतः इन रेखाओं की चौड़ाई को देखकर वाष्प के दबाव का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

जब वाष्प अधिक संघनित होकर द्रव या ठोस अवस्था प्राप्त कर लेता है तब यह पारस्परिक प्रभाव इतना अधिक हो जाता है कि समस्त रेखाएँ परस्पर मिल जाती हैं, अर्थात् उस द्रव्य में से सभी तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश निकलने लगता है। इस से स्पैक्ट्रम रेखिल नहीं रहता। वह अखंड बन जाता है।

दूसरी ओर यदि वाष्प का दबाव बहुत घट जाय तो अनेक परमाणु आयनित हो जाते हैं। और तब सामान्य स्पैक्ट्रम के अतिरिक्त आयनित स्पैक्ट्रम भी प्राप्त होने लगता है।

ताप का प्रभाव

परमाणुओं के उत्तेजन का सब से सरल उपाय है ताप की वृद्धि

यह सभी जानते हैं कि ठंडी वस्तुओं में से प्रकाश का उत्सर्जन नहीं होता। किन्तु उसके गरम करने पर पहले उसमें से लम्बे तरंग-दैर्ध्य वाला ऊष्मा-विकिरण[1] निकलने लगता है। फिर ज्यों-ज्यों ताप बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसमें से लाल, पीला और अन्त में श्वेत प्रकाश भी निकलने लगता है। इसका कारण यह है कि किसी भी वस्तु के अणु या परमाणु निश्चल नहीं रहते। वे सदैव बड़े वेग से इधर-उधर दौड़ते रहते हैं और आपस में टकराते भी रहते हैं। इन टक्करों के ही कारण कभी-कभी परमाणु उत्तेजित भी हो जाते हैं। जितना ही ताप टेम्परेचर बढ़ता है उतना ही परमाणुओं का वेग भी बढ़ जाता है और टक्करें भी उतनी ही अधिक जोरदार होने लगती हैं। अतः परमाणुओं में ऊर्जा की वृद्धि भी अधिक होने लगती है। फलतः उपर्युक्त समीकरण (।) के अनुसार उत्सर्जित प्रकाश में छोटे तरंग-दैर्घ्यों का समावेश भी अधिक होता जाता है। बहुत अधिक ताप हो जाने पर आयनीकरण भी होने लगता है और आयनित स्पैक्ट्रम भी प्रगट होने लगता है।

वैद्युत बल का प्रभाव

परमाणुओं के उत्तेजन का दूसरा कारण है वैद्युत बल। जब परमाणु किसी ऐसे स्थान में अवस्थित हो जहाँ उस पर वैद्युत बल लग रहा हो, तब उसके इलैक्ट्रान इस बल के कारण परमाणु से पृथक् हो जाते हैं और परमाणु आयनित हो जाता है। जब कोई गैस काच की नली में भरी होती है और उसका दबाव पम्प के द्वारा कम कर दिया जाता है और प्रेरण-कुंडली[2] अथवा ट्रान्सफार्मर[3] के द्वारा उस नली के विद्युदग्रों[4] पर उच्च वैद्युत विभवत्व लगाया जाता है तब यही क्रिया होती है और ताप की वृद्धि के बिना भी आयनिक स्पैक्ट्रम उत्पन्न हो जाता है।

1. Heat radiation
2. Induction coil
3. Transformer
4. Electrodes

चुम्बकीय बल का प्रभाव

यदि प्रकाशोत्पादक परमाणु प्रबल चुम्बकीय क्षेत्र में अवस्थित हो तो उसके प्रकाश के स्पैक्ट्रम पर विचित्र प्रभाव पड़ता है, जिसे ज़ीमान-प्रभाव[1] कहते हैं। सामान्य ज़ीमान प्रभाव में प्रत्येक तरंग-दैर्घ्य तीन भागों में विभाजित हो जाता है। एक भाग का तरंग-दैर्घ्य तो उतना ही रहता है। एक भाग का घट जाता है और एक भाग का बढ़ जाता है। स्पैक्ट्रम में प्रत्येक रेखा के स्थान में तीन-तीन रेखाएँ प्रकट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त इन रेखाओं का प्रकाश ध्रुवित भी[2] होता है। निकल प्रिज्म[3] के द्वारा यह ध्रुवण आसानी से देखा जा सकता है। अतः यदि किसी स्पैक्ट्रम में रेखाओं का ऐसा विभाजन और ध्रुवण दिखाई दे तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस परमाणु में से प्रकाश उत्पन्न हो रहा है वह चुम्बकीय क्षेत्र में अवस्थित है और इस क्षेत्र के बल का भी अन्दाजा लगाया जा सकता है।

डापलर का प्रभाव[4]

यह साधारण अनुभव की बात है कि रेल के इंजन की सीटी का स्वर इंजन के वेग और उसकी दिशा के अनुसार कुछ बदला हुआ सुनाई देता है। जब इंजन की गति की दिशा सुननेवाले की ओर होती है तब उसका स्वर[5] कुछ ऊंचा सुनाई देता है और जब उसकी गति विपरीत दिशा में होती है तब स्वर नीचा हो जाता है। और इंजन का वेग जितना ही अधिक होता है उतना ही स्वर का यह परिवर्तन भी अधिक होता है। इस घटना का कारण यह है कि ध्वनि के उत्पादक के वेग के कारण ध्वनितरंगों के दैर्घ्य में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन निम्नलिखित सूत्र के अनुसार होता है —

1. Zeeman effect
2. Polarised
3. Nicol prism
4. Doppler's effect
5. Pitch

$$\frac{d\lambda}{\lambda}=\frac{v}{c}$$

इसमें λ तो ध्वनि-उत्पादक की ध्वनि का तरंग-दैर्घ्य है और $d\lambda$ तरंग-दैर्घ्य का परिवर्तन। v उस ध्वनि-उत्पादक का वेग है और c ध्वनि का वेग है। जब v की दिशा श्रोताभिमुखी होती है तो $d\lambda$ ऋणात्मक होता है और जब v की दिशा विपरीत होती है तो $d\lambda$ धनात्मक होता है। इस घटना को डापलर का प्रभाव कहते हैं।

यदि ध्वनि-उत्पादक स्थिर रहे और श्रोता गतिमान् हो और उसका वेग v हो तब भी स्वर में वैसा ही परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् यदि श्रोता ध्वनि-उत्पादक की तरफ चल रहा हो तो स्वर ऊँचा चढ़ जाता है और यदि विपरीत दिशा में चल रहा हो तो स्वर उतरा हुआ मालूम होता है।

सारांश यह है कि यह स्वर का परिवर्तन श्रोता तथा ध्वनि के उत्पादक की आपेक्षिक गति पर अवलम्बित है।

प्रकाश-तरंगों में भी ठीक ऐसा ही डापलर प्रभाव होता है और प्रकाशोत्पादक परमाणु के वेग से होनेवाले तरंग-दैर्घ्य के परिवर्तन के कारण प्रकाश के स्पैक्ट्रम में रेखाओं का स्थान थोड़ा बदल जाता है। इस विस्थापन की दिशा से और उसके परिमाण को नापने से हम उपर्युक्त सूत्र की सहायता से तुरन्त जान सकते हैं कि उस परमाणु का दृष्टि-रेखीय वेग कितना है और किस दिशामें है। तारों का वेग नापने में इसी प्रभाव का उपयोग किया जाता है।

किन्तु स्पष्ट है कि इस प्रकार तारों का जो वेग नापा जाता है वह पृथ्वी-सापेक्ष वेग ही होता है। निरपेक्ष वेग नहीं। चाहे तारे की ओर पृथ्वी दौड़ रही हो चाहे पृथ्वी की ओर तारा दौड़ रहा हो—दोनों अवस्थाओं में परिणाम एक-सा ही दिखाई देगा।

परिच्छेद १३

सूर्य का स्पैक्ट्रम[1]

परिच्छेद २ में यह बताया जा चुका है कि सूर्य तथा विभिन्न ग्रहों के प्रतिबिम्बों का विस्तार बड़ा होने के कारण उनके प्रकाश का अच्छा स्पैक्ट्रम प्राप्त करने के लिए उनके प्रतिबिम्ब को स्पैक्ट्रम-दर्शी की स्लिट पर फ़ोकस कर दिया जाता है। और ऐसी व्यवस्था भी कर दी जाती है कि यद्यपि पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन के कारण आकाश में इनका स्थान प्रतिक्षण बदलता रहता है तथापि उनका प्रतिबिम्ब बराबर स्लिट पर ही बना रहता है। यदि समंजन उत्तम हो तो स्लिट में प्रतिबिम्ब के किसी भी निर्दिष्ट भाग का ही प्रकाश प्रवेश करता है। अतः हम इनके बिम्बों के विभिन्न भागों से आने वाले प्रकाश के स्पैक्ट्रम अलग-अलग भी प्राप्त कर सकते हैं। परिच्छेद ३ में वर्णित सूर्य के विभिन्न भागों के जो स्पैक्ट्रम प्राप्त हुए हैं वे निम्नलिखित प्रकार के हैं और उनके अध्ययन से सूर्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्त्व-पूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं।

प्रकाश मंडल[2]

दूरबीन में सूर्य का जो केन्द्रीय भाग वृत्ताकार मंडलक जैसा दिखाई देता है और जिसकी ज्योति अत्यन्त तीव्र होती है, वही प्रकाश-मंडल कहलाता है। इसका स्पैक्ट्रम अखंड[3] होता है किन्तु उसमें सैकड़ों पतली-पतली काली

1. Solar Spectrum 2. Photosphere 3. Continuous

रेखाएँ भी होती हैं। इसके बैंगनी तथा परा-बैंगनी भागों की अत्यधिक तीव्रता यह बताती है कि प्रकाश-मंडल का ताप बहुत अधिक है। और स्पैक्ट्रम की अखंडता से यह प्रकट होता है कि वहाँ द्रव्य का घनत्व बहुत अधिक है। वह ठोस या द्रव तो नहीं हो सकता, क्योंकि लगभग ६०००° के ताप पर कोई भी द्रव्य ठोस या द्रव अवस्था में नहीं रह सकता। संभवतः पूरा सूर्य गैसीय ही है, किन्तु उसका दबाव बहुत अधिक है। काली रेखाएँ स्पष्टतः फ्रॉनहोफ़र[1] रेखाएँ हैं। इनका अस्तित्व यह प्रकट करता है कि प्रकाश-मंडल का प्रकाश अपेक्षाकृत ठंडे वाष्प में होकर आता है और वहाँ प्रकाश के कुछ तरंग-दैर्घ्यों का अवशोषण हो जाता है। अतः हमें यह भी मानना पड़ता है कि इस प्रकाश-मंडल को घेरे हुए प्रायः ५०० किलोमीटर मोटा वाष्प का आवरण विद्यमान है। इसे उत्क्रामी आवरण[2] कहते हैं क्योंकि यहाँ दीप्त स्पैक्ट्रम-रेखाएँ बदल कर अदीप्त या काली हो जाती हैं। इन काली रेखाओं का अत्यन्त पतलापन यह प्रकट करता है कि इस वाष्प का दबाव संभवतः पृथ्वी के वायुमंडल के दबाव के १/१००००वें अंश से भी कम है। और इन रेखाओं के तरंग-दैर्घ्य नापने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस आवरण में ऐसे बहुत से रासायनिक तत्त्व[3] विद्यमान हैं जो पृथ्वी पर भी पाये जाते हैं। ऐसे तत्त्वों की संख्या ६० के लगभग है। इनमें हाइड्रोजन, सोडियम, कैलसियम मुख्य हैं। और इन रेखाओं की मोटाई तथा इनके कालेपन की गहराई से यह भी मालूम हो जाता है कि इन ६० तत्त्वों की मात्राएँ इस आवरण में प्रायः उसी अनुपात में विद्यमान हैं जिसमें वे पृथ्वी पर पाये जाते हैं। शेष ३२ तत्त्वों के अस्तित्व का इस स्पैक्ट्रम में कोई भी चिन्ह नहीं है। किन्तु इसका कारण यह नहीं समझा जा सकता कि वे सूर्य में हैं ही नहीं। प्रथम तो इस स्पैक्ट्रम के द्वारा हम सूर्य-पृष्ठ के

1. Fraunhofer lines 2. Reversing layer
3. Elements

बहुत ही पतले से अंश का प्रेक्षण कर सकते हैं, क्योंकि प्रकाश-मंडल की अपेक्षा इस आवरण की मोटाई बहुत ही कम है। दूसरे, कई तत्त्वों की प्रमुख रेखाओं के प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य इतना छोटा होता है कि पृथ्वी का वायुमंडल उसका अवशोषण कर लेता है और उसे हम तक पहुँचने ही नहीं देता। विशेष कर यदि ऐसे तत्त्व बहुत कम मात्रा में विद्यमान हों तो हमें उनका पता नहीं लग सकता। तीसरे, कुछ अत्यन्त भारी तत्त्व ऐसे हैं जो पृथ्वी पर भी बहुत ही कम मात्रा में पाये जाते हैं। संभावना यही है कि सूर्य में भी उनकी मात्रा कम ही होगी। इसके अतिरिक्त भारी होने के कारण वे इतने नीचे बैठ गये होंगे कि इस उत्क्रामी आवरण में उनका अभाव आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। इसलिए ऐसा मानने का कोई भी यथेष्ट कारण नहीं है कि सूर्य में किसी भी पार्थिव तत्त्व का सर्वथा अभाव है।

(२) उत्क्रामी आवरण[1]

इस व्याख्या की सचाई की परीक्षा करने का एक उपाय यह है कि जो प्रकाश केवल इस उत्क्रामी आवरण से ही आता हो उसका स्पैक्ट्रम देखा जाय। यह परीक्षा सूर्य के पूर्ण ग्रहण के समय आसानी से हो सकती है क्योंकि तब सूर्य के प्रकाश-मंडल को चन्द्रमा पूरी तरह से ढक लेता है। उस समय जो स्पैक्ट्रम प्राप्त होता है उसमें अखंड स्पैक्ट्रम का सर्वथा अभाव होता है और काली पृष्ठ-भूमि पर अनेक दीप्त रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन दीप्त रेखाओं का स्थान ठीक वही होता है जो प्रकाश-मंडल के स्पैक्ट्रम में काली फ्रानहोफ़र रेखाओं का होता है। यह स्पैक्ट्रम बहुत ही थोड़ी सी देर (कुछ ही सैकंडों) के लिए दिखाई देता है। किन्तु उसका फोटोग्राफ़ आसानी से लिया जा सकता है। इसे उद्दीप्ति-स्पैक्ट्रम[2] कहते हैं। आजकल तो यह स्पैक्ट्रम किसी भी दिन प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि स्पैक्ट्रम-लेखी की स्लिट

1. Reversing layer 2. Flash spectrum.

पर सूर्य का प्रतिबिम्ब इस प्रकार डाला जा सकता है कि उस पर ज्योतिमंडल के किनारे से बाहर की ओर का प्रकाश ही पड़े।

(३) वर्णमंडल[1]

उत्क्रामी आवरण के चारों ओर कई सहस्र मील मोटा और लाल रंग का एक और आवरण है जिसे वर्णमंडल कहते हैं। यह भी पूर्ण ग्रहण के समय ही देखा जा सकता है। इसके स्पैक्ट्रम में भी दीप्त रेखाएँ ही होती हैं। इसमें प्रमुख द्रव्य हाइड्रोजन है। इसका लाल रंग हाइड्रोजन के ही कारण है। हाइड्रोजन तथा हीलियंम और कैलसियम इसके वाह्य भाग में प्रकाश-मंडल से प्राय: १२,००० किलोमीटर की ऊँचाई तक, स्ट्रांशियम (Sr), टिटेनियम (Ti), स्कैन्डियम (Sc) और मैगनीशियम (Mg) प्राय: ५००० किलोमीटर तक और सोडियम (Na) तथा लोह (Fe) एवं थोड़े से अन्य तत्त्व प्राय: १००० किलोमीटर तक पाये जाते हैं। अन्य सब तत्त्व ५०० किलोमीटर से ऊपर नहीं मिलते। यहां के वाष्प का दबाव उत्क्रामी आवरण की अपेक्षा दस लाख गुना कम अर्थात् साधारण वायुमंडल के दबाव का $१०^{-१०}$वाँ अंश मात्र होता है।

यह दबाव इतना कम है कि आज के अच्छे से अच्छे वायुपम्प के द्वारा भी इतना उत्कृष्ट शून्यक[2] उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अर्थात् ऐसे उत्कृष्ट शून्यक में प्रति घन-सेंटीमीटर जितना द्रव्य विद्यमान रहता है, उससे भी बहुत कम द्रव्य इस वर्णमंडल में होता है। उसके दिखाई देने का कारण यह है कि इसकी मोटाई सहस्रों मील है। वर्णमंडल के कुछ भाग कहीं-कहीं ७०-८० सहस्र किलोमीटर की ऊँचाई तक उठे हुए हैं। पूर्ण ग्रहण के समय ये अत्यन्त चमकदार ज्वालाओं[3] के रूप में सूर्यबिम्ब के चारों ओर दिखाई

1. Chromosphere 2. Vacuum
3. Prominences

देते हैं। स्पैक्ट्रम में दीप्त रेखाएँ इस ज्वालामंडल के अस्तित्व को प्रकट करतीं हैं।

(४) किरीट-मंडल[1]

पूर्ण ग्रहण के समय वर्णमंडल को घेरे हुए एक और हलकी सी प्रभा दिखाई देती है जिसे किरीट कहते हैं। यह सूर्य से प्रायः एक लाख मील की दूरी तक फैली रहती है। इस प्रभा का स्पैक्ट्रम मुख्यतः अखंड होता है और उसमें अत्यन्त क्षीण फ्रानहोफ़र रेखाएँ भी रहती हैं। संभवतः सूर्य के चारों ओर आकाश में कोई अत्यन्त पतली गैस भरी हुई है। इस गैस के परमाणुओं से प्रकीर्णित[2] होकर सूर्य के प्रकाश-मंडल का ही प्रकाश हमारे पास पहुँचता है और उसी से यह प्रभा उत्पन्न होती है। इसके स्पैक्ट्रममें थोड़ी सी दीप्त रेखाएँ भी होती हैं। इससे मालूम होता है कि इस गैस के परमाणु स्वयं भी कुछ प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं। किन्तु आश्चर्य की वात है कि ये रेखाएँ किसी भी पार्थिव द्रव्य के स्पैक्ट्रम में नहीं देखी गयीं। अतः कुछ वर्षों पहले तक ऐसा अनुमान किया जाता था कि वहाँ पार्थिव तत्त्वों से भिन्न और किसी प्रकार का द्रव्य मौजूद है। किन्तु परमाणुओं की संरचना के आधुनिक सिद्धान्त में ऐसे किसी भी तत्त्व के अस्तित्व की गुंजायश नहीं है। अतः अभी तो हम केवल यही कह सकते हैं कि संभवतः वहाँ की विलक्षण परिस्थितियों में हमारे ज्ञात पार्थिव तत्त्वों के परमाणु ही इन विचित्र स्पैक्ट्रम रेखाओं को उत्पन्न करते हैं।

स्पैक्ट्रमीय रविच्चित्रक[3]

इस यंत्र के द्वारा सूर्य के बिम्ब का फ़ोटो किसी भी इच्छित तरंग-दैर्घ्य के प्रकाश के द्वारा लिया जा सकता है। इस तरंग-दैर्घ्य के अतिरिक्त अन्य

1. Corona 2. Scatter 3. Spectro-helio-graph

किसी भी तरंग-दैर्घ्य का प्रकाश फ़ोटो के प्लेट पर पहुँच ही नहीं पाता। अतः इस प्रकार प्राप्त किये गये फ़ोटो से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सूर्य-बिम्ब और उसके आवरणों के प्रत्येक बिन्दु से किसी भी विशेष तरंग-दैर्घ्य का प्रकाश कितनी-कितनी मात्राओं में निकलता है। इस यंत्र के द्वारा सूर्य की ज्वालाओं को किसी भी दिन स्पष्टतया चित्रित किया जा सकता है। इनका फ़ोटो लेने के लिए अब हमें सूर्य-ग्रहण की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

इस यंत्र में स्पैक्ट्रम-लेखी की स्लिट के तल पर दूरबीन द्वारा सूर्य का प्रतिबिम्ब फ़ोकस कर दिया जाता है। इस प्रतिबिम्ब के जिस भाग का प्रकाश स्लिट में प्रवेश करता है उसी का स्पैक्ट्रम-लेखी के फ़ोटो-प्लेट पर फ़ोकस होता है। किन्तु इस प्लेट के सामने और उससे सटा हुआ एक अपारदर्शी परदा लगा रहता है और उसमें एक पतली सी स्लिट होती है। इस स्लिट को स्पैक्ट्रम के किसी भी इच्छित भाग में खिसकाया जा सकता है। अर्थात् इस दूसरी स्लिट में से केवल एक ही निर्दिष्ट तरंग-दैर्घ्य का प्रकाश निकलकर प्लेट पर पड़ सकता है। स्पष्ट है कि इस व्यवस्था के कारण इस तरंग-दैर्घ्य के प्रकाश से एक पतली सी रेखा प्लेट पर अंकित हो जाती है और यह रेखा सूर्य के प्रतिबिम्ब के उस भाग का चित्र है जो स्पैक्ट्रमलेखी की प्रथम स्लिट पर फोकसित है। ज्यों-ज्यों पृथ्वी की गति के कारण सूर्य का प्रतिबिम्ब प्रथम स्लिट के तल में खिसकता जायगा, त्यों-त्यों उसके अन्य भाग स्लिट पर पड़ते जायेंगे और दूसरी स्लिट में से उनके चित्र क्रमशः बनते जायेंगे। यदि व्यवस्था ऐसी हो कि इस दूसरी स्लिट के पीछे का फ़ोटो का प्लेट भी ठीक उतने ही वेग से खिसकता जाय जितने वेग से पहली स्लिट पर पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब खिसक रहा हो, तो स्पष्ट है कि प्लेट पर सूर्य के विभिन्न भागों के चित्रों की रेखाएँ बराबर-बराबर बनती जायेंगी। और ये सब मिलकर पूरे सूर्य का ठीक वैसा ही चित्र प्लेट पर अंकित कर देंगी जैसा दूरबीन ने प्रथम स्लिट के तल में बनाया था। अंतर केवल यह होगा कि यह चित्र एक निर्दिष्ट तरंग-दैर्घ्य के प्रकाश से बना हुआ होगा।

इस प्रकार सूर्य की ज्वालाओं के जो चित्र विभिन्न समयों पर विभिन्न वेधशालाओं में प्राप्त किये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि कुछ ज्वालाएँ तो अचल अथवा शान्त हैं। अर्थात् एक-दो दिन में उनकी आकृतियों में कुछ भी अन्तर होता हुआ दिखाई नहीं देता। ऐसी ज्वालाएँ सूर्य के पृष्ठ पर सर्वत्र दिखाई देती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ज्वालाएँ विस्फोटी[1] होती हैं। इनकी आकृति जल्दी जल्दी बदलती रहती है। ये बढ़ते-बढ़ते सूर्य से लाखों मील की दूरी तक पहुँच जाती हैं। ऐसा अनुमान किया गया है कि इनमें द्रव्य लगभग ४०० किलोमीटर प्रति सेकंड के वेग से दौड़ता है। ऐसी विस्फोटी ज्वालाएँ सूर्यबिम्ब के काले धब्बों के पास ही दिखाई देती हैं।

स्पैक्ट्रमीय रविचित्रक की दूसरी स्लिट को किसी भी तत्त्व की प्रमुख स्पैक्ट्रमीय रेखा के स्थान में रखकर सूर्य का फ़ोटो लेने से सूर्यपृष्ठ पर उस तत्त्व के वितरण का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। जहाँ सूर्य के वाष्पावरण का ताप अधिक होता है, वहाँ से उस तत्व का लाक्षणिक[2] प्रकाश अधिक परिमाण में आता है। अतः वहाँ वह वाष्प चमकदार बादल की तरह दिखाई देता है। जहाँ वाष्प ठंडा होता है और उसका घनत्व अधिक होता है वहाँ से प्रकाश कम आता है और वह वाष्प काले धब्बे के जैसा दिखाई देता है। कैल-शियम के इन दोनों प्रकारों के बादल देखे गये हैं और हाइड्रोजन के भी। ये भी सूर्य के धब्बों के निकट ही दिखाई देते हैं। हाइड्रोजन के बादलों के स्पैक्ट्रमों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें भँवर की सी चक्करदार गति होती रहती है।

सूर्य के धब्बे[3]-

इन धब्बों से आनेवाले प्रकाश के स्पैक्ट्रम की समस्त पारमाणविक रेखाएँ इस बात की द्योतक हैं कि वहाँ का ताप अपेक्षाकृत कम है। यह

1. Eruptive 2. Characteristic 3. Sunspots

इस बात से भी प्रगट है कि इस स्पैक्ट्रम में टाइटेनियम आक्साइड तथा मैगनीशियम हाइड्राक्साइड के अविघटित अणुओं के बैंड[1] भी विद्यमान रहते हैं। धब्बों से बाहर टेम्परेचर अधिक होने के कारण ये अणु विघटित हो जाते हैं और वहाँ से आनेवाले प्रकाश-स्पैक्ट्रम में ये बैंड नहीं दिखाई देते। ताप की कमी का समर्थन इस बात से भी होता है कि इन धब्बों में आयनित परमाणुओं की रेखाएँ तो क्षीण होती हैं, किन्तु आर्क-रेखाएँ[2] बहुत गहरी होती हैं। यथा रूबीडियम (Rb) की आर्क-रेखाओं का सूर्य के स्पैक्ट्रम में बिलकुल अभाव होता है किन्तु इन धब्बों में उसकी प्रमुख आर्क-रेखा स्पष्ट दिखाई देती है। इस तथ्य की प्रागुक्ति स्वर्गीय डा० मेघनाद साहा ने पहले ही कर दी थी।

इसके अतिरिक्त इन धब्बों के स्पैक्ट्रमों में ज़ीमान-प्रभाव भी दिखाई देता है। इससे यह प्रगट होता है कि वहाँ प्रचण्ड-चुम्बकीय बल-क्षेत्र भी विद्यमान रहता है। वहाँ हाइड्रोजन के बादलों में जो भँवर-गति की दिशा दिखाई देती है उसी पर इस चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा निर्भर करती है। वस्तुत: अब तो यह स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी के समान ही सूर्य-पृष्ठ पर भी सर्वत्र चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान है और वहाँ भी चुम्बकीय ध्रुव सूर्य के अक्षीय घूर्णन के ध्रुवों के ही निकट अवस्थित हैं। सूर्य का चुम्बकीय बल-क्षेत्र पृथ्वी की अपेक्षा प्रायः १५० गुना अधिक प्रबल है।

इन सब बातों से ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ ये धब्बे होते हैं वहाँ सूर्य के वाष्पीय आवरण में विशाल भँवर बन जाते हैं, जिनमें वाष्प नीचे से ऊपर की ओर बड़े वेग से उठता रहता है और ऊपर जाकर चारों ओर फैलता रहता है। इस कारण वहाँ का टेम्परेचर प्राय: २०००° कम हो जाता है। चुम्बकीय बल-क्षेत्र का कारण यह है इस घूर्णित वाष्प में आयनित अर्थात् विद्युत् से आविष्ट अणु तथा परमाणु भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहते हैं।

1. Bands 2. Arc-lines

सूर्य का अक्षीय घूर्णन

जब सूर्य के प्रकाश-मंडल के पूर्वीय तथा पश्चिमी किनारों के स्पैक्ट्रमों का फ़ोटो लिया जाता है तो पूर्वीय किनारे की स्पैक्ट्रम-रेखाएँ स्पैक्ट्रम के बैंगनी छोर की ओर तथा पश्चिमी किनारे की स्पैक्ट्रम-रेखाएँ लाल छोर की ओर विस्थापित पायी जाती हैं। यद्यपि यह विस्थापन बहुत ही कम होता है, फिर भी इसे यथार्थतापूर्वक नाप लिया गया है। डापलर के नियमानुसार इसका अर्थ यही हो सकता है कि सूर्य अपने अक्ष पर पूर्व से पश्चिम की ओर घूम रहा है। इस घूर्णन के कारण पूर्वीय किनारे पर सूर्य-पृष्ठ का वेग पृथ्वी की दिशा में प्रायः २.१ किलोमीटर प्रति सैकंड तो निरक्ष[1] पर है और दोनों ध्रुवों के निकट यह वेग शून्य हो जाता है। इस घूर्णन का आवर्तकाल[2] सर्वत्र एक-सा नहीं है। यह निरक्ष से ध्रुवों की ओर बराबर बढ़ता जाता है। अतः सूर्य का प्रकाश-मंडल ठोस नहीं समझा जा सकता। इसके अतिरिक्त कभी-कभी सूर्य के वाष्पावरण में कई सौ किलोमीटर प्रति घंटे के वेग से चलने वाले सौर-पवनों के अस्तित्व का भी प्रमाण स्पैक्ट्रन-रेखाओं के विस्थापन से मिलता है।

प्रकाश का दबाव[3]

यद्यपि प्रकाश-मंडल से बाहर वर्णमंडल में और ज्वालामंडल में टेम्प-रेचर कम होता है तो भी सहस्रों किलोमीटर की ऊंचाई तक आयनित अणुओं की स्पैक्ट्रम-रेखाए पायी जाती हैं। इससे प्रकट होता है कि वहाँ के वाष्प का दबाव बहुत कम है। किन्तु बहुत काल तक यह बात समझ में नहीं आयी थी कि इस वाष्प के परमाणु इतनी ऊंचाई पर ठहरे कैसे हैं। यदि उन पर गुरुत्वाकर्षण के अतिरिक्त और कोई बल न लग रहा होता तो वहाँ वाष्प

1. Equator
2. Periodic time
3. Pressure of Light

का घनत्व इतना कम हो जाता कि स्पैक्ट्रम में उनका पता लगना असंभव हो जाता। अतः अवश्य ही इन परमाणुओं पर कोई दूसरा बल भी लग रहा है जो उन्हें सूर्य के केन्द्र से अधिक से अधिक दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह बल प्रकाश का दबाव है। जो परमाणु अधिक प्रकाश का अवशोषण कर सकते हैं उन्हीं पर यह दबाव अधिक होता है और वे सूर्य से बहुत दूर तक इस दबाव के कारण चले जाते हैं। यही कारण है कि आयनित सोडियम (Na) प्राय: १५०० किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर नहीं पाया जाता क्योंकि सूर्य के प्रकाश में ऐसे तरंग-दैर्घ्य हैं ही नहीं जिनका अवशोषण वह कर सके। विपरीत इसके आयनित कैलशियम अधिक भारी होने पर भी बहुत ऊंचाई तक पाया जाता है क्योंकि उसमें सूर्य के प्रकाश का अवशोषण बहुत हो जाता है।

मेरु-ज्योति[1]

यह सुन्दर ज्योति पृथ्वी के उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों के आसपास के आकाश में दिखाई देती है। यह प्रमाणित हो गया है कि यह ज्योति पृथ्वी के वायुमंडल में ही बहुत ऊंचाई पर (लगभग १०० किलोमीटर) पर उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी पर बाह्य आकाश में से विद्युत् से आविष्ट द्रव्य-कणिकाओं की बौछार बराबर होती रहती है। ये कणिकाएँ वायु के अणुओं और परमाणुओं से टकरा कर उन्हें उत्तेजित कर देती हैं। पृथ्वी के चुम्बकीय बल-क्षेत्र के कारण ये आविष्ट कणिकाएँ सर्पिल पथ पर गमन करती हैं। इसी से मेरु-ज्योति में अनेक लम्बी लम्बी दीप्त लकीरें-सी पृथ्वी की चुम्बकीय बलरेखाओं से समान्तर फैली हुई दिखाई देती हैं।

इस ज्योति के स्पैक्ट्रम में प्रमुख रेखा हरे रंग की है जो नाइट्रोजन के परमाणु में से निकलती है। आक्सिजन परमाणु से निकली हुई भी एक

1. Aurora

रेखा दिखाई पड़ती है जो अपेक्षाकृत बहुत क्षीण होती है। जिस समय यह शेष ज्योति दिखाई पड़ती है उसी समय पृथ्वी पर चुम्बकीय तूफ़ान[1] भी उत्पन्न होते हैं। वास्तव में इन दोनों ही घटनाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्य के वाष्पावरण में उठने वाले भयंकर तूफ़ानों से है जिनके कारण पृथ्वी पर आविष्ट कणिकाओं की बौछार अधिक प्रवल हो जाती है।

प्रकाश-मंडल की अपारदर्शिता

यह तो भौतिक विज्ञान के प्रारंभिक सिद्धान्तों से ही स्पष्ट है कि सूर्य के गर्भ में टेम्परेचर, दवाव और द्रव्य का घनत्व अत्यधिक होते हैं। दबाव संभवतः पृथ्वी के वायुमंडल के दबाव से $१०^{९}$ गुने से भी अधिक है और टेम्परेचर शायद एक करोड़ $१०^{७}$ डिगरी से भी अधिक है। किन्तु इतना दवाव होने पर भी द्रव्य हैं गैसीय अवस्था में ही क्योंकि इतने अधिक टेम्परेचर पर ठोस या द्रव अवस्था के अस्तित्व की संभावना है ही नहीं। वहाँ परमाणुओं की दशा ऐसी है कि उनके समस्त इलैक्ट्रान उन से अलग हो गये हैं। शायद कैलशियम जैसे परमाणु में एक-दो इलैक्ट्रान बच रहे हों। अधिकतर परमाणुओं के तो नाभिक[2] मात्र ही रह गये हैं।

जो प्रकाश-तरंगें वहाँ विद्यमान होती हैं वे इन अवशिष्ट द्रव्य-कणों की घनी भीड़ में से सीधी बहुत दूर तक नहीं चल सकतीं। वे इन द्रव्य-कणों से टकरा-टकरा कर और वहाँ से परावर्तित हो होकर इधर से उधर घूमती रहती हैं। उस भीड़ में से बाहर नहीं निकल सकतीं।

दूसरे वहाँ प्रकाश ऐक्स-किरणों तथा गामा किरणों के रूप में होता है। ये किरणें परमाणुओं का आयनीकरण करने में अधिक प्रभावशाली होती हैं। अतः वहाँ निरन्तर इन किरणों का शोषण होता रहता है और परमाणुओं

1. Magnetic storm 2. Nucleus

में से इलैक्ट्रान निकलते रहते हैं। फलतः ये किरणें सूर्य के पृष्ठ भाग तक पहुँच ही नहीं पातीं।

तीसरे वहाँ मुक्त इलैक्ट्रान भी विद्यमान हैं। ये प्रकाशतरंग के वैद्युत क्षेत्र में से ऊर्जा ग्रहण कर लेते हैं। इससे प्रकाश की तीव्रता घटती जाती है। ऐसी परिस्थिति में प्रकाश अधिक दूर नहीं चल सकता।

इन्हीं कारणों से सूर्य का प्रकाश-मंडल अपारदर्शी हो गया है। यही दशा कृष्ण-वस्तु[1] के गर्भ में भी होती है। यही कारण है कि कृष्ण-वस्तु विकिरण के समस्त नियम सूर्य के विकिरण पर भी लागू होते हैं।

1. Black body

परिच्छेद १४

तारों के स्पैक्ट्रम

तारों के स्पैक्ट्रम[1] के मुख्य लक्षण

इन स्पैक्ट्रमों के सम्बन्ध में तीन बातें प्रमुख हैं। (१) लगभग सभी तारों के स्पैक्ट्रमों में सूर्य के स्पैक्ट्रम के ही समान अखंड स्पैक्ट्रम की पट भूमि पर काली रेखाएँ विद्यमान रहती हैं। इससे प्रकट होता है कि सूर्य की ही तरह इन तारों के मध्य भाग में उत्तम प्रकाश मंडल होता है और उसके चारों ओर अपेक्षाकृत ठंडा वाष्पावरण होता है। कुछ थोड़े से तारे (१%) ऐसे भी हैं जिनके स्पैक्ट्रम में थोड़ी सी दीप्त रेखाएँ भी विद्यमान होती हैं।

(२) इन स्पैक्ट्रमों की समस्त रेखाएँ स्पष्टतः उन्हीं तत्त्वों की रेखाएँ हैं जो तत्त्व पृथ्वी पर पाये जाते हैं। शायद थोड़ी-सी रेखाएँ ही ऐसी हैं जिनकी पहचान अभी तक नहीं हो पायी है। यह अवश्य ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि इससे प्रकट होता है कि इस अनन्त विस्तृत विश्व भर में सर्वत्र केवल वे ही परमाणु विद्यमान हैं जो पृथ्वी पर पाये जाते हैं और वे सर्वत्र एक-समान नियमों का पालन भी करते हैं।

(३) यद्यपि तारों की संख्या इतनी अधिक है तथापि उनके स्पैक्ट्रमों में इतना कम फ़र्क है कि उन्हें बहुत ही थोड़े से वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रारम्भ में तो इनके केवल चार ही वर्ग बनाये गये थे, किन्तु अब इन वर्गों की संख्या कुछ बढ़ गयी है।

1. Stellar Spectra

स्पैक्ट्रमीय दृष्टि से तारों का वर्गीकरण

मुख्यतः समस्त तारों को ७ वर्गों में विभाजित किया गया है। यह वर्गीकरण न केवल स्पैक्ट्रमों की विभिन्नता का द्योतक है, किन्तु टेम्परेचर की विभिन्नता भी प्रकट करता है। इन ७ वर्गों का नामकरण निम्नलिखित अक्षरों के द्वारा किया गया है—O, B, A, F, G, K, M. किन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक तारे का स्पैक्ट्रम अवश्य ही ठीक इन सात प्रकार के स्पैक्ट्रमों में से किसी न किसी के जैसा होगा। वास्तव में स्पैक्ट्रमों की परिणति का क्रम अविछिन्न है। इस क्रम में सात प्रकार के स्पैक्ट्रम ऐसे हैं जिन को आसानी से पहचाना जाता है। किन्तु अनेक तारों के स्पैक्ट्रम ऐसे हैं जिन्हें इस क्रम में दो पार्श्ववर्ती वर्गों के बीच में स्थान देना होगा। अतः उन दो वर्गों के अन्तराल को दशमलव पद्धति से उपविभाजित कर दिया गया है। और उपर्युक्त प्रमुख वर्गों का अधिक यथार्थतापूर्वक वर्णन करने के लिए उन्हें O_0, B_0, A_0 . . . इत्यादि नाम दे दिये गये हैं। यथा B_0 और A_0 के बीच में B_1, B_2, B_3, . . . B_9 वर्गों के स्पैक्ट्रम हैं। B_5 वर्ग का स्पैक्ट्रम B_0 तथा A_0 के लगभग मध्य में है और B_1 वर्ग B_0 से अधिक मिलता है और A_0 से कम।

इन ७ प्रमुख वर्गों की पहचान विभिन्न लाक्षणिक रेखाओं से की जाती है। ऐसा तो नहीं है कि कोई भी स्पैक्ट्रमीय रेखा केवल एक ही वर्ग के स्पैक्ट्रम में पायी जाती हो। जिस वर्ग की वह रेखा लाक्षणिक होती है उसमें उसकी तीव्रता महत्तम होती है। उस वर्ग के पार्श्ववर्ती वर्गों में भी वह रेखा विद्यमान तो होती है किन्तु उसकी तीव्रता कम होती जाती है और दूरवर्ती वर्गों में तो उसका लोप ही हो जाता है। केवल हाइड्रोजन की रेखाएँ समस्त वर्गों में पायी जाती हैं।

O-वर्ग के तारों में आयनित हीलियम की और द्विधा तथा त्रिधा आयनित आक्सिजन (O^{++}, O^{+++}) नाइट्रोजन (N^{++}, N^{+++}) आदि की रेखाएँ लाक्षणिक हैं। इन तारों का रंग नीला होता है और इनका टेम्परेचर बहुत

ऊँचा होता है। कुछ का तो ५०००° तक पहुँच जाता है। इनका द्रव्यमान भी बहुत होता है।

"B वर्ग के तारों में अनाविष्ट हीलियम (He) और एकधा आयनित आक्सिजन (O^+) नाइट्रोजन (N^+) की रेखाएँ लाक्षणिक हैं। इनका टेम्परेचर लगभग २००००° होता है। यही कारण है कि O-वर्ग की अपेक्षा इस वर्ग में आयनीकरण कम होता है।

A-वर्ग में हाइड्रोजन (H)की रेखाओं की प्रवलता महत्तम होती है तथा आयनित Ca^+, Mg^+, Fe^+ आदि धातुओं की रेखाएँ भी प्रगट हो जाती हैं। इनका टेम्परेचर लगभग १००००° होता है। इन तारों को बहुधा हाइड्रोजनी-तारे भी कहते हैं।

F-वर्ग में हाइड्रोजन की रेखाएँ तो क्षीण हो जाती हैं और अनाविष्ट धातुओं की रेखाएँ प्रगट होती हैं। इन तारों का रंग पीताभ-श्वेत और टेम्परेचर लगभग ७०००° होता है।

G-वर्ग में हाइड्रोजन की रेखाएँ और अधिक क्षीण हो जातीं हैं और लोह (Fe) जैसी धातुओं की रेखाओं की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। इनमें भी अनाविष्ट परमाणुओं की रेखाएँ आयनित परमाणुओं की रेखाओं से अधिक प्रबल होती हैं। किन्तु आयनित कैलसियम (Ca^+) की रेखाओं की प्रवलता बहुत अधिक होती है। इनका रंग पीला और टेम्परेचर ६०००° के लगभग होता है। सूर्य इसी वर्ग (Go) का तारा है।

K-वर्ग में धातुओं की रेखाएँ हाइड्रोजन की रेखाओं से प्रवलतर हो जाती हैं, किन्तु आयनित परमाणुओं की रेखाएँ अपेक्षाकृत क्षीण होती हैं। इन तारों का रंग नारंगी होता है और टेम्परेचर लगभग ४०००°।

M-वर्ग में धातुओं की नीचे टेम्परेचर पर उत्पन्न होने वाली रेखाएँ प्रबल होतीं हैं। और टिटेनियम आक्साइड अणु के बैंड भी विद्यमान होते हैं। ये बैंड प्रायः K_5 वर्ग से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। इन तारों का रंग लाल और टेम्परेचर लगभग ३०००° होता है। इन सात प्रधान वर्गों के अतिरिक्त तीन वर्ग और भी है R, N, S।

R तथा N-वर्गों में कार्बन (C) तथा सायनोजन (CN) के बैंड होते हैं जिनकी प्रबलता R वर्ग में कम तथा N वर्ग में अधिक होती है। N वर्ग के तारे बहुत ठंढे होते हैं। R वर्ग के इन की अपेक्षा कुछ गर्म। दोनों ही का रंग लाल होता है। इन्हें कार्बनी-तारे भी कहते हैं। S वर्ग के तारे और भी अधिक लाल और ठंढे होते हैं। उनमें ज़िरकोनियम आक्साइड तथा टिटेनियम आक्साइड के बैंड भी होते हैं।

पट भूमि से अधिक दीप्तिमान रेखाएँ O तथा B-वर्ग के तारों में तथा दूसरी ओर M, N तथा S-वर्ग के तारों में होती हैं। बीच के वर्गों में कदाचित् ही पायी जाती हैं। O-वर्ग के जिन तारों में ये दीप्त रेखाएँ बहुत चौड़ी पटियोंका रूप ले लेती हैं वे वुल्फ-रायट[1] तारे कहलाते हैं।

नीहारिकाओं[2] के स्पैक्ट्रमों में अखंड दीप्त पटभूमि होती ही नहीं। केवल दीप्त रेखाएँ ही होती हैं। ऐसे स्पैक्ट्रम P-वर्ग के कहलाते हैं।

नवतारों[3]का स्पैक्ट्रम प्रारम्भ में बिलकुल भिन्न प्रकार का होता है। इसमें अखंड दीप्त पटभूमि पर थोड़ी-सी दीप्त और काली रेखाएँ होती हैं। किन्तु जब तारे की ज्योति महत्तम हो चुकती है तब तुरन्त ही उसमें बहुत चौड़ी चौड़ी रेखाएँ प्रकट हो जाती हैं। ये होतीं तो तत्त्वों की साधारण दीप्त रेखाएँ ही हैं किन्तु इन तारों के विस्तार की वृद्धि के कारण दृष्टिपथ की दिशा में परमाणुओं का वेग इतना अधिक होता है कि डापलर विस्थापन के कारण ये रेखाएँ चौड़ी हो जाती हैं। ऐसे स्पैक्ट्रम को Q-वर्ग का स्पैक्ट्रम कहते हैं।

स्पैक्ट्रमीय वर्गों का रहस्य

तारों के विभिन्न वर्गों की लाक्षणिक रेखाओं के अध्ययन से तुरन्त ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इन वर्गों की विभिन्नता का कारण यह नहीं है कि

1. Wolf Rayet 2. Nebula 3. Nova

इनमें रासायनिक तत्त्वों की मात्राओं के अनुपात में अन्तर होता है। यदि ऐसा होता तो कुछ तारों में किसी एक तत्त्व (यथा लोह)की रेखाएँ तो बहुत प्रबल हो जातीं और किसी अन्य तत्त्व (यथा कैलसियम) की रेखाएँ प्रायः लुप्त हो जातीं। किन्तु ऐसा किसी भी तारे के स्पैक्ट्रम में नहीं पाया गया। वस्तुतः तारों के स्पैक्ट्रमों की विभिन्नता का भौतिक कारण केवल परमाणुओं के उत्तेजन की विभिन्नता ही है। O-वर्ग के तारों में यह उत्तेजन इतना अधिक होता है कि अनेक परमाणुओं में से दो-दो और तीन-तीन इलैक्ट्रान निकल जाते हैं और हीलियम-जैसे वे परमाणु भी आयनित हो जाते हैं जिनके आयनी करण के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह उत्तेजन वर्ग-क्रम में उत्तरोत्तर घटता जाता है और F-वर्ग में आयनित परमाणुओं की संख्या बहुत ही कम हो जाती है। इसके बाद के वर्गों में अनाविष्ट परमाणुओं की रेखाओं का आधिक्य होता जाता है। M-वर्ग में तो यह उत्तेजन इतना कम हो जाता है कि अणुओं का भी विघटन नहीं हो पाता और स्पैक्ट्रम में अविघटित अणुओं के बैंड भी दिखाई देते हैं।

और अब हम निश्चयपूर्वक यह भी कह सकते हैं कि उत्तेजन की इस विभिन्नता का मुख्य कारण तारों के टेम्परेचरों की विभिन्नता ही है। उनके स्पैक्ट्रमों की विभिन्नता को पूर्णरूप से समझने के लिए अन्य किसी कारण को ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। इस तथ्य का समर्थन इस बात से भी हो जाता है कि वर्ग-क्रम में तारों के रंग भी इसी क्रम से बदलते हैं।

तारों के स्पैक्ट्रमों पर दबाव का प्रभाव

तारों के वाष्पावरणों का घनत्व इतना कम होता है कि इस दबाव में फ़र्क होने से किसी भी स्पैक्ट्रमीय रेखा की चौड़ाई में या उसके विस्थापन में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ सकता। किन्तु वहाँ परमाणुओं के आयनीकरण

1. Excitation

में बहुत अन्तर हो जाता है। मान लो कि दो तारों के टेम्परेचर तो बराबर हैं, किन्तु एक में दबाव दूसरे की अपेक्षा अधिक है। तब स्पष्ट ही है कि दूसरे तारे में आयनीकरण पहले की अपेक्षा अधिक होगा। अतः कम दबाव वाले तारों में आयनित परमाणुओं की स्पैक्ट्रमीय रेखाओं की तीव्रता अधिक होगी और अनायनित परमाणुओं की रेखाओं की तीव्रता कम होगी।

वास्तव में स्पैक्ट्रमीय रेखाओं की तीव्रता तारों के टेम्परेचर तथा दबाव दोनों ही पर निर्भर है। यदि टेम्परेचर को किसी उपाय से नाप लिया जाय तो विभिन्न आयनित तत्त्वों की स्पैक्ट्रमीय रेखाओं की तीव्रताओं के निरीक्षण से तारों के वाष्पावरण के दबाव का परिकलन यथार्थतापूर्वक हो सकता है। इस प्रकार पता चला है कि तारों के उत्क्रामी आवरणों के नीचे के भागों में दबाव पृथ्वी के वायुमण्डलीय दबाव से प्रायः $१०^{-४}$ और ऊपर के भागों में प्रायः $१०^{-१०}$ गुना होता है। सूर्य में भी दबाव के लगभग यही मान पाये गये हैं।

दानव[1] तथा वामन[2] तारों के दबाव

यह बताया जा चुका है कि दानव तारों की अपेक्षा वामन तारों में गुरुत्वाकर्षण प्रायः १०० गुना प्रबल होता है। अतः यह निश्चित है कि दानव तारों में दबाव कम होता है और इसलिए उनमें आयनीकरण अपेक्षाकृत कम टेम्परेचर पर हो जाता है। अतः यह प्रगट है कि यदि किसी दानव तारे के और किसी वामन तारे के स्पैक्ट्रमों में किसी विशेष आयनित रेखा की प्रबलता बराबर हो तब यह निश्चित है कि दानव का टेम्परेचर वामन की अपेक्षा कम होगा। यही परिणाम ऐसे तारों के वर्णांकों[3] की तुलना से भी निकलता है।

1. Giant 2. Dwarf 3. Colour index

दानव तारों के वृहत् विस्तार तथा बहुत कम दबाव का एक प्रमाण यह भी है कि उनकी स्पैक्ट्रमीय रेखाएँ अत्यन्त प्रबल होने पर भी बहुत पतली होती हैं।

तारों का स्पैक्ट्रमीय लम्बन[1]

परिच्छेद १० में बताया जा चुका है कि किसी तारे का लम्बन (p) नापने की एक विधि यह है कि उसका निरपेक्ष कान्तिमान[2] M नाप लिया जाय। यह कान्तिमान M उस तारे के स्पैक्ट्रम के अध्ययन से भी पर्याप्त यथार्थतापूर्वक मालूम हो सकता है। इसकी व्यावहारिक विधि निम्नलिखित है।

मान लीजिए कि हमने एक ही स्पैक्ट्रमीय वर्ग के बहुत-से तारों के निरपेक्ष कान्तिमान भी मालूम कर लिये हैं और उनके स्पैक्ट्रम भी प्राप्त कर लिये हैं। अब मान लीजिए कि उनके स्पैक्ट्रमों में से हमने दो रेखाएँ ऐसी चुन लीं कि एक तो दानव तारों में प्रबल है और दूसरी वामन तारों में। और तब उपर्युक्त प्रत्येक तारे के स्पैक्ट्रम में इन दोनों रेखाओं की तीव्रताओं का अनुपात नाप लिया। और एक लेखा-चित्र ऐसा बनाया कि जिसमें प्रत्येक तारा एक ऐसे बिन्दु के द्वारा निरूपित किया गया हो, जिसके निर्देशांक[3] तारे के कान्तिमान तथा उपर्युक्त दोनों स्पैक्ट्रमीय रेखाओं के तीव्रता-अनुपात हों। तब हम देखेंगे कि उन सब तारों के निरूपक विन्दु एक मसृण वक्र[4] पर स्थित हैं। अतः यह समझ लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि इस वर्ग के प्रत्येक तारे का निरूपक विन्दु भी इसी वक्र पर स्थित होगा।

1. Spectroscopic parallax
2. Absolute magnitude
3. Coordinates
4. Smooth Curve

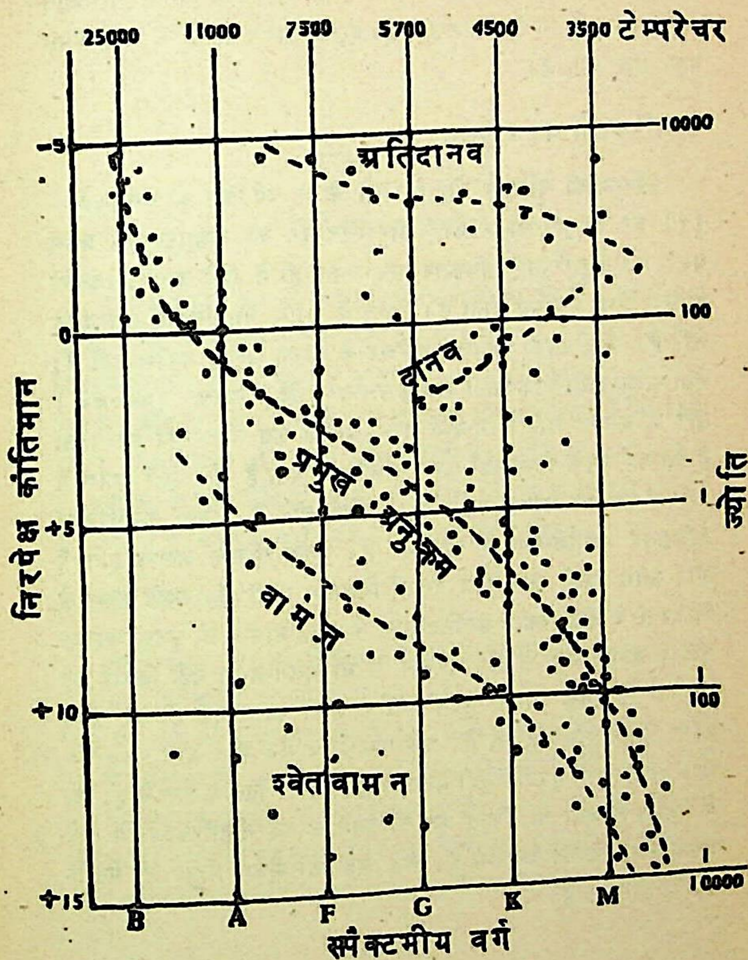
इसलिए इस वर्ग के किसी अन्य तारे का निरपेक्ष कान्तिमान मालूम करने का उपाय यह है कि उसके स्पैक्ट्रम में उक्त रेखाओं का तींव्रता-अनुपात नाप लिया जाय। तब उपर्युक्त वक्र के द्वारा उस तारे का निरपेक्ष कान्तिमान तुरन्त ज्ञात हो सकता है। इसे स्पैक्ट्रमीय निरपेक्ष कान्तिमान कहते हैं। यह विधि अत्यन्त यथार्थतापूर्ण प्रमाणित हुई है और इसकी पुष्टि सिद्धान्ततः भी हो गयी है।

इस प्रकार कान्तिमान नाप कर तारे का जो लम्बन परिकलन द्वारा प्राप्त किया जाता है उसे स्पैक्ट्रमीय लम्बन कहते हैं। स्पष्ट है कि इस विधि के द्वारा बहुत कम परिश्रम से ही तारों की दूरी यथार्थतापूर्वक नापी जा सकती है।

स्पैक्ट्रमीय वर्ग और निरपेक्ष चाक्षुस कांतिमान का सम्बन्ध

अगले चित्र में तारों के स्पैक्ट्रमीय वर्ग तथा उनके निरपेक्ष कान्तिमान (अथवा उनकी नैज ज्योति) का लेखा चित्र दिखाया गया है। इसमें प्रत्येक बिन्दु एक तारे का निरूपक है। उसका भुज[1] तारे का स्पैक्ट्रमीय वर्ग है और उसकी कोटि[2] कान्तिमान है। इस चित्र से प्रगट है कि अधिकतर तारे उस प्रधान अनुक्रम में सम्मिलित हैं जो दाहिनी ओर नीचे से बायीं ओर ऊपर तक विकर्णतः[3] विस्तृत है। सूर्य इसी अनुक्रम के मध्य में अवस्थित है। वह Go वर्ग का है और उसका कान्तिमान + ४·८५ है। अपेक्षाकृत ठंडे लाल वामन तारों से लेकर बहुत उत्तप्त नीले दानव तारे तक इसी अनुक्रम में सम्मिलित हैं। अन्य दानव तथा अति दानव[4] तारे इस अनुक्रम से ऊपर की ओर स्थित हैं और श्वेत वामन तारे नीचे की ओर। अति दानव तारों के कान्तिमान छोटे होते हैं अर्थात् उनकी ज्योति बहुत अधिक

1. Absisca 2. Ordinate 3. Diagonally
4. Super giant


25000
11000
7500
5700
4500
3500 टेम्परेचर
10000
100
1
1/100
1/10000
ज्योति
अतिदानव
दानव
प्रमुख अनुक्रम
वामन
श्वेत वामन
निरपेक्ष कांतिमान
-5
0
+5
+10
+15
B
A
F
G
K
M
स्पैक्टमीय वर्ग

आकृति १४.१

होती है। तथापि उनके पृष्ठीय टेम्परेचर कम हैं। श्वेत वामनों की ज्योति कम है, किन्तु उनके टेम्परेचर ऊँचे हैं। इसका कारण यह है कि उनके व्यास बहुत छोटे होते हैं।

नीहारिकाओं का स्पैक्ट्रम

स्पैक्ट्रम की दृष्टि से नीहारिकाओं के दो वर्ग किये जा सकते हैं—(१) हरे रंग की नीहारिकाएँ और श्वेत रंग की नीहारिकाएँ। प्रथम प्रकार की नीहारिकाएँ अधिकतर आकाशगंगा ही में पायी जाती हैं। इनका स्पैक्ट्रम दीप्त रेखामय होता है। किन्तु ये गैसीय नीहारिकाएँ स्वतःदीप्त नहीं हैं। और इनका प्रकाश टेम्परेचर के कारण उत्पन्न प्रकाश नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि किसी अत्यन्त उत्तप्त पृष्ठीय (टेम्परेचर १०००००°) तारे के अत्यन्त छोटे तरंग-दैर्घ्य वाला प्रकाश जब नीहारिका पर पड़ता है तब वह उसके परमाणुओं को उत्तेजित कर देता है और इसी कारण ये विभिन्न एक-वर्ण प्रकाश उसमें से उत्सर्जित होते हैं। श्वेत नीहारिकाएँ अधिकतर आकाश-गंगा से बहुत दूर हैं। उनके स्पैक्ट्रम अखण्ड होते हैं और उनमें काली फ्रानहोफ़र रेखाएँ विद्यमान होती हैं। इससे स्पष्ट है कि या तो ये नीहारिकाएँ अगणित तारों के समूह मात्र हैं जो उनकी अत्यन्त दूरी के कारण बड़ी से बड़ी दूरबीन से भी अलग-अलग नहीं दिखाई पड़ सकते। या उनके अत्यन्त सूक्ष्म कणों से तारों का प्रकाश ही परावर्तित होकर हमारे पास पहुँचता है। जब तक २५० सें० मी० और ५०० सें० मी० व्यास वाली दूरबीनें नहीं बनी थीं तब तक तो द्वितीय बात के ही पक्ष में बहुमत हो गया था, किन्तु अब तो इनमें से कई नीहारिकाओं में तारे अलग अलग दिखाई देने लगे हैं। अतः अब फिर झुकाव पहले ही मत के पक्ष में हो गया है।

परिच्छेद १५

तारे का अन्तरंग[1]

तारों के जितने भाग का प्रत्यक्षतः प्रेक्षण किया जा सकता है वह अत्यन्त छोटा है और अपेक्षाकृत पतला पृष्ठदेशीय स्तर मात्र है। उनका अत्यन्त विशाल अन्तरंग हमारी पहुँच से बाहर है। हम तारे का व्यास, आयतन, द्रव्यमान और टेम्परेचर नाप सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि उसके पृष्ठ से कितनी ऊर्जा और ऊष्मा विकीर्ण होती है। इतनी ही बातों के ज्ञान की सहायता से तथा भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के द्वारा हम तारे के अन्तरंग के विषय में जो अनुमान लगा सकते हैं उससे ही हमें सन्तोष करना पड़ता है।

यांत्रिक सन्तुलन[2]

सबसे पहली और आवश्यक बात तो यह है कि तारे के द्रव्य में यान्त्रिक सन्तुलन होना चाहिए। तारे के प्रत्येक द्रव्यकण पर दो विरोधी बल लगते रहते हैं। एक तो है गुरुत्वाकर्षण के कारण जो द्रव्यकण को तारे के केन्द्र की ओर खींचता है। दूसरा है दबाव के कारण जो उसे विपरीत दिशा में ले जाने का प्रयत्न करता है। सन्तुलन के लिए ये दोनों बल बराबर होने चाहिए। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि तारे के अन्तरंग में किसी भी स्थान पर दबाव इतना होना चाहिए कि वह बाह्य स्तरों का बोझ सँभाल सके। अतः

1. The Interior of a Star
2. Mechanical equilibrium

स्पष्ट ही है कि द्रव्य का घनत्व केन्द्र की ओर उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है। केन्द्र पर उसका मान महत्तम हो जाता है और दबाव पृथ्वी के वायुमण्डल के दबाव की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक होता है।

सममिति[1] की दृष्टि से यह भी प्रगट है कि तारे की आकृति गोलाकार[2] ही होनी चाहिए तथा केन्द्र से बराबर दूरी वाले स्थानों पर घनत्व भी बराबर होना चाहिए। अक्षीय घूर्णन के कारण इस गोल आकृति में जो थोड़ा गोलाभत्व[3] आ जाता है और कुछ अन्य प्रभाव भी उत्पन्न हो जाते हैं उन्हें इस स्थूल विवेचन में उपेक्षणीय समझा जा सकता है।

अंतरंग की गैसीय अवस्था

अपनी प्रयोगशालाओं के प्रेक्षणों के द्वारा हमें मालूम है कि कोई भी गैस द्रव अवस्था में तब ही परिणत हो सकती है जब उसका टेम्परेचर उसके क्रान्तिक टेम्परेचर[4] से कम हो। यदि टेम्परेचर इससे अधिक हो तो दबाव चाहे कितना ही क्यों न हो बढ़ा दिया जाय फिर भी उसकी अवस्था गैसीय ही रहती है। यह क्रान्तिक टेम्परेचर विभिन्न प्रकार की गैसों के लिए विभिन्न परिमाणों का होता है, किन्तु किसी भी द्रव्य के लिए इतना ऊँचा नहीं होता जितना कि तारों के पृष्ठीय स्तर का पाया गया है। और यह भी स्पष्ट है कि अन्तरंग भाग का टेम्परेचर तो इससे भी बहुत ऊँचा होना चाहिए क्योंकि वहाँ से ऊष्मा निरन्तर पृष्ठ की ओर प्रवाहित होती रहती है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि तारों के अन्तरंग में द्रव्य की अवस्था गैसीय ही है और घनत्व बहुत अधिक होने पर भी वहाँ द्रव्य आदर्श गैस[5] के समस्त नियमों का यथार्थतापूर्वक पालन करता है।

1. Symmetry
2. Spherical
3. Spheroidicity
4. Critical temperature
5. Perfect gas

इस विचित्र-सी जान पड़ने वाली बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि आयनीकरण के कारण प्रत्येक परमाणु का व्यास बहुत ही छोटा हो जाता है। अतः दबाव और घनत्व की अधिकता होने पर भी इन द्रव्य-कणों के बीच में शून्याकाश का विस्तार बहुत अधिक होता है अर्थात् जितने आयतन में ये कण फैले हुए रहते हैं उसकी तुलना में इन कणों का—नाभिकों और इलैक्ट्रानों का—वास्तविक आयतन अत्यन्त ही छोटा होता है। फलतः इस द्रव्य की अवस्था ठीक आदर्श गैस के समान ही होती है और वह बायल के नियम[1] का यथार्थतापूर्वक पालन करता है।

आदर्श गैस का अवस्था-समीकरण[2] है—

$$p=\frac{R}{m}\rho T$$

जहाँ $P=$ दबाव, $\rho=$ घनत्व, $T=$ परम टेम्परेचर[3], $m=$ माध्य अणु-भार तथा R ऐसा सार्वत्रिक नियतांक[4] है जिसका मान समस्त गैसों के लिए बराबर रहता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि दबाव की अधिकता का भी यह आवश्यक परिणाम होगा कि तारों के अन्तरंग का टेम्परेचर लाखों डिगरी का हो।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि टेम्परेचर की अधिकता के कारण परमाणुओं का आयनीकरण भी प्रचुर मात्रा में हो जाता है और इस अन्तरंग की गैस में अधिकतर परमाणु इलैक्ट्रानविहीन होते हैं। और मुक्त इलैक्ट्रानों की संख्या भी बहुत बढ़ जाती है। अतः इस गैस का परमाणु-भार बहुत ही कम होता है क्योंकि गैस के समस्त द्रव्य-कणों के माध्य भार ही का तो नाम परमाणु-भार है। यथा आक्सिजन परमाणु का भार १६ है। इसमें एक नाभिक और ८ इलैक्ट्रान होते हैं। जब ये आठों इलैक्ट्रान नाभिक से अलग

1. Boyle's Law
2. Equation of state
३. Absolute temperature
4. Universal constant

हो जाते हैं तब द्रव्य-कणों की संख्या ९ हो जाती है और इन सबका औसत भार १६/९=१·८ हो जाता है। पोटैशियम (भार ३९) से इसी प्रकार २० द्रव्य-कण प्राप्त होंगे और उनका औसत भार होगा १·९६। यूरेनियम (भार २३८) में से ९३ द्रव्य-कण प्राप्त होंगे और उनका औसत भार होगा २·५५। अतः हाइड्रोजन को छोड़कर जिसके द्रव्य-कणों का औसत भार ०·५ होगा, अन्य सभी तत्त्वों से प्राप्त द्रव्य-कणों का औसत भार लगभग २ के बराबर समझा जा सकता है। अर्थात् कुछ थोड़े-से ऐसे तारों को छोड़ कर जिनमें हाइड्रोजन की मात्रा अधिक होती है, शेष सभी तारों को हम एक ही प्रकार के द्रव्य के बने हुए समझ सकते हैं।

गैसीय तारों के लिए लेन[1] के नियम

तारों के अन्तरंग को आदर्श गैसमय मान कर लेन ने १८७० में तारों के दबाव, टेम्परेचर और घनत्व का परिकलन गैस के नियमों के अनुसार किया था। इसका परिणाम यह निकला कि यदि तारे का द्रव्यमान स्थिर रहे और उसकी त्रिज्या (r) बदले तो घनत्व $\frac{1}{r^3}$ का, दबाव $\frac{1}{r^4}$ का तथा टेम्परेचर $\frac{1}{r}$ का समानुपाती होता है। साधारणतः यह अन्तिम परिणाम ही लेन का नियम कहलाता है।

इस नियम के द्वारा एक विचित्र विरोधाभास[2] प्रगट होता है कि जितनी ही अधिक ऊष्मा तारे में से निकलती जाती है उतना ही वह अधिक गरम होता जाता है। बात यह है कि जब विकिरण के कारण तारे की ऊष्मा घटती है तो तारा सिकुड़ता है और उसकी त्रिज्या भी घटती है। किन्तु लेन के नियमानुसार इससे तारे का टेम्परेचर बढ़ जाता है। इसका कारण गुरुत्वाकर्षण

1. Lane 2. Paradox

है जो त्रिज्या के घटने से बढ़ जाता है। फलतः द्रव्य-कण केन्द्र की ओर अधिक वेग से दौड़ने लगते हैं और उनकी टक्करों के कारण औसत गतिज ऊर्जा बढ़ जाती है। यही टेम्परेचर की वृद्धि के रूप में प्रगट होती है।

विकिरण का दवाव

तारों के द्रव्य के यान्त्रिक सन्तुलन में हमने अब तक गुरुत्वाकर्षण बल का विरोधी केवल यान्त्रिक दवाव के बल को ही समझा था। किन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि प्रकाश तथा विकिरण भी जिस वस्तु पर पड़ते हैं उस पर दवाव डालते हैं। तारे के अन्तरंग में विकिरण की प्रचुरता रहती ही है क्योंकि वहाँ टेम्परेचर बहुत ऊँचा होता है। अतः वहाँ यह विकिरण का दवाव बहुत बढ़ जाता है और यह भी गुरुत्वाकर्षण का विरोध करता है। तारों के टेम्परेचर और दवाव के परिकलन में इस बल का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

ऐडिन्गटन[1] की परिकल्पना

ऐडिन्गटन ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक गवेषणाओं के लिए तारों के एक ऐसे प्रतिरूप[2] का प्रतिपादन किया है जिसका समर्थन प्रेक्षणोंके द्वारा अच्छी तरह हो जाता है। उन्होंने एक विशेष नियमानुसार संगठित तारे की परिकल्पना की, जिसके प्रत्येक भाग में विकिरण-दवाव तथा यान्त्रिक-दवाव-का अनुपात स्थिर रहता है। ऐसे तारे के लिए उन्होंने सिद्धान्ततः यह परिणाम निकाला कि यान्त्रिक दवाव घनत्व के $\frac{4}{3}$ –वें घात (अर्थात् $\rho^{\frac{4}{3}}$) का समानुपाती होता है। आदर्श गैस के नियमों के साथ ही इस नियम का उपयोग करने से तथा कुछ अन्य बातों को भी ध्यान में रख कर तारे के प्रत्येक भाग में घनत्व का परिकलन हो सकता है। ऐडिन्गटन का अनुमान है कि उनके परिकल्पित

1. Eddington 2. Model

तारे के केन्द्रीय भाग का घनत्व पूरे तारे के माध्य घनत्व से लगभग २० गुना होता है। इसं हिसाब से सूर्य के केन्द्र का घनत्व जल की अपेक्षा २८ गुना, केन्द्रीय दबाव पृथ्वी के वायुमण्डलीय दबाव से ३·६×१०^{१०} गुना तथा केन्द्रीय टेम्परेचर २·९×१०^{७} डिग्री होने चाहिए। अन्य तारों के अन्तरंग के घनत्व, दवाव और टेम्परेचर भी इसी प्रकार मालूम किये जा सकते हैं।

तारे के अंतरंग में से विकिरण का निकास

यह तो प्रगट ही है कि तारे में से विकिरण प्रचुर मात्रा में निकलता रहता है और इससे उसकी ऊष्मा घटती रहती है। फिर भी आश्चर्य है कि उसका टेम्परेचर बहुत घटता नहीं। अतः इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि किसी न किसी प्रकार उसके अन्तरंग में ऊष्मा की उत्पत्ति होती रहती है और वही पृष्ठीय भाग की ओर प्रवाहित होती रहती है। ऊष्मा का यह संचार मुख्यतः विकिरण के द्वारा ही होता है। चालन[1] और संवहन[2] की क्रियाएँ विकिरण की तुलना में उपेक्षणीय होती हैं। अर्थात् द्रव्य-कण—अणु, परमाणु या इलैक्ट्रान—इस ऊष्मा-प्रवाह में अधिक सहायता नहीं करते। इसी बात को हम यों कह सकते हैं कि विकिरण के अधिक दबाव के स्थान से कम दवाव की ओर ऊष्मा का प्रवाह विकिरण के रूप में ही होता है। किन्तु उसके मार्ग में द्रव्य-कणों की भीड़ और उनके द्वारा अवशोषण, पुनरुत्सर्जन और प्रकीर्णन[3] की क्रियाओंके कारण इस प्रवाह में वाधा अवश्य पड़ती है। फलतः इस प्रवाह का वेग घट जाता है और तारे में अपारदर्शिता भी आ जाती है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि यह वाधा टेम्परेचर के $\frac{7}{2}$ वें घात ($T^{\frac{7}{2}}$) की समानुपाती होती है। इस बाधा को ध्यान में रख कर ऐडिन्गटन के प्रतिरूपी तारे के लिए यह परिकलन किया गया कि वह प्रति सैकण्ड कितनी

1. Conduction 2. Convection
3. Scattering

ऊर्जा अपने चारों ओर के आकाश में उत्सर्जित करेगा। इससे ज्ञात हुआ कि यह उत्सर्जित ऊर्जा तारे के द्रव्यमान M के $\frac{7}{2}$ वें घात ($m^{\frac{7}{2}}$) की अनुपाती होती है। तारे के रासायनिक संगठन का अथवा उसके व्यास का इस उत्सर्जन की दर पर अधिक असर नहीं होता। मुख्यतः वह तारे के द्रव्यमान ही पर अवलम्बित होती है। हाँ, जिन तारों में हाइड्रोजन की बहुलता होती है उनमें इस नियम का व्यतिक्रम हो जाता है। वस्तुतः इस व्यतिक्रम के परिमाण के द्वारा ही तारे के रासायनिक संगठन में हाइड्रोजन के अनुपात का अनुमान किया जा सकता है। इसी विधि से यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि सूर्य में समस्त द्रव्यमान का ३३% भाग हाइड्रोजन है।

इस प्रकार ऐडिंग्टन ने तारे के निरपेक्ष कान्तिमान और द्रव्यमान के सम्बन्ध को व्यक्त करनेवाला सूत्र सिद्धान्ततः प्राप्त कर लिया और कान्तिमान को नाप कर तारे के द्रव्यमान का परिकलन करने की विधि मालूम कर ली। नीचे दी हुई सारणी में इस सैद्धान्तिक विधि से प्राप्त द्रव्यमान दिये गये हैं और तुलना के लिए द्रव्यमान तथा प्रेक्षित ज्योति के लेखाचित्र (चित्र ७.८) से प्राप्त द्रव्यमान भी दिये गये हैं।

निरपेक्ष कान्तिमान	सिद्धान्ततः प्राप्त द्रव्यमान	प्रेक्षित द्रव्यमान	निरपेक्ष कतिमांन	सिद्धान्ततः प्राप्त द्रव्यमान	प्रेक्षित द्रव्यमान
१७.५	०.०६४	—	२.५	१.७२	१.७२
१५.०	०.११	०.१४	०.०	३.७०	४.००
१२.५	०.१८	०.२२	—२.५	१०.१	१२.०
१०.०	०.३१	०.३४	—५.०	३५.	—
७.५	०.५३	०.५५	—७.५	१४८	
५.०	०.९२	०.९१	—१०.०	६७५	

इस सारणी से स्पष्ट हो जाता है कि सैद्धान्तिक और प्रेक्षित द्रव्यमानों में बहुत कम अन्तर है। प्रेक्षण की दोनों सीमाओं पर लेखाचित्र संशयपूर्ण है और वहीं यह अन्तर भी अधिक है। अतः यह स्वीकार करने में अधिक

आपत्ति नहीं हो सकती कि ऐडिन्गटन की परिकल्पना के अनुसार तारों का अन्तरंग वास्तव में गैसीय ही है।

इस अध्ययन से एक विचित्र बात यह प्रगट हुई कि उपर्युक्त गैसीय अवस्था की परिकल्पना न केवल ऐसे तारों के लिए ठीक निकली जिनका घनत्व बहुत कम हैं, किन्तु जिन तारों का घनत्व लोहे से भी अधिक है उनके लिए भी उतनी ही ठीक निकली। उस समय कोई भौतिकीज्ञ यह सोच भी नहीं सकता था कि इतना अधिक घनत्व होने पर भी तारे का द्रव्य गैसीय अवस्था में हो सकता है।

किन्तु कुछ तारे ऐसे भी पाये गये जिनके निरपेक्ष तेजाक उनके द्रव्यमान को देखते हुए बहुत ही कम निकले। जैसे सीरियस[1] तारे के साथी तारे का द्रव्यमान सूर्य के ०·८–वें भाग के बराबर है, किन्तु उससे उत्सर्जित प्रकाश सूर्य के प्रकाश के १।३६०वें भाग के ही बराबर है। पहले तो यह समझा गया था कि सम्भवतः यह कोई कम टेम्परेचर वाला लाल तारा है। किन्तु १९१० में पता चला कि वास्तव में वह श्वेत तारा है और पीतवर्ण सूर्य की अपेक्षा उसका टेम्परेचर ज्यादा है। और जब उसका व्यास नापा गया तो मालूम हुआ कि वह केवल ५०००० किलोमीटर (लगभग ३०००० मील) मात्र है। अतः उसका घनत्व जल की अपेक्षा ३०००० गुना अधिक निकला। अब तो ऐसे ही अन्य तारे भी पाये गये हैं और किसी-किसी में तो यह घनत्व दस लाख ($१०^६$) तक पहुँच गया है। इतना अधिक घनत्व कई वर्षों तक रहस्य ही बना रहा। किन्तु जब तारों के अन्तरंग के द्रव्य की अवस्था के सम्बन्ध में इस परिच्छेद में बतायी हुई बातें मालूम हो गयीं तब समझ में आया कि इस अत्यधिक घनत्व का कारण क्या है। इन तारों में आयनित परमाणुओं के भग्नांश—नाभिक और इलैक्ट्रान—भी बहुत पास-पास आ गये हैं और उनके मध्यवर्ती शून्याकाश बहुत कम हो गया है। अतः वहाँ द्रव्य की अवस्था

1. Sirius

आदर्श गैस-जैसी नहीं है और उसकी संपीड्यता[1] बहुत कम है। अतः उनके अन्तरंग का टेम्परेचर उपर्युक्त सैद्धान्तिक टेम्परेचर से कम होता है।

तारों के इस अत्यधिक घनत्व का प्रमाण आइनस्टाइन के आपेक्षिकता-सिद्धान्त से भी प्राप्त हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में स्थित परमाणु से उत्सर्जित प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य कुछ बढ़ जाता है और उसकी स्पैक्ट्रमीय रेखाएँ स्पैक्ट्रम के लाल छोर की ओर थोड़ी-सी हट जाती हैं। यह विस्थापन तारे के द्रव्यमान का समानुपाती तथा उसकी त्रिज्या का उत्क्रमानुपाती होता है। अतः स्पष्ट ही है कि छोटे व्यास वाले श्वेत वामन तारों में यह विस्थापन अन्य बड़े तारों की अपेक्षा अधिक होगा। नापने से परिणाम बिलकुल इस सिद्धान्त के अनुकूल निकला है। सैद्धान्तिक और प्रेक्षित विस्थापनों में ५% से अधिक अन्तर नहीं निकला।

तारों के द्रव्यमान और ज्योति का यह सम्बन्ध इतना विश्वसनीय मालूम देता है कि हम उसका प्रेक्षण की सीमाओं से बाह्यवेशन[2] भी कर सकते हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि हम यह आशा नहीं कर सकते कि हम किसी ऐसे तारे को देख पावेंगे जिसका द्रव्यमान सूर्य के दशमांशके बराबर हो। उसकी ज्योति अत्यन्त क्षीण होगी। और अधिक से अधिक ज्योतिवाले तारों का द्रव्यमान भी सूर्य से २००—३०० गुने से अधिक नहीं हो सकता।

यद्यपि तारे का ऐडिन्गटन द्वारा परिकल्पित प्रतिरूप प्रेक्षित तथ्यों की व्याख्या करने में बहुत सफल हुआ है तथापि यह नहीं समझना चाहिए कि यह प्रतिरूप समस्त सूक्ष्म बातों को यथार्थतापूर्वक व्यक्त कर सकता है। वस्तुतः उसकी मूल धारणा ही पूर्णतः सत्य नहीं है। यह मानने के अनेक कारण हैं कि वास्तव में विकिरण-दबाव और यान्त्रिक-दबाव का अनुपात

1. Compressibility
2. Extrapolation

तारे में सर्वत्र बिलकुल बराबर नहीं होता। अतः अनेक प्रकार के अन्य प्रतिरूपों की भी परिकल्पना की गयी है। किन्तु प्रतिरूप चाहे कैसा भी हो यह प्रमाणित किया जा सकता है कि कुछ नियतांकों[1] को छोड़कर द्रव्यमान और निरपेक्ष कान्तिमान का सम्बन्ध बहुत कुछ वही निकलेगा जो ऐडिन्गटन के प्रतिरूप से निकला है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐडिन्गटन की गवेषणाओं ने तारों के अन्तरंग के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को बहुत बढ़ाया है।

1. Constants

परिच्छेद १६

तारों की ऊर्जा का उद्गम

सूर्य में से ऊष्मा का उत्सर्जन

परिच्छेद ११ में हम देख चुके हैं कि सूर्य में से प्रति सैकण्ड विकिरण के रूप में उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा का परिमाण $३\cdot८ \times १०^{३३}$ अर्ग हैं। अर्थात् प्रतिवर्ष सूर्य में से $२ \cdot ८ \times १०^{३३}$ कलरी ऊष्मा निकल जाती है।

और सौर नियतांक[1] का मान २ कलरी है। अर्थात् पृथ्वी के पृष्ठ पर पहुँचने वाली सूर्य की ऊष्मा का परिमाण २ कलारी प्रति वर्ग सें० मी० प्रति मिनट है।

पृथ्वी का पृष्ठीय टेम्परेचर सूर्य से प्राप्त हुई इस ऊष्मा का ही परिणाम है। यदि सौर नियतांक का मान दो गुना हो जाय तो पृथ्वी का टेम्परेचर १७° से बढ़कर ७७° सेण्टीग्रेड हो जाय और यदि सौर नियतांक घट कर आधा हो जाय तो पृथ्वी का टेम्परेचर घट कर -२३° सैण्टीग्रेड से भी कम हो जाय। दोनों ही अवस्थाओं में पृथ्वी पर कोई जीव-जन्तु या पेड़-पौधे जीवित नहीं रह सकते।

सूर्य की आयु

भूगर्भ-विज्ञान[2] हमें बताता है कि पृथ्वी की चट्टानों में जीवाश्मों[3] या फ़ासिलों के रूप में पृथ्वी का प्राचीन इतिहास सुरक्षित है। इन चट्टानों में

1. Solar Constant 2. Geology 3. Fossil

जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों के शरीर की प्रस्तरीभूत प्रतिकृतियाँ सुरक्षित हैं। अतः स्पष्ट है कि जिस समय इन चट्टानों का निर्माण हुआ था उस समय वे पेड़ और जानवर पृथ्वी पर जीवित थे। ऐसी चट्टानों में प्राक्-कैम्ब्रियन[1] चट्टानें ही सबसे पुरानी हैं। रेडियम-धर्मिता या स्वोत्सर्जिता[2] के नियमों द्वारा इनके निर्माण का काल अब से प्रायः एक अरब या $१०^९$ वर्ष पूर्व निश्चित किया गया है। अतः कम से कम इतने वर्षों पहले भी पृथ्वी पर जीव विद्यमान थे। अर्थात् यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि पिछले $१०^९$ वर्षों में सूर्य का विकिरण न तो अब से दुगुना था और न आधा। अतः यह निश्चित है कि कम से कम $१०^९$ वर्षों से तो सूर्य निरन्तर लगभग आज के ही समान प्रतिवर्ष ऊष्मा की इतनी विशाल मात्रा का उत्सर्जन करता रहा है। सूर्य की आयु अवश्य ही इससे लाखों गुनी बड़ी होगी।

सौर ऊर्जा की उत्पत्ति

अब प्रश्न यह होता हैं कि सूर्य में ऊर्जा की इतनी विशाल मात्रा कहाँ से आती है। और इसका उत्तर देना सरल काम नहीं है।

(१) रासायनिक क्रिया—यह समझना तो कठिन नहीं है कि रासायनिक क्रिया इस ऊर्जा की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकती। रासायनिक क्रिया में एक प्रकार के अणुओं का दूसरे प्रकार के अणुओं में परिवर्तन होता है। यथा कोयले के जलने में कार्बन और आक्सिजन के अणुओं के संयोजन से कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) के अणुओं का निर्माण होता है, और इस क्रिया के साथ-साथ ऊष्मा की उत्पत्ति होती है। किन्तु सूर्य में ६०००° के टेम्परेचर पर तो अणुओं का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। परमाणु तक तो आयनित हो जाते हैं। अतः वहाँ रासायनिक क्रिया सम्भव ही नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि पूरा का पूरा सूर्य कोयले का बना होता तब भी वह प्रायः

1. Pre-Cambrian 2. Radio-activity

तीन चार हज़ार वर्षों में जलकर विलकुल राख हो जाता। यदि वैदिक काल में भी उसका जन्म हुआ होता तो अब तक तो उसका नाश हो चुका होता।

(२) आकुंचन सिद्धान्त[1]—प्रसिद्ध जर्मन भौतिकज्ञ हेल्महोल्ट्ज़[2] ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि सूर्य में ऊष्मा की उत्पत्ति का कारण आकुंचन है। पहले सूर्य गैस का विशाल गोला था। गुरुत्वाकर्षण के कारण उसके समस्त परमाणु केन्द्र की ओर विस्थापित होने लगे और उसका आयतन घटने लगा। यह तो साधारण अनुभव की बात है कि आयतन घटाने से गैस का टेम्परेचर बढ़ जाता है। पम्प से बाइसिकल के पहिये में हवा भरते समय इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है। किन्तु यह भी सर्वविदित है कि टेम्परेचर बढ़ने से आयतन में वृद्धि होती है। अतः गुरुत्वाकर्षण जनित आकुंचन तथा तापजनित प्रसार ये दोनों ही क्रियाएँ साथ-साथ चलती रही होंगी और कुछ समय बाद इनका सन्तुलन भी हो गया होगा। इसके बाद भी पृष्ठीय विकिरण के कारण टेम्परेचर में कमी होती रही होगी और थोड़ा-बहुत आकुंचन होता ही रहा होगा तथा ऊष्मा भी बराबर उत्पन्न होती रही होगी।

यह सिद्धान्त जिस तर्क पर आधारित है उसमें कोई भूल नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त दोनों क्रियाएँ अवश्य ही सूर्य में तथा अन्य तारों में भी चलती ही रहती हैं। किन्तु केवल इन्हीं के द्वारा $१०^{९}$ वर्षों से अधिक लम्बे काल तक सूर्य में से इतनी अधिक ऊष्मा बराबर उत्सर्जित होती रहना सम्भव नहीं है। वस्तुतः परिकलन करने से ज्ञात होता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य की आयु २×१०^{७} वर्षों से अधिक नहीं हो सकती। किन्तु हम पहले ही बता चुके हैं कि भूगर्भीय चट्टानों में इस बात के प्रमाण विद्यमान हैं कि पृथ्वी पर वनस्पतियों और जन्तुओं का अस्तित्व ही इससे कई गुना पुराना है। पृथ्वी और सूर्य के अस्तित्व की तो बात ही क्या।

1. Contraction Theory 2. Helmholtz.

(३) उल्कापात सिद्धान्त[1]—सूर्य की ऊष्मा का दूसरा सिद्धान्त यह है कि उसके पृष्ठ पर बराबर उल्का-पात होता रहता है और इन उल्काओं की गतिज ऊर्जा ही ऊष्मा में परिणत होती रहती है। हम देख चुके हैं कि पृथ्वी पर दिखाई देने वाली ये उल्काएँ अधिकतर तो बालू के कणों से भी छोटी होती हैं, किन्तु इनका वेग बहुत अधिक होता है—प्राय: ६०–८० किलोमीटर प्रति सैकण्ड तक। अत: पहले-पहल तो यह बात आश्चर्यजनक मालूम पड़ती है कि इन सूक्ष्म कणों की चोट से इतनी अधिक ऊष्मा उत्पन्न हो जाय। किन्तु बात इतनी हास्यप्रद और असम्भव नहीं है।

मान लीजिए कि किसी द्रव्य-पिंड का द्रव्यमान m ग्राम है और उसका वेग v सें० मी० प्रति सैकण्ड है। तब उसकी गतिज ऊर्जा होगी $\frac{1}{2}mv^2$ अर्ग। सूर्य के अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण उस पर पड़नेवाली उल्का का वेग लगभग ६५० कि० मी०$=६.५\times १०^{७}$ सें० मी० प्रति सैकण्ड हो जायगा। अत: केवल एक ग्राम उल्का-पात से सूर्य को प्राय: २×१०^{१५} अर्ग ऊर्जा अथवा ५×१०^{७} कलारी ऊष्मा प्राप्त हो जायगी।

हम ऊपर बता चुके हैं कि पूरे सूर्य पृष्ठ से प्रति सेकण्ड उत्सर्जित होनेवाली ऊर्जा का मान ३.८×१०^{३३} अर्ग है। अत: प्रति सैकण्ड सूर्य पर $\frac{३.८+१०^{३३}}{२\times १०^{१५}}$ $=१{\cdot}९\times १०^{१८}$ ग्राम उल्का गिरनी चाहिए, यदि उसकी समस्त ऊर्जा उल्का-पात के द्वारा प्राप्त होती हो। इस हिसाब से प्रतिवर्ष सूर्य के द्रव्यमान में लगभग ६×१०^{२५} ग्राम की वृद्धि हो जानी चाहिए। इस समय सूर्य का द्रव्यमान २×१०^{३३} ग्राम है। अत: केवल ३ करोड़ वर्षों में ही उसका द्रव्यमान दुगुना हो जाना चाहिए। यह असम्भव होने के कारण यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं समझा जा सकता।

1. Meteor Bombardment Theory

(४) तत्त्वान्तरण सिद्धान्त[1]—पिछले कई वर्षों में हमें पता लग गया है कि द्रव्य-परमाणुओं के नाभिकों के विखण्डन[2] से ऊर्जा बहुत ही बड़े परिमाण में उत्पन्न होती है। यूरेनियम आदि भारी तत्त्वों से परमाणु-बम बना कर गत महायुद्ध में उनका उपयोग किया गया था। किन्तु सूर्य में ऐसे तत्त्वों की मात्रा इतनी अधिक नहीं है कि केवल उन्हीं के विखण्डन से सूर्य की समस्त ऊर्जा प्राप्त हो सके। किन्तु यह विखण्डन की क्रिया केवल यूरेनियम आदि तत्त्वों में ही नहीं होती। अन्य अधिक स्थायी तत्त्वों में भी हो सकती है। पृथ्वी पर प्रयोगशालाओं में यह सम्भव तो हुई है, किन्तु इतनी कम मात्रा में कि उससे उत्पन्न ऊर्जा की मात्रा उपेक्षणीय है। परन्तु सूर्य के गर्भ में ऐसी क्रिया अवश्य ही प्रचुर मात्रा में होती होगी, क्योंकि वहाँ का टेम्परेचर प्रायः दो करोड़ डिग्री है। गतिक सिद्धान्त[3] के अनुसार द्रव्य के अणु और परमाणु निरन्तर इधर से उधर दौड़ते रहते हैं और आपस में टकराते भी रहते हैं। टेम्परेचर बढ़ने का अर्थ ही यह है कि उनका वेग बढ़ जाता है और इससे टक्करों की संख्या और उनकी प्रबलता भी बढ़ जाती है। जब टेम्परेचर (ताप) बहुत अधिक हो जाता है तो इन टक्करों के कारण न केवल अणु टूटकर परमाणु पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, परमाणु में से भी समस्त इलैक्ट्रान विदीर्ण हो जाते हैं और नाभिक नग्न हो जाते हैं, किन्तु इन अत्यन्त भीषण टक्करों का यह भी परिणाम होता है कि नाभिक भी विखण्डित हो जाते हैं और नवीन प्रकार के नाभिकों की सृष्टि हो जाती है।

इस विखण्डन के अतिरिक्त इतने अधिक टेम्परेचर पर एक और भी क्रिया होती है जिसे संसंजन[4] कहते हैं। इसमें दो या अधिक नाभिक मिलकर एक बड़ा नाभिक बन जाता है। यथा ४ हाइड्रोजन नाभिकों के संसंजन से एक हीलियम नाभिक बन जाता है। यह क्रिया ताप-नाभिकीय[5] क्रिया कह-

1. Nuclear Transformation Theory 2. Fission
3. Kinetic Theory 4. Fusion 5. Thermo-nuclear

लाती है। इसमें भी ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती है। हाइड्रोजन-बम में यही क्रिया होती है और यह बम यूरेनियम-बम से हजार गुना अधिक शक्तिशाली होता है।

विखण्डन और संसंजन—दोनों ही क्रियाओं में मुख्य बात है तत्त्वान्तरण[1] अर्थात् एक तत्त्व बदल कर दूसरे तत्त्व का रूप ले लेता है।

ऐसे तत्त्वान्तरण में ऊर्जा की उत्पत्ति का रहस्य समझने के लिए आइन-स्टाइन[2] के विख्यात आपेक्षिकता-सिद्धान्त[3] का सहारा लेना पड़ता है। इसके अनुसार द्रव्य[4] और ऊर्जा सर्वथा पृथक् और विजातीय पदार्थ नहीं हैं। वे एक ही पदार्थ के दो विभिन्न रूप हैं। और परिस्थितियों के अनुसार द्रव्य ऊर्जा में और ऊर्जा द्रव्य में परिणत हो सकता है। अर्थात् द्रव्य का लोप होने से ऊर्जा की उत्पत्ति हो सकती है। यह परिणमन निम्नलिखित सूत्र के अनुसार होता है—

$$E=mc^2$$

जहाँ E=ऊर्जा का मान (अर्गों में), m= द्रव्यमान (ग्रामों में) तथा C=प्रकाश का वेग=3×10^{10} सें० मी० प्रति सैकण्ड।

अर्थात् एक ग्राम द्रव्य के लोप होने से प्राप्त ऊर्जा का मान होगा

$E=c^2=9\times10^{20}$ अर्ग।

अतः यदि सूर्य की समस्त विकीर्णित ऊर्जा द्रव्य के लोप होने से उत्पन्न होती हो तो प्रत्येक सैकण्ड में लुप्त होने वाले द्रव्य की मात्रा होगी

$$m=\frac{E}{c^2}=\frac{3.8\times10^{33}}{9\times10^{20}}=4\cdot2\times10^{12} \text{ ग्राम}$$

$$=4\times10^{6} \text{ टन}$$

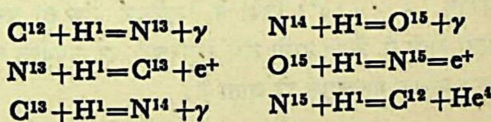
1. Transformation of atoms
2. Einstein
3. Relativity Theory
4. Matter

यद्यपि द्रव्य की यह मात्रा बहुत बड़ी है, फिर भी सूर्य का कुल द्रव्यमान इतना बड़ा है कि इस दर से कम होने पर भी सूर्य १.६×१०^१३ वर्षों में भी पूरा नष्ट नहीं हो सकता।

वास्तव में यह समय और भी लम्बा होगा क्योंकि ज्यों-ज्यों सूर्य का द्रव्यमान घटता जायगा त्यों-त्यों उसका आयतन भी कम होता जायगा और उसमें से उत्सर्जित ऊर्जा भी घटती जायगी। परिकलन से ज्ञात होता है कि सूर्य के द्रव्यमान के आधा हो जाने में लगभग ४×१०^१२ वर्ष लगेंगे और १/५ हो जाने में २.५×१०^१५ वर्ष लगेंगे।

यूरेनियम (U^{235}) के विखण्डन में दो तत्त्व प्राप्त होते हैं—सीजियम (Cs^{133}) तथा रुबीडियम (Rb^{99}) और ३ न्यूट्रान भी उत्पन्न होते हैं। इस तत्त्वान्तरण में एक हाइड्रोजन परमाणु के ०.२२६ —वें अंश के बराबर द्रव्य का लोप होता है और एक ग्राम यूरेनियम में से ८.६×१०^१७ अर्ग ऊर्जा प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जब ४ हाइड्रोजन परमाणुओं के संसंजन से एक हीलियम परमाणु बनता है तब हाइड्रोजन परमाणु के ०.०३ —वें अंश के बराबर द्रव्य का लोप हो जाता है और इस क्रिया में भी बहुत ऊर्जा प्राप्त हो जाती है। अनुमान है कि सूर्य में मुख्यतः जो तत्त्वान्तरण होता है वह यही है। किन्तु यह क्रिया एकदम सीधी नहीं होती, क्योंकि इसके लिए सूर्य का टेम्परेचर काफ़ी ऊँचा नहीं है। जो क्रिया होती है वह सम्भवतः उत्तरोत्तर होने वाली निम्न क्रियाएँ हैं—



$$C^{12}+H^{1}=N^{13}+\gamma \qquad N^{14}+H^{1}=O^{15}+\gamma$$
$$N^{13}+H^{1}=C^{13}+e^{+} \qquad O^{15}+H^{1}=N^{15}=e^{+}$$
$$C^{13}+H^{1}=N^{14}+\gamma \qquad N^{15}+H^{1}=C^{12}+He^{4}$$

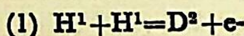
इन सूत्रों में C=कार्बन, N=नाइट्रोजन, O=आक्सिजन तथा He=हीलियम तथा e^{+}=पाज़िट्रान हैं। इन संकेताक्षरों के ऊपर जो संख्याएँ लिखी हैं वे इनके परमाणु-भार हैं। प्रायः ये सभी स्थायी तत्वों के परमाणु-

भारों से भिन्न हैं। अर्थात् ये स्थायी परमाणुओं के अस्थायी और स्वोत्सर्जी समस्थानिक[1] हैं। इस प्रकार कार्बन परमाणुओं की सहायता से एक-एक करके चार हाइड्रोजन नाभिकों के मिल जाने से एक हीलियम नाभिक बन जाता है। कार्बन यहाँ उत्प्रेरक[2] का काम करता है। इतनी सब क्रियाएँ पूर्ण हो जाने पर वह स्वयं पुनः ज्यों का त्यों हो जाता है।

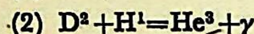
इन समीकरणों में γ इस बात का द्योतक है कि ऊर्जा γ– किरणों के रूप में उत्पन्न होती है।

सूर्य के ही समान जिन तारों में हाइड्रोजन-संसंजन की उपर्युक्त क्रिया से ऊर्जा उत्पन्न होती है उन्हें बहुधा हाइड्रोजनी तारे[3] भी कहते हैं।

हलके और मन्द ज्योति तारों का टेम्परेचर कम होता है और उनमें तत्त्वान्तरण अन्य प्रकार का होता है। इसकी क्रियाओंको निम्नलिखित सूत्रों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—



$$(1)\quad H^1 + H^1 = D^2 + e^-$$

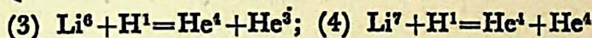


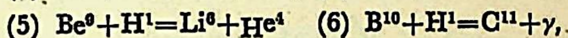
$$(2)\quad D^2 + H^1 = He^3 + \gamma$$

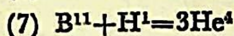
पहले समीकरण के अनुसार दो हाइड्रोजन परमाणुओं के संसंजन से एक ड्यूटीरियम (D^2) परमाणु बनता है। यह हाइड्रोजन का ही समस्थानिक है और भारी हाइड्रोजन भी कहलाता है। इसके साथ एक हाइड्रोजन परमाणु और मिल जाने पर दूसरे समीकरण के अनुसार हीलियम का समस्थानिक (He^3) बनता है और बहुत-सी ऊर्जा भी उत्पन्न होती है। यह दूसरी क्रिया दस लाख (१०^{६}) डिग्री के टेम्परेचर पर भी आसानी से हो जाती है। प्रायः १.५ करोड़ (१.५×१०^{७}) डिग्री के टेम्परेचर तक तो प्रमुख क्रियाएँ ये ही दोनों होती हैं, किन्तु इससे ऊँचे टेम्परेचर पर उपर्युक्त कार्बन-नाइट्रोजन चक्र अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

1. Isotope 2. Catalytic agent
3. Hydrogen stars

लाल दानव तारों के अन्तरंग का टेम्परेचर १० लाख डिग्री से कम होता है। इतने कम टेम्परेचर पर नाभिकीय तत्त्वान्तरण बहुत कठिनाई से होते हैं। फिर भी निम्नलिखित क्रियाएँ सम्भव हैं—


(3) $Li^6+H^1=He^4+He^3$; (4) $Li^7+H^1=He^4+He^4$


(5) $Be^9+H^1=Li^6+He^4$ (6) $B^{10}+H^1=C^{11}+\gamma$,


(7) $B^{11}+H^1=3He^4$

इन क्रियाओं के लिए ३ से लेकर ७ लाख डिग्री तक के टेम्परेचर की आवश्यकता होती है।

गैमो[1] तथा टैलर[2] ने इन क्रियाओं का अध्ययन किया है। उनके मतानुसार तारों में सबसे पहले तो उपर्युक्त समीकरण (२) वाली क्रिया से ही ऊर्जा उत्पन्न होती है। जब समस्त ड्यूटीरियम नष्ट हो चुकता है तब वे क्रमशः लीथियम बेरीलियम तथा बोरान को ईंधन के रूप में उपयोग करते हैं और इसके बाद कार्बन-नाइट्रोजन चक्र का। अतः विभिन्न लाल दानव तारों में विभिन्न प्रकार के तत्त्वान्तरणों के द्वारा ऊर्जा उत्पन्न होती है।

1. Gamow 2. Teller

परिच्छेद १७

तारों की उत्पत्ति और उनका विकास

तारों की उत्पत्ति

तारे क्यों और कैसे उत्पन्न हुए ? यह प्रश्न ऐसा है जिसका कोई निश्चित उत्तर अभी सम्भव नहीं है। इस विषय में हमें केवल कल्पनाशक्ति का ही सहारा लेना पड़ता है। जो परिकल्पना इस समय समस्त प्रेक्षित तथ्यों से सगत जान पड़ती है वह सम्भवतः निम्नलिखित है—

अरबों-खरबों वर्ष पहले इस संसार का समस्त द्रव्य समस्त आकाश में लगभग समान रूप से व्याप्त था। यह बिलकुल ठण्डी गैस के रूप में था। यह प्रारम्भिक गैस कहाँ से आयी और कैसे उत्पन्न हुई यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। सम्भवतः यह अनादि थी। यद्यपि मनुष्य को इस उत्तर से पूरा सन्तोष नहीं हो सकता तथापि इससे अधिक ज्ञान की इस समय सम्भावना न होने के कारण इस गैस की अनादिता को स्वीकार करके इस विवादग्रस्त विषय सम्बन्धी प्रश्नों का अन्त कर देना ही श्रेयस्कर है। पूर्वीय तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्रों में इसका अनेक प्रकार से विवेचन किया गया है। किन्तु वहाँ भी कोई सर्वसम्मत उत्तर प्राप्त नहीं हो सका। यदि यह भी मान लिया जाय कि ईश्वर ने अपनी अलौकिक शक्ति से इस गैस को बनाया था, तब भी तो यह प्रश्न बच ही रहेगा कि ईश्वर स्वयं कहाँ से आया। इस झंझट से बचने के लिए भगवान् बुद्ध और महावीर ने भी अपने दर्शनों में यही मान लिया था कि यह संसार अनादि है। यही बात हम यों भी कह सकते हैं कि हम तो केवल किसी विशेष समय से प्रारम्भ करके ही इस संसार का

इतिहास जान सकते हैं। उस समय से पहिले का वृत्तान्त जानने का प्रयत्न इस समय वृथा है।

हाँ तो उस समय समस्त आकाश में एक गैस भरी थी। वह बिलकुल ठण्डी थी और प्रकाश का कहीं नाम भी न था। इस गैस का घनत्व सर्वत्र एक-समान नहीं था। कहीं अधिक था और कहीं कम और इसके अणु-परमाणुओं में गुरुत्वाकर्षण भी विद्यमान था। जिस किसी स्थान पर घनत्व अधिक था वहाँ गुरुत्वाकर्षण बल भी अधिक था, जिसके कारण चारों ओर से आकर्षित हो-होकर द्रव्य वहाँ संघनित[1] होने लगा। साथ ही गैस के द्रव्य-कणों में गति भी उत्पन्न हुई। पारस्परिक टक्करों के कारण इस गति की कोई निश्चित दिशा नहीं रही और विभिन्न कण विभिन्न दिशाओं में विभिन्न वेग से दौड़ने लगे। इससे उस गैस में गुरुत्वाकर्षण से विरोधी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई अर्थात् वह अधिक बड़े आयतन में फैलने का भी प्रयत्न करने लगी। जब तक किसी संहति में द्रव्य की मात्रा अधिक नहीं होती तब तक गुरुत्वाकर्षण निर्बल रहता है। अतः वह अस्थायी रहती है और उसका द्रव्य फैलकर घनत्व घट जाता है। किन्तु जहाँ भी द्रव्य की मात्रा बढ़ गयी और गुरुत्वाकर्षण प्रबल हो गया वहीं उस संहति में द्रव्य की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इस प्रवृत्ति के प्रकट होने के लिए संहति का अल्पतम द्रव्यमान कितना होना चाहिए, इसके जो अनुमान गणित द्वारा लगाये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह लगभग उतना ही होता है जितना कि अधिकतर नीहारिकाओं[2] का प्रेक्षण द्वारा पाया गया है। ये अनुमान सर्वथा विश्वसनीय नहीं माने जा सकते, क्योंकि उस प्रारम्भिक गैस का संगठन ठीक-ठीक मालूम न होने के कारण ये अनुमान अनेक परिकल्पनाओं पर अवलम्बित हैं। फिर भी इसमें अधिक सन्देह नहीं हो सकता कि इन प्रारम्भिक द्रव्य-संहतियों के द्रव्यमान

1. Condensed
2. Nebula

हमारे सूर्य की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक थे और इनकी आकृतियाँ भी लगभग गोल ही थीं।

ऐसी संहति का विस्तार बहुत बड़ा था और उसमें घनत्व सर्वत्र एक-सा नहीं था। उसके द्रव्य-कणों के वेग तीव्र थे किन्तु सर्वत्र बराबर नहीं थे। अतः निश्चित रूप से उसमें घूर्णन प्रारम्भ हो गया होगा। वर्तमान नीहारिकाओं में यह घूर्णन आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

ज्यों-ज्यों ऐसी घूर्णित संहति गुरुत्वाकर्षण के कारण आकुंचित होकर छोटी होती गयी, त्यों-त्यों घूर्णन का वेग भी बढ़ता गया। यह गतिविज्ञान के उस नियम का परिणाम है, जिसके कारण बाह्य बल के अभाव में प्रत्येक वस्तु का कोणीय संवेग[1] अचर[2] रहता है, चाहे उसके अन्तरंग में कैसे भी परिवर्तन क्यों न हो जायें।

घूर्णन का वेग बढ़ने का निश्चित परिणाम यह होता है कि गोलाकार वस्तु अक्षीय ध्रुवों पर कुछ-कुछ चपटी हो जाती है, जैसे कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह हो गये हैं। ज्यों-ज्यों यह वेग बढ़ता गया, त्यों-त्यों चपटापन भी बढ़ता गया और धीरे-धीरे उस संहति की आकृति उत्तल लैन्स की जैसी हो गयी। समस्त नीहारिकाओं की आकृति ऐसी ही है।

इसके बाद आकुंचन और भी बढ़ा तो कोणीय वेग भी और अधिक हुआ। तब केन्द्रापसारी बल[3] के कारण नीहारिका के निरक्षीय[4] प्रदेशों से द्रव्य-पिंड छिटक-छिटककर पृथक् हो गये, जिस प्रकार कि वेग से चलने वाली गाड़ी के पहियों पर से कीचड़ उछल-उछलकर दूर चला जाता है। किन्तु अलग हो जाने पर भी पूर्ववर्ती कोणीय संवेग के कारण ये पिंड उस नीहारिका के चारों ओर चक्कर लगाते ही रहे।

निकटवर्ती किसी अन्य नीहारिका के गुरुत्वाकर्षण के कारण ये पिंड

1. Angular momentum 2. Constant
3. Centrifugal force 4. Equatorial

सब दिशाओं में एक-समान नहीं निकले। जिस दिशा में यह दूसरी नीहारिका अवस्थित थीं, उसी दिशा में आगे की ओर तथा पीछे की ओर भी अधिक संख्या में निकले और अधिक दूर तक चले गये। अर्थात् इनका निष्कासन-स्थान एक तो वह भाग था जो उस आकर्षक नीहारिका से निकटतम था और दूसरा वह भाग था जो नीहारिका के व्यास के दूसरे छोर पर इस दूसरी नीहारिका से अधिकतम दूरी पर था। इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है पृथ्वी पर समुद्र में पैदा होने वाला ज्वार[1] जिसका अधिकतम मान चन्द्रमा से निकटतम और दूरतम स्थानों पर होता है। आकाश में अब भी कई नीहारिकाएँ ऐसी दिखाई देती हैं जिनमें व्यास के दोनों छोरों से द्रव्य का प्रवाह निकलता हुआ मालूम पड़ता है। इन्हें सर्पिल नीहारिकाएँ[2] कहते हैं।

फिर ज्यों-ज्यों ये नीहारिकाएँ और भी अधिक आकुंचित होती गयीं, त्यों-त्यों इनके कुछ बड़े-बड़े संघनित भाग तो तारा-पुंजों का रूप लेते गये और इनमें से छिटके हुए छोटे भाग पृथक्-पृथक् तारे बन गये।

हमारी तारों भरी आकाशगंगा के लैन्साकृति विश्व का यही संक्षिप्त इतिहास है और इस परिकल्पना के समर्थन के लिए यथेष्ट सैद्धान्तिक तथा प्रेक्षणिक सामग्री विद्यमान है।

तारों का विकास

उपर्युक्त इतिहास में जिन तारा-पुंजों का और तारों का ज़िक्र किया गया है वे भी गैस ही के गोले थे। वे काफ़ी ठण्डे भी थे और अदृश्य भी थे, क्योंकि उनसे किसी प्रकार का प्रकाश नहीं निकलता था। किन्तु गुरुत्वाकर्षण के कारण इन गोलों का आयतन उत्तरोत्तर घटता गया और उनका ताप बढ़ता गया। जब किसी गोले का केन्द्रीय ताप लगभग दस

1. Tide 2. Spiral nebula

लाख (१०^{6}) अंश का हो गया तब सम्भवतः नाभिकीय क्रियाओं का प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले ड्यूटीरियम और हाइड्रोजन के नाभिकों के संसंजन से हीलियम के समस्थानिक He^3 की उत्पत्ति प्रारम्भ हुई। इससे जो ऊष्मा पैदा हुई उसने तारे के आकुंचन को रोक दिया। जब समस्त ड्यूटीरियम समाप्त हो गयी तब आकुंचन फिर प्रारम्भ हुआ और ताप और भी बढ़ा। जब यह ३०–४० लाख अंश हो गया, तब लीथियम तथा हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। इससे आकुंचन पुनः बन्द हो गया। इसी प्रकार उत्तरोत्तर विभिन्न नाभिकीय क्रियाओं का प्रारम्भ और अन्त होता गया और तारे का ताप बराबर बढ़ता गया तथा उसकी ज्योति भी बढ़ती गयी। अन्त में वह स्थिति पैदा हुई जिसमें कार्बन-नाइट्रोजन चक्र के द्वारा हाइड्रोजन का हीलियम में तत्त्वान्तरण प्रारम्भ हुआ।

इस दृष्टि से प्रत्येक चमकते हुए तारे का प्रारम्भ लाल दानव के रूप में होता है। क्रमशः उसका आयतन घटता जाता है और ताप बढ़ता जाता है। वह स्पैक्ट्रमीय वर्ग M से धीरे-धीरे वर्ग B की ओर अग्रसर होता जाता है। उसका लाल रंग बदलकर क्रमशः पीला, नीला और अन्त में श्वेत हो जाता है। हमारा सूर्य भी किसी समय लाल दानव के रूप में रहा होगा। इस समय वह पीत वर्ग G में है। १०^{12} वर्षों के बाद उसका तेज सम्भवतः ७०–८० गुना बढ़ जायगा और वह A वर्ग का तारा बन जायगा। तब उसका पृष्ठीय ताप ११०००° अंश डिग्री के लगभग हो जायगा और उसका निरपेक्ष कान्तिमान बढ़कर इतना हो जायगा जितना इस समय सीरियस[1] तारे का है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि समस्त तारों का ताप बराबर बढ़ता ही जायगा और वे अधिक ज़ोर से चमकने लगेंगे। जब किसी तारे की समस्त हाइड्रोजन हीलियम में तत्त्वान्तरित हो चुकेगी तब उसमें ऊर्जा

1. Sirius

की उत्पत्ति होना बन्द हो जायगा। उधर पृष्ठीय ताप अधिक होने के कारण उसमें से ऊर्जा का उत्सर्जन तो खूब ज़ोर से होता ही रहेगा। अतः अब वह ठण्डा होने लगेगा और उसकी चमक घटने लगेगी और रंग पुनः लाल होने लगेगा। उसका बुढ़ापा आ जायगा और धीरे-धीरे वह अपनी समस्त चमक खो देगा तथा अदृश्य हो जायगा अथवा दूसरे शब्दों में उसकी मृत्यु हो जायगी। यह भी स्पष्ट है कि जिन तारों का द्रव्यमान अधिक होगा उनमें ये नाभिकीय तत्त्वान्तरण अधिक होंगे। इस कारण उनमें ऊर्जा भी अधिक पैदा होगी। किन्तु इसे तारे के अन्तरंग से पृष्ठ तक पहुँचने में समय भी अधिक लगेगा। फलतः ताप और भी अधिक वेग से बढ़ेगा और नाभिकीय क्रियाएँ और भी तेज़ी से चलेंगी। अतः ऐसे भारी तारों का बुढ़ापा जल्दी आयेगा।

सब बातों का हिसाब लगाकर देखने से मालूम हुआ है कि विकास के प्रथम भाग में अर्थात् ठण्डा होना शुरू होने तक तारे की आयु का प्रायः ९०% भाग व्यतीत हो जाता है और बुढ़ापा प्रारम्भ होने के बाद उसकी मृत्यु होने में केवल १०% ही समय लगता है। यही कारण है कि इस समय अधिकतर तारे विकास क्रम की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही अर्थात् बाल्यावस्था में ही दिखाई देते हैं। यह तथ्य सांख्यकीय[1] है। यदि मनुष्य की आयु का ९०% बाल्यावस्था में व्यतीत होता तो निस्सन्देह जनसंख्या का अधिकतर भाग बालकों का ही होता।

विकास का जो क्रम यहाँ बताया गया है उससे प्रकट होता है कि तारे की ज्योति किसी समय बढ़कर १०० गुनी भी हो सकती है किन्तु उसका द्रव्यमान लगभग उतना ही बना रहता है। यह बात परिच्छेद ९ में वर्णित द्रव्यमान और कान्तिमान सम्बन्धी नियम के विरुद्ध मालूम होती है। उस नियम के अनुसार द्रव्यमान के बढ़े बिना कान्तिमान नहीं बढ़ना चाहिए।

1. Statistical

किन्तु हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि उक्त नियम वर्तमान तारों के प्रेक्षण से प्राप्त हुआ है और इन तारों में ९०% अपनी बाल्यावस्था में ही हैं। इस अवस्था में उनकी ज्योति में परिवर्तन बहुत कम होता है। ज्योति की वृद्धि बुढ़ापे में ही अधिक होती है और उस अवस्था के लिए उपर्युक्त नियम सत्य नहीं है।

विकास के इस इतिहास में एक बहुत बड़ी त्रुटि है। यदि समस्त हाइड्रोजन के खर्च हो जाने से ही तारे की मृत्यु हो जाती हो तो गणित द्वारा यह नतीजा निकलता है कि सूर्य की आयु लगभग $१०^{११}$ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती। किन्तु हम देख चुके हैं कि हमारी आकाश-गंगा के अनेक तारों की आयु कम से कम इससे सौ गुनी अर्थात् $१०^{१३}$ वर्ष तो है ही। इन दोनों परस्पर विरोधी निष्कर्षों में सामंजस्य स्थापित करना इस समय सम्भव नहीं है। इसकी मीमांसा शायद भविष्य में ही हो सकेगी।

यहाँ तारों की उत्पत्ति और विकास के जिस इतिहास का वर्णन किया गया है वह केवल इस दृष्टि से किया गया है कि वह सरल और सुबोध है। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यह सर्वमान्य है या इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की परिकल्पनाओं का उपयोग नहीं किया गया। ऐसी परिकल्पनाओं का वर्णन यहाँ उनकी जटिलता के कारण आवश्यक नहीं समझा गया।

ग्रहों का विकास

ऐसी धारणा स्वाभाविक मालूम होती है कि जिस प्रकार नीहारिकाओं से तारों की उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार तारों से ग्रह और उपग्रह भी बने होंगे। किन्तु यह समस्या इतनी सरल नहीं है और इसकी जटिलता ही के कारण इस सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये थे। किन्तु शायद उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जिसे सन्तोषजनक समझा जा सके।

इन सिद्धान्तों में सबसे बड़ी कठिनाई कोणीय संवेग के सम्बन्ध में है। हमारे प्रेक्षणों से ज्ञात होता है कि सौर परिवार के पूरे द्रव्यमान का केवल

१/७००वाँ भाग ही ग्रहों के रूप में है। शेष सारा द्रव्यमान सूर्य में ही एकत्रित हैं। किन्तु पूरे कोणीय संवेग का ९८% भाग इन ग्रहों में विद्यमान है। केवल २% मात्र कोणीय संवेग सूर्यबिम्ब में है। कोई भी प्रक्रिया ऐसी समझ में नहीं आती जिससे कोणीय संवेग का ऐसा वितरण संभव हो सके। यह एक ही कठिनाई इन सब सिद्धान्तों को अमान्य कर देने के लिए काफ़ी है। और यह अकेली भी नहीं है। अन्य भी अनेक कठिनाइयाँ ऐसी हैं जिनकी मीमांसा अभी तक नहीं हो सकी है।

फिर भी यह जान लेना रुचिकर होगा कि इन सिद्धान्तों के क्या-क्या रूप थे और उनमें क्या-क्या विशेषताएँ थीं। ये सब मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं—

(१) आनुक्रमिक—जिनमें विकास किसी निश्चित क्रम के अनुसार शनैः-शनैः होनेवाला माना गया है।

(२) आकस्मिकीय—जिनमें यह माना गया है कि ग्रहों की उत्पत्ति का कारण कोई आकस्मिक घटना थी।

आनुक्रमिक सिद्धान्त

प्रथम वर्ग में सबसे प्राचीन सिद्धान्त काण्ट[1] का है जो १७५५ में प्रस्तुत किया गया था। इसके अनुसार सूर्य प्रारम्भ में गैसीय था और घनत्व की दृष्टि से समांगी[2] था। किन्तु उसमें विभिन्न प्रकार के हलके और भारी परमाणु विद्यमान थे। गुरुत्वाकर्षण के कारण भारी परमाणु केन्द्रीय भाग में एकत्रित होने लगे, अतः उसके द्रव्य की समांगता नष्ट हो गयी। इस केन्द्राभिमुखी प्रवाह के साथ ही साथ गैस की प्रसरणशीलता के कारण एक विपरीत प्रवाह भी विद्यमान था। अतः उसमें घूर्णन की गति भी उत्पन्न हो गयी। यह समझना कठिन है कि ऐसा संभव कैसे हो गया,

1. Kant 2. Homogeneous

क्योंकि यह बात कोणीय संवेग की अचरता के नियम के विरुद्ध है। अतः ४० वर्ष बाद लापलास[1] ने यह मान लिया कि सूर्य की गैसीय संहति में कोणीय संवेग पहले ही से विद्यमान था। इसका कारण बताने की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी।

यदि यह मान लिया जाय कि प्रारम्भ में सूर्य की गैसीय संहति के गोले की त्रिज्या इतनी ही थी जितनी आज प्लूटो ग्रह की कक्षा की है और उसके छोर पर कोणीय वेग उतना ही था जितना आज प्लूटो का है, तो परिकलन द्वारा यह ज्ञात होता है कि सौर परिवार का प्रारम्भिक कोणीय संवेग अब से २०० गुना अधिक होना चाहिए था, क्योंकि अब समस्त ग्रहों का द्रव्यमान पूरे सौर परिवार के द्रव्यमान का १/७००वाँ भाग मात्र रह गया है।

जो भी हो, गुरुत्वाकर्षण के कारण आयतन घटता गया और कोणीय वेग बढ़ता गया। इसके बाद, जैसा कि तारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया जा चुका है, कोणीय वेग की अधिकता के कारण सूर्य के निरक्षीय प्रदेश में से द्रव्य ने छिटक-छिटककर केन्द्रीय संहति के चारों ओर अनेक वलयों का रूप धारण कर लिया और फिर एक-एक वलय संकुचित होकर एक-एक पिंड बन गया। यही ग्रह बन गया जो अपने कोणीय संवेग के कारण केन्द्रगत अवशिष्ट द्रव्य-संहति की परिक्रमा करने लगा। इसी प्रकार समस्त ग्रह बने और वे लगभग एक ही समतल में सूर्य की परिक्रमा करने लगे। और ठीक इसी प्रकार ग्रहों में से उपग्रह भी बन गये।

कुछ ही वर्षों पहले एक और इसी प्रकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमें यह नहीं माना गया है कि ग्रह सूर्य में से निकलकर अलग हुए थे। किन्तु यह परिकल्पना बनायी गयी है कि जब विश्वव्यापी गैसीय द्रव्य से सूर्य बना था उसी समय बहुत सी गैस और धूल के रूप में अत्यन्त छोटे-छोटे द्रव्यकण सूर्य के चारों ओर बचे रह गये थे और बड़े वेग से सूर्य

1. Laplace

की परिक्रमा कर रहे थे। यहीं गुरुत्वाकर्षण और कोणीय वेग के कारण एक चपटे वलय के रूप में सूर्य के निरक्षीय तल में एकत्रित हो गये और इसी वलय में से विभिन्न समयों पर विभिन्न ग्रहों का जन्म हुआ। सबसे पहले प्लूटो का और तब क्रमशः अन्य ग्रहों का। जन्म के समय इन सभी ग्रहों में वही तत्त्व विद्यमान थे जो विश्वव्यापी गैस में थे। किन्तु बाद में छोटे ग्रहों में से कमज़ोर गुरुत्वाकर्षण और कम पलायन-वेग के कारण हाइड्रोजन और हीलियम जैसे हलके और तीव्र वेग वाले परमाणु निकल-निकलकर अनन्ताकाश में विलीन हो गये (देखो परिच्छेद ९)। यही कारण है कि पृथ्वी के वातावरण में हाइड्रोजन नहीं है और मंगल में पानी भी नहीं है तथा चन्द्रमा में कोई वातावरण है ही नहीं। विपरीत इसके, भारी ग्रहों में, यथा बृहस्पति तथा शनि में हाइड्रोजन प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

इन सिद्धान्तों के विपक्ष में अनेक आपत्तियाँ हैं।—(१) सौर परिवार के कोणीय संवेग का मान घटकर इस समय प्रारम्भिक मान का १/२००वाँ अंश कैसे हो गया? उसे तो उतना ही बना रहना चाहिए था। (२) इस कोणीय संवेग का ९८% भाग ग्रहों में क्यों है यद्यपि उनका द्रव्यमान १/७०० वाँ अंश मात्र है। (३) आकुंचन से वलय कैसे बन गये और फिर वलय सिकुड़कर छोटे-छोटे पिंड कैसे बन गये? (४) पृथ्वी की कक्षा के तल में और सूर्य के निरक्षीय तल में ७° का कोण क्यों है? (५) क्षुद्र ग्रहों की कक्षाओं के तलों में और पृथ्वी की कक्षा के तल में बहुत बड़े कोण कैसे बन गये? (६) धूमकेतुओं की इतनी अधिक लम्बी-लम्बी कक्षाएँ कैसे बनीं? ऐसे ही और भी अनेक प्रश्न हैं जिनकी मीमांसा इस सिद्धान्त के द्वारा नहीं हो सकी है।

आकस्मिकीय सिद्धान्त

दूसरे प्रकार के सिद्धान्तों में दो मुख्य हैं—(१) ग्रहाणवीय सिद्धान्त[1] तथा (२) ज्वारीय सिद्धान्त[2]

1. Planetesimal Theory
2. Tidal Theory

(१) ग्रहाणवीय सिद्धान्त

इसके अनुसार अत्यन्त प्राचीन काल में सूर्य के पृष्ठ में से वैसी ही ज्वालाएँ निकल रही थीं जैसी कि आजकल दिखाई देती हैं। अकस्मात् किसी समय कोई अन्य तारा सूर्य के निकट आ गया। इससे सूर्य-पृष्ठ में ज्वार आया और ये ज्वालाएँ दो स्थानों पर बहुत ही लम्बी हो गयीं—एक तो उस प्रवासी तारे से निकटतम बिन्दु पर और दूसरी दूरतम बिन्दु पर। और ये उस तारे की गति की दिशा में मुड़कर सर्पिलरूपी भी हो गयीं। इसके बाद इन लम्बी ज्वालाओं में से छिटक-छिटककर कुछ अत्यन्त छोटे-छोटे द्रव्य-पिंड अलग हो गये और विभिन्न दूरियों पर सूर्य की परिक्रमा करने लगे। इन्हीं अगणित अत्यल्प द्रव्य-पिंडों का ग्रहाणु नाम रख दिया गया। जब प्रवासी तारा बहुत दूर चला गया तब पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण के कारण ये छोटे पिंड बड़े पिंडों में मिलते गये और क्रमशः बढ़ते-बढ़ते वर्तमान ग्रह बन गये। जो छोटे पिंड कम आकर्षण के कारण इस प्रकार मिल न सके वे क्षुद्र ग्रहों के रूप में रह गये। कहीं कहीं बड़े पिंडों के पास ही अपेक्षाकृत छोटे पिंड भी अलग ही रह गये और इन बड़े पिंडों की परिक्रमा करने लगे। यही उपग्रह बन गये। संक्षेप में इन छोटे ग्रहाणुओं से ही ग्रह और उपग्रह बने।

(२) ज्वारीय सिद्धान्त

इसका प्रतिपादन जीन्स[1] ने १९१६ में किया था। इसमें और ग्रहाणवीय सिद्धान्त में केवल दो बातों का अन्तर है। एक तो इसमें यह नहीं माना गया है कि प्रारम्भ से ही सूर्य में से ज्वालाएँ निकल रही थीं। प्रवासी तारे के पास आ जाने के कारण सूर्य-पृष्ठ में जो ज्वार आया उसी से सूर्य में सर्पिल बाहुएँ उत्पन्न हो गयीं। दूसरे यह भी नहीं माना गया कि पहले ग्रहाणुओं के रूप में छोटे-छोटे द्रव्यपिंड सूर्य की परिक्रमा कर रहे थे और उन्हीं के सम्मेलन

1. Jeans

से बड़े पिंड बने। इसके विपरीत इस सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ में ही सूर्य में से बड़े-बड़े पिंड निकले। इसी तरह ग्रहों में से उपग्रह भी ज्वार उठने ही से बने।

इस सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि प्रवासी तारा सूर्य के इतना निकट पहुँच जाय कि लगभग दोनों में टक्कर ही हो जाय। सीधी टक्कर न सही, कम से कम पृष्ठ-स्पर्शी टक्कर तो अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस समय तारे एक दूसरे से इतनी अधिक दूरी पर अवस्थित हैं कि यह संभव नहीं मालूम होता कि उनकी कभी टक्कर हो सकी हो। ज्वार उत्पन्न करने लायक दूरी पर पहुँचना भी संभव नज़र नहीं आता।

यद्यपि हमारी आकाशगंगा में तारों की संख्या बहुत अधिक है तथापि इन समस्त तारों का आयतन आकाशगंगा के आयतन के मुकाबिले में नगण्य है। सूर्य का व्यास पृथ्वी की कक्षा के व्यास से २०० गुना छोटा है और प्लूटो की कक्षा से ७६०० गुना छोटा है और सबसे निकटवर्ती तारे की दूरी के मुकाबिले में ५ करोड़ गुना छोटा है। तारों की पारस्परिक दूरियों की तुलना में तारों के व्यास इतने छोटे हैं कि इस बात की कोई भी संभावना नहीं नज़र आती कि कभी भी दो तारों की आपस में टक्कर हो सके।

इसके अतिरिक्त कोणीय संवेग सम्बन्धी उपर्युक्त आपत्ति भी ज्यों की त्यों विद्यमान है।

पिछले कई वर्षों में और भी कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है जिनमें विशेष प्रकार की परिकल्पनाओं की सहायता से कोणीय संवेग सम्बंधी कठिनाई दूर करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इनमें और दूसरी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। अतः इस समय यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रहों की उत्पत्ति का कोई संतोषप्रद सिद्धान्त स्थिर हो गया है।

अन्य तारों के साथ ग्रहों की उपस्थिति

ग्रहों की उत्पत्ति का जो भी सिद्धान्त हो, यह आवश्यक है कि वह सूर्य के अतिरिक्त अन्य तारों पर भी समान रूप से लागू होना चाहिए। अतः

जिस प्रकार सूर्य के साथ ग्रह तथा उपग्रह हैं, उसी प्रकार अन्य तारों के साथ भी संभव होना चाहिए। यह सत्य है कि इस समय विभिन्न तारे अपने विकास-क्रम की विभिन्न स्थितियों में हैं। अतः जो तारे बहुत अधिक गरम हैं उनके साथ हम ग्रहों की उपस्थिति की आशा नहीं कर सकते। किन्तु कम से कम जिस वर्ग में सूर्य है उस वर्ग के तथा उससे ठंडे तारों के साथ तो ग्रहों के विद्यमान होने की संभावना है ही।

दुर्भाग्यवश सभी तारे हमसे इतनी दूर हैं कि बड़ी से बड़ी दूरबीन से भी उनके अनुवर्ती ग्रहों को देख सकना प्रायः असंभव ही है। फिर भी अभी थोड़े ही समय पहले सौर परिवार से बाहर भी दो ग्रह देख लिये गये हैं। एक तो साइगनी[1] तारे के पास है और इसका द्रव्यमान हमारे बृहस्पति ग्रह से १६ गुना अधिक है। दूसरा ग्रह ओफिउची[2] तारे का है। यह और भी भारी है। इस आविष्कार के कारण अब ऐसा समझने का कोई प्रबल कारण नहीं है कि सौर परिवार से बाहर ग्रहों की संख्या बहुत थोड़ी है और यदि यह बात सत्य हो तो ज्वारीय सिद्धान्त की सत्यता में हमारी शंका और भी दृढ़ हो जाती है। ग्रहों की उत्पत्ति के विषय में कोई दूसरा ही सिद्धान्त खोजना पड़ेगा।

1. 61 Cygni   2. 70 Ophiuchi

परिच्छेद १८

ब्रह्माण्ड का विस्तार

सौर परिवार तथा तारों और नीहारिकाओं के सम्बन्ध में भौतिक विज्ञान के द्वारा हमें जो महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं उनमें से प्रमुख बातों का स्थूल दिग्दर्शन कराया जा चुका है। किन्तु यह भी आवश्यक है कि अब हम पूरे ब्रह्माण्ड पर एक विहंगम दृष्टि डालकर यह देखने का प्रयास करें कि इसका विस्तार कितना है और इसके विभिन्न अंग इसमें किस प्रकार वितरित हैं।

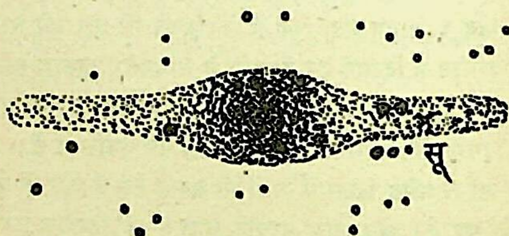
परिच्छेद ६ में हम बता चुके हैं कि जितने भी तारे हमें खाली आँख से अथवा दूरबीन से दिखाई देते हैं उनमें से अधिकतर आकाश के उस प्रदेश में हैं जिसे हम आकाशगंगा कहते हैं। हमारे नभोमंडल पर यह एक बृहत्-वृत्त[1] है। इसमें विभिन्न तारे विभिन्न दूरियों पर अवस्थित हैं। इस वृत्त के तल से अभिलम्बीय दिशा में तारों की संख्या कम है और वे अपेक्षाकृत कम दूरियों पर हैं। अतः बहुत प्राचीन काल से यह विश्वास जड़ पकड़ता गया है कि आकाश का यह आकाशगंगेय प्रदेश लगभग उत्तल लैन्स की आकृति का है अथवा यों कहिए कि उसकी आकृति वह है जो किसी दीर्घवृत्त[2] को उसके लघु-अक्ष पर घुमाने से प्राप्त होती है। इसका व्यास मोटाई की अपेक्षा लगभग पाँच गुना है। इसमें केन्द्र के निकट तारों की भीड़ सबसे अधिक है और ज्यों ज्यों केन्द्र से दूरी बढ़ती जाती है त्यों त्यों यह भीड़

1. Great circle

2. Ellipse

कम होती जाती है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी कोई विशेष सीमा ऐसी है जिससे आगे तारों का अस्तित्व है ही नहीं। यदि तारों की सघनता[1] नापी जाय तो हम कह सकते हैं कि इसके अक्ष की दिशा में केन्द्र से लगभग ५५० पारसैक तथा निरक्षीय दिशा में लगभग २८०० पारसैक की दूरी पर सघनता केन्द्रीय सघनता के १/१०वें अंश के बराबर रह जाती है और सघनता को १/१००वें अंश के बराबर होने के लिए ये दूरियाँ क्रमशः १७०० तथा ८५०० पारसैक हो जाती हैं। अतः स्थूल रूप से इसका औसत व्यास २०,००० पारसैक=६५,००० प्रकाश-वर्ष लम्बा समझा जा सकता है। किन्तु इसकी अधिकतम लम्बाई शायद ४०,००० पारसैक या १५,००,०० प्रकाश-वर्षों से कम नहीं है।

केन्द्र में तारों की संख्या ४५ प्रति सहस्र घन पारसैक के लगभग है और संभवतः इसके समस्त तारों की संख्या $४\cdot७ \times १०^{१०}$ से कम नहीं है। ये



आकाश गँगा

आकृति १८.१

सर्वत्र और सब दिशाओं में समान रूप से वितरित नहीं हैं। कहीं कहीं तारों की स्थानीय सघनता इतनी अधिक हो गयी है कि आपस में मिलकर ये तारे

1. Concentration

बादल के से रूप में दिखाई देते हैं। हमारा सूर्य भी ऐसे ही एक तारा-मेघ के मध्य में स्थित है और इस मेघ के केन्द्र से उसकी दूरी प्रायः १० पारसैक है। इस गोलाभ तारामेघ का व्यास ६००-७०० पारसैक तथा मोटाई प्रायः २०० पारसैक है।

आकाशगंगा के केन्द्र से सूर्य की दूरी प्रायः ३०,००० प्रकाश-वर्ष है। यह आकाशगंगा अपने केन्द्र के चारों ओर घूम भी रही है, किन्तु यह घूर्णन पहिये की तरह का घूर्णन नहीं है जिसमें प्रत्येक भाग का कोणीय वेग बराबर रहे। यह घूर्णन उसी प्रकार का है जैसा सौर परिवार का है जिसमें ग्रहों के कोणीय वेग विभिन्न मानों के हैं। जहाँ सूर्य अवस्थित है वह प्रदेश इस घूर्णन में एक चक्कर लगभग २२·५ करोड़ ($२२·५ \times १०^{७}$) वर्षों में पूरा करता है और उसका रैखिक वेग प्रायः २७५ कि० मी० प्रति सैकंड है।

आकाश के इस आकाशगंगेय प्रदेश को ही हम अपना विश्व[1] समझ सकते हैं। वस्तुतः इसका अच्छा नाप करने वाले वैज्ञानिक कैपटेन[2] के नाम से यह कैपटेन-विश्व कहलाता है।

यद्यपि विश्व शब्द का मूल अर्थ यह है कि उसमें ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं का—तारों और नीहारिकाओं का—समावेश होना चाहिए। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हमारे इस सीमित आकाशगंगेय प्रदेश से बाहर जो नीहारिकाएँ हैं वे इससे इतनी अधिक दूरी पर हैं कि उन्हें इससे पृथक् ही समझना चाहिए। अतः अब इस सीमित प्रदेश का ही नाम विश्व रख दिया गया है। वस्तुतः इन बहिर्वर्ती सर्पिलाकृति नीहारिकाओं में से प्रत्येक हमारे इस कैपटेन-विश्व के ही समान स्वयं भी इतना ही विशाल, इतना ही विस्तृत और इतने ही बहुसंख्यक तारों से पूर्ण ऐसा ही विश्व है। कोई कोई तो और भी बड़े विश्व हैं। और इन सब विश्वों की पारस्परिक दूरियाँ भी इतनी बड़ी हैं कि हम विशाल आकाशरूपी समुद्र में इन विश्वों को छोटे-छोटे द्वीपों

1. Universe 2. Kapteyn

के समान समझ सकते हैं। अतः इनका और भी अधिक अर्थपूर्ण नाम द्वीप-विश्व[1] रख दिया गया है। और जिसमें ये सब समाविष्ट हैं उसे हम सुविधा के लिए ब्रह्मांड कह सकते हैं। इस ब्रह्माण्ड में लाखों-करोड़ों द्वीप-विश्व विद्यमान हैं।

इनमें से संभवतः जो हमसे सबसे नज़दीक द्वीप-विश्व है वह ऐन्ड्रोमीडा[2] नामक नीहारिका है। इसकी दूरी २,७०,००० पारसैक या ८,७०,००० प्रकाश-वर्ष है, और उसका दृश्य व्यास प्रायः १४,००० पारसैक है।

कुछ नीहारिकाएँ तो इतनी दूर हैं कि वे हमें मेघ-रूप में ही दिखाई देती हैं। इनकी दूरियों का अनुमान तो एक करोड़ प्रकाश-वर्ष तक पहुँच चुका है और अभी यह नहीं कहा जा सकता कि हम ब्रह्माण्ड के अंत तक पहुँच गये हैं। आशा तो यही है कि प्रेक्षण के साधन जितने अधिक उन्नत होते जायेंगे उतनी ही अधिक दूर तक हम ब्रह्माण्ड के भीतर देख सकेंगे और तब इन द्वीप-विश्वों की संख्या और भी अधिक बढ़ जायगी। संभवतः ऐसे भी द्वीप-विश्व विद्यमान हैं जिनको हम आज उस प्रकाश के द्वारा देखते हैं जो वहाँ से उस समय चला था जब न तो पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म हुआ था और न किसी जीव-जन्तु या पेड़-पौधे का अस्तित्व था। कुछ ऐसे भी हैं जिनकी उत्पत्ति के समय से चला हुआ प्रकाश आज तक हमारे पास पहुँचा ही नहीं।

इसके अतिरिक्त नीहारिकाओं की स्पैक्ट्रम-रेखाओं के निरीक्षण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रेखाएँ स्पैक्ट्रम के लाल छोर की ओर विस्थापित रहती हैं। यह विस्थापन थोड़ा नहीं बहुत होता है और इससे ज्ञात होता है कि ये द्वीप-विश्व हमारे विश्व से अर्थात् सूर्य से दूर भाग रहे हैं और उनका औसत वेग प्रायः ४००० किलोमीटर प्रति सैकंड है। ४०,००० कि० मी०/सैकंड का वेग भी देखा गया है। और यह वेग नीहारि-

1. Island universe   2. Andromeda

काओं की दूरी का समानुपाती भी पाया गया है। अर्थात् जितनी अधिक दूर कोई नीहारिका है उतने ही अधिक वेग से वह दौड़ रही है। अत्यन्त दूर वाली नीहारिकाओं का वेग तो प्रकाश के वेग के १/४ या १/३ वें भाग के बराबर तक निकला है। ऐसा दिखाई देता है मानो ये समस्त द्वीप-विश्व बड़े वेग से एक-दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं। और इसका अर्थ यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड का विस्तार शीघ्रतापूर्वक बढ़ता जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है? यह अभी मालूम नहीं है, किन्तु है यह बात आश्चर्यजनक। इस विस्तार-वृद्धि का परिणाम क्या होगा? क्या यह विस्तार बढ़ता ही जायगा? ये प्रश्न अत्यन्त जटिल हैं। और जितना ही अधिक गहराई में जाने का प्रयत्न किया जाता है उतनी ही नयी नयी समस्याएँ सामने आती जाती हैं। अतः इस समय इस विषय को यहीं समाप्त कर देना श्रेयस्कर है।

किन्तु एक अन्य प्रश्न का जिक्र कर देना अनुचित न होगा। प्रत्येक तारा निरन्तर प्रकाश या विकिरण के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन करता रहता है। यह ऊर्जा समस्त आकाश में फैलती जाती है और करोड़ों वर्षों से फैलती रही है तथा करोड़ों वर्षों तक फैलती रहेगी। हमारे सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा का अत्यन्त सूक्ष्म-सा भाग ग्रहों में अवशोषित होता है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर शून्याकाश ही अधिक है। तारे भी इतने अधिक दूर-दूर हैं कि किसी एक तारे से निकलने वाले प्रकाश का भी अत्यन्त ही सूक्ष्म भाग किसी अन्य तारे में या किसी प्रकार के द्रव्य में अवशोषित हो सकता है। तो यह सब विकिरण ऊर्जा अंत में जाती कहाँ है? क्या अनन्त आकाश में फैलती ही जाती है? और हम यह भी देख चुके हैं कि इसकी उत्पत्ति द्रव्य के लोप होने से होती है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का द्रव्य घटता जाता है और विकिरण ऊर्जा के रूप में अनन्ताकाश में विलीन होता जाता है। स्पष्ट है कि कोई समय ऐसा भी आ जायगा जब सब द्रव्य का लोप हो चुकेगा और समस्त ऊर्जा अनन्त आकाश की गहराइयों में चली जायगी। तब हमारे द्वीप-विश्व में और समस्त ब्रह्माण्ड में क्या रहेगा? न द्रव्य, न प्रकाश। क्या इसी का नाम प्रलय है? तब क्या संसार का अंत हो जायगा? क्या यह संभव नहीं

है कि कुछ ऐसी भी क्रियाएँ होती हों जिनका इस समय हमें ज्ञान नहीं है किन्तु जो विकिरण ऊर्जा को पुनः द्रव्य के रूप में भी बदलती रहती हों? यदि ऐसा होता हो तो सृष्टि और प्रलय का काम साथ ही साथ चलता रह सकता है और यह संसार अनन्त काल तक यों ही बना रह सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में अभी कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

परिच्छेद १९

पृथ्वी से बाहर जीवों का अस्तित्व

प्राचीन धारणाएँ

अत्यन्त प्राचीन काल से सभी देशों के निवासियों का यह विश्वास रहा है कि जड़ द्रव्य के अतिरिक्त संसार में एक सर्वथा भिन्न प्रकार की सत्ता है जिसे जीव कहते हैं। इसका प्रमुख लक्षण चेतना है। यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म जीवों से लेकर अत्यन्त विकसित मस्तिष्क और बुद्धि वाले मनुष्य तक समस्त प्राणियों के शरीर का अध्ययन भौतिक और रासायनिक दृष्टि से सैकड़ों वर्षों से बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा किया गया है, फिर भी यह सत्ता रहस्यमय ही बनी हुई है। दार्शनिकों ने तथा विभिन्न धर्माचार्यों ने अवश्य अनेक युक्तियों से इस सत्ता के विवेचन का प्रयत्न किया है, किन्तु आधुनिक विज्ञान को अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि यह सत्ता वास्तव में क्या है और विभिन्न प्राणियों के केवल शरीर का ही अध्ययन विज्ञान अभी तक कर सका है। इस शरीर में अपने आप हिलने-चलने की शक्ति और चेतना कैसे पैदा हो जाती है और कैसे इस शरीर के अवयवों का क्षय होता रहता है, कैसे यह अपने निकटवर्ती द्रव्य के द्वारा विनष्ट अवयवों का पुनः सर्जन कर लेता है और प्रजनन का गुण उसमें कैसे प्रकट हो जाता है। ये बातें अभी तक रहस्य ही बनी हुई हैं। जो भी हो, जीव की विलक्षण सत्ता में विश्वास मनुष्य मात्र में विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त यह भी विश्वास विश्वव्यापी है कि इस अनन्त संसार में पृथ्वी ही पर जीव का निवास नहीं है। पृथ्वी से बाहर के अन्य तारों और ग्रहों में भी जीवों का निवास है। भारत आदि पूर्वी देशों में तो

यह विश्वास है ही और यहाँ का तो बच्चा-बच्चा सूर्यलोक, चन्द्रलोक, अनेक स्वर्ग तथा नरक लोकों और उनके निवासियों की चर्चा करता रहता है। धार्मिक ग्रन्थ भी उनके विवरणों से भरे पड़े हैं। पाश्चात्य देशों में भी यही विश्वास प्रचलित है। यह ठीक है कि कोपर्निकस[1] से पहले जब वहाँ यह धारणा बैठी हुई थी कि इस विश्व का केन्द्र पृथ्वी है और सूर्य, चन्द्रमा आदि सब इसी की परिक्रमा करते रहते हैं, तब तक सम्भवतः अधिकतर लोग यही समझते थे कि पृथ्वी अन्य सब खगोलीय पिण्डों से भिन्न प्रकार की है और जीव का अस्तित्व केवल यहीं है। इस धारणा का एक प्रमुख कारण यह धार्मिक विश्वास था कि ईश्वर ने संसार की रचना मनुष्य के ही लाभ के लिए की है और उसे पृथ्वी पर ही पैदा किया है तथा सूर्य, चन्द्रमा आदि का कार्य केवल इतना ही है कि वे पृथ्वी को प्रकाश और गरमी दे सकें। किन्तु जब से यह प्रमाणित हो गया कि पृथ्वी भी अन्य ग्रहों की भाँति सौर परिवार का एक छोटा सा ग्रह है और सूर्य इस परिवार का प्रमुख केन्द्र है तथा इस सूर्य के समान ही इस विश्व में लाखों-करोड़ों सूर्य इससे भी बड़े-बड़े विद्यमान हैं, तब से इस सम्भावना में दिन-दिन अधिक विश्वास होता गया कि पृथ्वी के समान ही अनेक खगोलीय पिण्ड ऐसे भी अवश्य होंगे जिनमें जीव और मनुष्य जैसे अत्यन्त बुद्धिमान प्राणी रहते होंगे। पृथ्वी तो इनमें से एक अत्यन्त छोटा-सा पिण्ड है और उसमें किसी प्रमुखता की धारणा बनाने का कोई कारण नहीं है।

तारों तथा ग्रहों की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में जितना कुछ हमें अब तक मालूम हो सका है उससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी की भी अवस्था सदा ऐसी नहीं थी, जैसी कि इस समय है। अवश्य ही प्रारम्भ में इसका ताप बहुत अधिक रहा होगा। क्या उस समय भी इस पर जीव-धारियों का निवास था? ऐसा मालूम तो नहीं होता, क्योंकि हम प्रत्यक्ष

1. Copernicus

देखते हैं कि ताप में एक सीमा से थोड़ा भी अधिक हेर-फेर होने से जीव-जन्तु जिन्दा नहीं रह सकते। अधिक ठण्ड में पेड़-पौधे तक नहीं पनपते। वे वहुत छोटे-छोटे और विरल हो जाते हैं यथा ऊँचे पहाड़ों और ध्रुवीय प्रदेशों में, और अन्त में उनका पूर्ण अभाव ही हो जाता है। दूसरी ओर अधिक गर्मी से भी वे सूख और झुलस जाते हैं। अधिक विकसित जन्तुओं की बात तो जाने दीजिए, सूक्ष्म बैक्टीरिया तक भी जीवित नहीं रह सकते। अतः यदि पृथ्वी पर जीव सदा से विद्यमान नहीं थे तो उनका प्रादुर्भाव कैसे हुआ? क्या वे अन्य रासायनिक द्रव्यों की तरह विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के संयोजन से ही उत्पन्न हो गये? या वे जड़ द्रव्य से सर्वथा भिन्न हैं और आकाश मार्ग से किसी दूसरी जगह से चलकर वे पृथ्वी पर पहुँचे और तब यहाँ उनका विकास हुआ तथा संख्या में वृद्धि हुई?

प्राचीन विश्वास के अनुसार जीव यदि जड़ द्रव्य से भिन्न सत्ता है तो वह जड़ द्रव्य में से पैदा नहीं हो सकता। अतः यह मानना पड़ेगा कि जीव विश्व के अनन्ताकाश में सर्वत्र पहले से विद्यमान था, वहाँ से पृथ्वी पर आया और अनुकूल परिस्थिति होने से उसने पृथ्वी को भी अपना निवासस्थान बना लिया। हम जानते हैं कि उल्का के रूप में छोटे-बड़े द्रव्यपिण्ड बराबर पृथ्वी पर आ-आकर गिरते रहते हैं। सम्भव है कि इन्हीं के द्वारा जीवाणु यहाँ पहुँचे हों। किन्तु अनेक उल्का-खण्डों की परीक्षा करने से ज्ञात हो गया है कि उनमें जीवाणुओं का अस्तित्व कभी नहीं पाया गया। और जैसे पृथ्वी के गर्भ में करोड़ों वर्ष पहले के प्राणियों और पेड़ों के ज़ीवाश्म या फ़ासिल[1] या प्रस्तरित शिलाखण्ड पाये जाते हैं, वैसी शिलाओं का अस्तित्व भी इन उल्का-खण्डों में कभी नहीं पाया गया। अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि आज न सही, सम्भवतः किसी प्राचीन काल में तो उन पर जीव

1. Fossil

का अस्तित्व था। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से यही बात अधिक सम्भव जान पड़ती है कि जीव की उत्पत्ति पृथ्वी पर ही हुई और वह भी जड़ द्रव्य का ही रूपांन्तर मात्र है।

जीवों के शरीर की रासायनिक संरचना

छोटे और बड़े पौधों और जन्तुओं के शरीरों के अध्ययन से मालूम हुआ है कि उनमें मुख्यतः तीन रासायनिक तत्त्व होते हैं। ७० % मात्रा तो आक्सिजन, १८% कार्बन और १०.५% हाइड्रोजन की। शेष १.५% में नाइट्रोजन, कैलसियम, पोटेशियम और सिलीकन (लगभग ०.१ % की मात्राओं में) और फ़ासफ़ोरस, मैगनीशियम, सल्फ़र तथा क्लोरीन आदि (०.०१% से भी कम) पाये जाते हैं।

इन जीव-शरीरों के अणु भी विलक्षण प्रकार के होते हैं। ये अणु साधारणतः जीव-शरीर में ही पाये जाते हैं और कुछ ही वर्षों पहले तक यही समझा जाता था कि इनका निर्माण केवल जीव स्वयं ही किसी जैव क्रिया द्वारा कर सकता है। अतः इन अणुओं का नाम जैव-अणु[1] रख दिया गया था और रसायन विज्ञान की जिस शाखा में इनका अध्ययन किया जाता है, उसका नाम जैव-रसायन[2] रख दिया गया था। यद्यपि अब हमें मालूम हो गया है कि कुछ असाधारण परिस्थितियों में बिना जैव क्रिया के भी ऐसे अणु बन सकते हैं, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि जितनी आसानी से जीव इनका निर्माण कर लेते हैं उतनी आसानी से अन्य किसी भी प्रकार यह सम्भव नहीं है।

इन जैव अणुओं में सबसे प्रमुख कई प्रकार के प्रोटीन[3] के अणु हैं और इनकी विलक्षणता यह है कि ये बहुत भारी होते हैं और कार्बन, आक्सिजन,

1. Organic molecules 2. Organic Chemistry
3. Protein

है। इसी क्रिया के कारण विविध प्रकार के अमीनो-ऐसिड[1] तथा अन्त में प्रोटीनों की उत्पत्ति हो गयी।

(७) पृथ्वी का टेम्परेचर न बहुत ऊँचा था और न बहुत कम। वह प्रोटीनों के स्थायित्व के लिए अनुकूल था। ये प्रोटीन-अणु बहुत अधिक ताप पर नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि द्रव्य के गत्यात्मक सिद्धान्त[2] के अनुसार ऊँचे ताप पर अणुओं का वेग बढ़ जाता है और पारस्परिक टक्करें भी अधिक और जोरदार होतीं हैं। इससे केवल ये बड़े अणु ही नहीं, परमाणु तक साबुत नहीं रह सकते। अधिक दबाव से भी इसी तरह ये अणु नष्ट हो जाते हैं।

ताप बहुत कम होने पर समस्त रासायनिक क्रियाएँ निर्बल हो जाती हैं, जल जम जाता है और उसमें अणुओं का संचरण नहीं हो सकता। इससे प्रोटीनों का निर्माण रुक जाता है और जो पहले से विद्यमान होते हैं उन्हें भोजन न मिलने से वे भी नष्ट हो जाते हैं।

वस्तुतः पृथ्वी पर इस समय जितना ताप है उसमें कुछ थोड़े-से अंशों की ही कमी-बेशी होने से जीवों का नाश हो जाता है। यह बात इस समय भी पृथ्वी के अत्यन्त गरम रेगिस्तानों और बहुत ऊँचे बरफ से ढके हुए पहाड़ों की हालत देख कर समझ में आ सकती है।

(८) इसके बाद इन प्रोटीन पदार्थों के अणुओं में जान कैसे आयी और उनसे कैसे क्षुद्र जीव बैक्टीरिया बने और कैसे धीरे-धीरे करोड़ों वर्षों में इनका विकास होने से तरह-तरह के पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े तथा बड़े-बड़े जानवर और मनुष्यों की सृष्टि हुई इस पर विचार करना इस समय सम्भव नहीं है। अभी तो हम यही कहना चाहते हैं कि प्रत्येक जीव के शरीर के लिए इन प्रोटीन अणुओं की उत्पत्ति और उपस्थिति आवश्यक है। अतः जब तक

1. Amino-acid
2. Kinetic Theory

परिस्थिति इनकी उत्पत्ति के लिए अनुकूल न हो तब तक कहीं भी जीव का विद्यमान होना सम्भव नहीं है।

जीव की उपस्थिति के लिए आवश्यक परिस्थिति

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी खगोलीय पिण्ड पर जीव की उपस्थिति के लिए कम से कम निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

(१) खगोलीय पिण्ड का द्रव्यमान कम होना चाहिए। यदि उसका द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान के १/१०० वें भाग के बराबर भी हो तो उसके अन्तरंग में ताप और दबाव इतना अधिक हो जायगा कि वहाँ नाभिकीय क्रिया होने लगेगी। अतः उसमें ऊर्जा की उत्पत्ति होगी और वह भी अत्यन्त गरम तारा ही होगा। जिन छोटे पिण्डों में नाभिकीय क्रिया की सम्भावना नहीं है, वे ही ज्योतिहीन ग्रह होते हैं और उन्हीं का ताप जीवों के अस्तित्व के अनुकूल हो सकता है।

(२) ग्रह के वातावरण में से हाइड्रोजन निकल जानी चाहिए। यदि ग्रह का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान से बहुत अधिक हो तो उसका गुरुत्वाकर्षण इतना ज्यादा रहेगा कि उसमें से हाइड्रोजन का पलायन नहीं हो सकता।

(३) ग्रह के वातावरण में आक्सिजन भी होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि उसका द्रव्यमान पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम भी न हो, क्योंकि तब उसका गुरुत्वाकर्षण आक्सिजन और जलवाष्प के अणुओं को भी निकल भागने से रोक नहीं सकेगा।

(४) विविध अणुओं के सम्मिश्रण और संश्लेषण के लिए उस पर जलाशय भी होने चाहिए।

(५) ग्रह की उसके सूर्य से दूरी इतनी होनी चाहिए कि उसके ताप में और पृथ्वी के ताप में बहुत ज्यादा फर्क न हो।

(६) सूर्य के चारों ओर ग्रह के परिक्रमण की कक्षा लगभग वृत्ताकार होनी चाहिए। अन्यथा प्रत्येक चक्कर में दूरी के फर्क के कारण उसके महत्तम

और लघुतम तापों में बहुत अन्तर हो जायगा और उस पर जीव रह नहीं सकेंगे।

(७) अतः यह भी आवश्यक है कि जिस सूर्य की वह ग्रह परिक्रमा करता हो वह युग्म-तारा नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसे तारों के ग्रहों की कक्षाएँ जटिल आकृति की होती हैं और कभी तो ग्रह तारे से बहुत दूर चला जाता है और कभी बहुत ही निकट आ जाता है।

(८) उस ग्रह का सूर्य स्थायी तारा होना चाहिए—नव तारा या परिवर्ती तारा नहीं, अर्थात् सैकड़ों-करोड़ों वर्षों तक उसमें से उत्सर्जित होनेवाली ऊष्मा की मात्रा में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। तभी तो ग्रह को ऊष्मा नियत मात्रा में मिलती रहेगी और उसका ताप करोड़ों वर्षों तक लगभग एक-सा बना रह सकता है। प्रोटीन-अणु के निर्माण, उसमें जीव के संचार और उसके विकास के लिए यह दीर्घकाल आवश्यक है। हमारा सूर्य पृथ्वी को ४००—५०० करोड़ वर्षों से प्रायः एक-सी गर्मी देता रहा है। तभी तो यहाँ जीव-जगत् के विकास के लिए काफ़ी समय मिला है।

(९) इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक बातें आवश्यक हैं, किन्तु इस समय और अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है।

पृथ्वी से बाहर जीव के अस्तित्व की संभावना

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि विश्व में किसी भी तारे के किसी भी ग्रह पर जीव के अस्तित्व की महत्तम सम्भावना कितनी है। और इसके लिए हम यह मान लेंगे कि प्रत्येक तारे के परिवार में थोड़े बहुत ग्रह विद्यमान हैं।

(१) जैसा ऊपर बताया जा चुका है, सबसे पहली आवश्यकता है कि तारा अकेला[1] होना चाहिए—युग्म नहीं। किन्तु समस्त तारों में से केवल २०% ही ऐसे तारे होते हैं।

1. Single

(२) और यदि तारा अकेला भी हो तो उसके प्रत्येक ग्रह की कक्षा वृत्ताकार नहीं होती। यदि यह भी मान लिया जाय कि समस्त ग्रहों में से लगभग आधे ग्रहों की कक्षाएँ वृत्ताकार हैं तो किसी भी ग्रह पर जीव की सम्भावना १०% से अधिक नहीं हो सकती।

(३) इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि समस्त तारों में से १०% से अधिक स्थायी और काफ़ी पुराने नहीं हैं। शेष या तो बहुत बड़े (दानव) हैं या चरकान्ति और नवतारा हैं और उनका द्रव्यमान तथा ताप बदलता रहता है। यदि ये स्थायी भी हो गये हैं तो भी स्थायित्व प्राप्ति के बाद अभी इतना समय नहीं हुआ है कि जीव के विकास की क्रिया में काफ़ी प्रगति हो सकी हो। अतः जीव के अस्तित्व की सम्भावना घटकर १% मात्र रह जाती है।

(४) यह भी भूल न जाना चाहिए कि विभिन्न ग्रहों की परिक्रमण कक्षाएँ अपने सूर्य से विभिन्न दूरियों पर अवस्थित होती हैं। जो ग्रह सूर्य से बहुत नजदीक होते हैं उनका ताप अधिक होता है और जो बहुत दूर होते हैं उनका ताप बहुत कम होता है। अनुमान यही है कि शायद दस ग्रहों में से केवल एक ही जीवों के लिए अनुकूल दूरी पर हो। इस दृष्टि से जीव के अस्तित्व की सम्भावना ०.१ % से अधिक नहीं रह जाती।

(५) ग्रह का द्रव्यमान भी तो ऐसा होना चाहिए कि उसमें से हाइड्रोजन तो निकल जा सके, किन्तु आक्सिजन तथा जल न निकल सके। इस बात की सम्भावना का अनुमान करना कठिन है, किन्तु शायद यह १/१०० से कम ही होगी।

इन सब बातों का सम्मिलित परिणाम यही निकलता है कि शायद कई लाख तारों में से किसी एक ही के निकट ऐसे ग्रह का अस्तित्व सम्भव है जिस पर जीवों के अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।

किन्तु इसका यह अर्थ हरगिज़ नहीं हो सकता कि पृथ्वी ही एकमात्र खगोलीय पिण्ड है, जिस पर जीव-जन्तु रह सकते हैं। इस ब्रह्माण्ड में सैकड़ों-करोड़ों द्वीपविश्व हैं, और प्रत्येक द्वीपविश्व में लाखों करोड़ों तारे हैं। जिस

द्वीपविश्व में हमारा सूर्य और यह पृथ्वी अवस्थित है उसके तारों की संख्या ही १०[११] से अधिक है। अतः सारे ब्रह्माण्ड में लाखों ग्रह ऐसे हैं, जिन पर जीव के अस्तित्व के अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। और ऐसा समझने का कोई कारण नहीं कि वहाँ वास्तव में जीवों का निवास न हो।

सौर परिवार के ग्रहों पर जीव की संभावना

इन ग्रहों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(१) बृहस्पति, शनि आदि बड़े और सूर्य से अधिक दूरी पर अवस्थित वहिर्वर्ती ग्रह, (२) मध्यवर्ती ग्रह—शुक्र, पृथ्वी और मंगल, (३) अन्तर्वर्ती ग्रह बुध।

परिच्छेद ११ में वताया जा चुका है कि प्रथम वर्ग के ग्रहों का ताप बहुत ही कम है। बृहस्पति और शनि के द्रव्यमान इतने अधिक हैं कि उनके वातावरण में से हाइड्रोजन तथा हीलियम का पलायन सम्भव नहीं है और ये गैसें वहाँ वहुतायत से विद्यमान हैं। यह इस बात से भी प्रकट है कि इनके घनत्व क्रमशः १.३४ तथा ०.६९ हैं। इतने कम घनत्व का कारण भी हाइड्रोजन की ही प्रचुरता है, क्योंकि उनके अत्यन्त नीचे ताप पर ठोस आक्सिजन तथा नाइट्रोजन के घनत्व भी इन ग्रहों के घनत्व से अधिक हैं। उनके वातावरण में आक्सिजन का तथा जलवाष्प का सर्वथा अभाव है और इतने कम ताप पर जल द्रव अवस्था में तो बिलकुल हो ही नहीं सकता। उसके स्पैक्ट्रमों में जल का या किसी भी आक्साइड का पता नहीं चलता। हाँ, स्पैक्ट्रम में मीथेन (CH_4) तथा अमोनिया (NH_3) के बैण्ड अवश्य दिखाई देते हैं, किन्तु अन्य हाइड्रो-कार्बनों के नहीं। अतः अधिक जटिल प्रोटीन के अस्तित्व की वहाँ सम्भावना नहीं है। बृहस्पति के बिम्ब पर निरक्ष से समान्तर कई ऐसे प्रदेश दिखाई देते हैं जिनसे ऐसा भ्रम होता है कि वे जल के बादलों से ढके हुए हैं। किन्तु वास्तव में ये अमोनिया तथा घूल के कणों के बादल हैं।

तृतीय वर्ग के ग्रह बुध का तो ताप (४००°) इतना अधिक है कि वहाँ जीव के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त

उसका द्रव्यमान इतना कम है कि उस पर कोई वातावरण रह ही नहीं सकता। हाइड्रोजन और हीलियम के अतिरिक्त आक्सिजन, नाइट्रोजन आदि भी वहाँ नहीं बच सकतीं। उनका स्पैक्ट्रम भी इस अनुमान की पुष्टि करता है।

द्वितीय वर्ग के ग्रहों में से भी पृथ्वी को छोड़कर अन्य दोनों ग्रहों (शुक्र तथा मंगल) पर भी परिस्थिति जीव-जन्तुओं के अनुकूल नहीं है। यह ठीक है कि इन दोनों ग्रहों का ताप न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा और दोनों ही ग्रहों के वातावरण में हाइड्रोजन तथा हीलियम नहीं हैं। किन्तु वहां आक्सिजन और जलवाष्प भी तो नहीं हैं और नाइट्रोजन तथा कार्बन डाइआक्साइड प्रचुर मात्रा में हैं। ये बातें तो इनके स्पैक्ट्रम से ही ज्ञात हो जाती हैं। मंगल के वातावरण का ताप कम होने और वहाँ जल का क्वथनांक[1] लगभग ४३° सें० होने के कारण यह संभव है कि वहां जल विद्यमान तो हो किन्तु उसकी अवस्था द्रव या ठोस हो। किन्तु यह भी अब अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि वहां कोई जलाशय नहीं है। अतः जल बर्फ़ के रूप में ही हो सकता है।

आक्सिजन की अनुपस्थिति विशेषतः विचारणीय है। हम बता चुके हैं कि आक्सिजन की उत्पत्ति हरे पत्तों के क्लोरोफ़िल पर प्रकाश की क्रिया से होती है। और पृथ्वी पर यह क्रिया बराबर होती रहती है। साथ ही यह आक्सिजन हाइड्रो-कार्बन तथा अन्य पदार्थों के आक्सीकरण में खर्च भी होती रहती है, और इन दोनों क्रियाओं के सन्तुलन के कारण ही वायुमंडल में गैसीय आक्सिजन की मात्रा स्थायी रहती है। अतः वातावरण में आक्सिजन का अस्तित्व ही वनस्पति के अस्तित्व का भी प्रमुख प्रमाण माना जा सकता है। और इसके अभाव से ही यह प्रमाणित हो जाता है कि वनस्पति का भी अभाव है।

1. Boiling point

सका। विभिन्न ज्योतिषियों के बनाये चित्र विभिन्न प्रकार के पाये गये। वस्तुतः ये चित्र कोई भी ऐसे नहीं थे जो मंगल के पृष्ठ के किसी एक ही समय पर लिये हुए फ़ोटो चित्र हों। वे ज्योतिषियों के द्वारा विभिन्न समयों पर देखे हुए प्रतिबिम्बों के हाथ से बनाये हुए समन्वय मात्र थे; और आधुनिक बड़ी दूरबीनों में ये रेखाएँ न तो बिलकुल सीधी दिखाई देती हैं, न वे अविच्छिन्न ही दिखाई देती हैं। पुरानी दूरबीनों की कम विभेदन-क्षमता के ही कारण ज्योतिषियों को भ्रम हुआ था। सच तो यह है कि उस समय की अधिक से अधिक विभेदन क्षमता वाली दूरबीन से भी मंगल ग्रह पर जो छोटी से छोटी वस्तु पृथक् देखी जा सकती थी, उसकी चौड़ाई कम से कम १०० कि० मी० (प्रायः ६० मील) होनी चाहिए थी। क्या यह संभव है कि कृत्रिम नहरें इतनी चौड़ी बनायी गयी हों? इस समय शायद कोई भी अच्छा ज्योतिषी इन नहरों में विश्वास नहीं करता। अतः उनके निर्माण करनेवाले वैज्ञानिक प्राणियों के अस्तित्व का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

चन्द्रमा पर जीव का अस्तित्व

चन्द्रमा का द्रव्यमान तो पृथ्वी से इतना छोटा है (१/८० मात्र) कि उस पर किसी प्रकार के वातावरण का होना संभव ही नहीं है; और न वहाँ आक्सिजन या जल के अस्तित्व का कोई चिह्न किसी प्रकार के प्रेक्षण से पाया गया है। पहले किसी समय यह विश्वास था कि चन्द्रमा पर अनेक समुद्र हैं, किन्तु यह भ्रम था। वास्तव में उसके पृष्ठ पर केवल नंगी चट्टानें हैं और उनकी आकृतियों से स्पष्ट हो जाता है कि वे ज्वालामुखी क्रिया से बनी हैं। जो काले काले धब्बे दिखाई देते हैं वे या तो ज्वालामुखी पहाड़ों की चोटियों पर गहरे कुओं के रूप में बने हुए मुहाने हैं, या इन पहाड़ियों की छायाएँ हैं जो विभिन्न समयों पर सूर्य की किरणों की विभिन्न दिशाओं के कारण विभिन्न आकृतियों की दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा के ताप में बहुत ही अधिक परिवर्तन होता रहता है। जब सूर्य वहाँ के मध्याकाश में होता है तब तो ताप १००° होता है और जब संध्या के समय

सूर्य क्षितिज पर रहता है तब ताप १४° मात्र रह जाता है। और जब वहाँ की लम्बी रात्रि का मध्य होता है तब तो ताप घटकर –१५०° तक पहुंच जाता है। ग्रहण के समय तो केवल एक ही घंटे में वह १४०° घट जाता है।

ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में, विना आक्सिजन और जल के, और विना किसी वातावरण के, कोई भी प्राणी वहाँ कैसे जिन्दा रह सकता है? न वहाँ किसी तरह की घास या पेड़-पौधे हैं और न कोई जीव-जन्तु। यह सत्य है कि किसी समय कई ज्योतिषी भी चन्द्रलोक में न केवल जीव-जन्तुओं का किन्तु मनुष्य जैसे प्राणियों का अस्तित्व मानते थे और कई लेखकों ने इनका विस्तृत वर्णन भी अपनी पुस्तकों में किया है। किन्तु इन सबको केवल उनकी उर्वर कल्पना की उपज मात्र ही समझना चाहिए।

परिशिष्ट—१ (क)

सौर परिवार सम्बन्धी आँकड़े

नाम	व्यास (औसत) (मील)	भार पृथ्वी=१	घनत्व जल=१	गुरुत्वीय त्वरण 'g' पृथ्वी=१	पलायन वेग मील प्रति सैकंड	पृष्ठीय टेम्परेचर (सेंटीग्रेड)	कक्षा तल पर निरक्ष का नतिकोण	अक्षीय घूर्णन का आवर्तकाल दिन घंटा मि०	उपग्रहों की संख्या
सूर्य	८,६४,०००	३३३४३४	१·४१	२७·८९	३९२	६०००°	७°१०′ ३०″ (पृथ्वी की)	२५ ध्रुवीयप्रदेश ३४ निरक्ष प्रदेश	—
चन्द्रमा	२,१६०	०·०१२३	३·३४	०·१६५	१.५	१२०° दीप्तभाग १५०° अदीप्तभाग	कक्षा से ६·५	२७ ७ ४३	—
बुध (Mercury)	३,०००	०·०३७०	३·७३	०·३६	२.४	४००°	?	८८ ० ०	?
शुक्र (Venus)	७,६००	०·८२६०	५·२१	०·९०	६.५	५५°; –२०°	?	३० ० ०	?
पृथ्वी	७,९१४	१·००००	५·५२	१·००	७.०	१४°	२३°२६′४७.६५″	२३ ५६	१
मंगल (Mars)	४,२००	०·१०८६	३·९४	०·३८	३.२	२०°	२३° ३०′	२४ ३७	२
बृहस्पति (Jupiter)	८५,७००	३१८·४	१·३४	२·६४	३८	–१४०°	३° ०७′	८ ५०	९
शनि (Saturn)	७१,२००	९५·२	०·६९	१·१३	२३	–१५५°	२६° ४५′	१० १४	९ व २ वलय
यूरेनस या वारुणी (Uranus)	३०,९००	१४·६	१·३६	०·९६	१४	–१८०°	९८°	१० ४५	४
नेपच्यून या वरुण (Neptune)	३३,०००	१७·३	१·३२	१·००	१५	–२१०°	२९°	१५ ४८	१
प्लूटो या यम (Pluto)	?	?	?	?	?	–२२०°	?	?	?

(ख)

नाम	सूर्य से दूरी (करोड़ मील)			ग्रह की कक्षा का नतिकोण, भू कक्षा की अपेक्षा	सूर्य परिक्रमण का आवर्त काल (वर्ष)	कक्षा में ग्रह का औसत वेग मील प्रति सैकण्ड
	अधिकतम	अल्पतम	माध्य			
बुध	४·३४	२·८६	४·३४	७°०२′	०·२४१	२९·७
शुक्र	६·७७	६·६८	६·७३	३°२३·६′	०·६१५	२१·७
पृथ्वी	९·४५६	९·१४५	९·३००५	—	१·०००	१८·४७
मंगल	१५·७२	१२·६२	१४·१७	१°५१′	१·८८१	१५·०
बृहस्पति	५०·७३	४६·०५	४८·३९	१°१८·३′	११·८६२	८·१
शनि	९३·५६	८३·७८	८८·९०२	२°२९·५′	२९·४५८	६·०
यूरेनस या वारुणी	१८६·८	१७०·०	१७८·४	०°४६·३′	८०·०१५	४·२
नैपट्यून या वरुण	२८२·५	२७६·९	२७९·७	१°४६·५′	१६४·७८८	३·४
प्लूटो या यम	४५८·२	२७५·८	३६७·०	१७°०८·६′	२४७·६९७	२·९

	पृथ्वी से दूरी (मील)				पृथ्वी परिक्रमण काल	
चन्द्रमा	२५२७१०	२२१.४६३	२३८८५६	५५°०९	२७ दिन ७.७२ घंटा	०.६३४

परिशिष्ट–२

पारिभाषिक शब्दावली

अंग्रेजी–हिन्दी

A

Aberration अपेरण
Absisca भुज
Absolute निरपेक्ष
Absolute Temperature परम ताप
Acceleration त्वरण
Accuracy यथार्थता
Adjust समंजित करना
Aerial एरियल
Altitude उन्नतांश
Amplification प्रवर्धन
Analysis विश्लेषण
Angular Velocity कोणीय वेग
Apparent आभासी
Approximation सन्निकटन
Areal velocity क्षेत्रफलीय वेग
Asteroid क्षुद्र ग्रह
Astrology फलित ज्योतिष
Astrometry तारामिति
Astronomical unit ज्योतिष मात्रक
Astronomy ज्योतिष; खगोल
Astrophysics तारा-भौतिकी
Atmosphere वायुमण्डल, वातावरण
Aurora मेरु ज्योति

B

Band बैण्ड; पट्टी
Band (of logarithm) आधार
Base line आधार रेखा
Binary star युग्म तारा
Black body कृष्ण वस्तु
Black radiation कृष्ण वस्तु विकिरण
Bolometer बोलोमीटर
Bright दीप्त
Brightness द्युति

C

Calculation परिकलन
Catalytic agent उत्प्रेरक
Celestial mechanics खगोल यान्त्रिकी
Celestial sphere खगोल
Centre of mass द्रव्य-केन्द्र, गुरुत्व केन्द्र

Centrifugal force अपकेन्द्र बल
Centripetal force अभिकेन्द्र बल
Cepheid सीफ़ाइड
Characteristic लाक्षणिक
Charge (वैद्युत) आवेश
Chromosphere वर्णमण्डल
Cluster (of stars) तारापुंज
Cluster variable पुंजीय चरकान्ति
Collimator समान्तरित्र
Colour Index वर्णांक
Coma (of Comet) कोमा; प्रभा
Comet धूमकेतु; पुच्छलतारा
Compass दिक्-सूची; कुतुबनुमा
Compound यौगिक
Compressibility संपीड्यता
Concave अवतल
Condensed संघनित
Conduction चालन
Conjunction (of planet) युति, योग
Constant अचर; नियत; नियतांक
Constellation तारामण्डल, नक्षत्र
Continuous spectrum अखण्ड-स्पैक्ट्रम
Convection संवहन
Contraction आकुंचन
Convergent अभिसारी
Coordinate system निर्देशांक पद्धति
Corona किरीट
Correction संशोधन
Critical क्रान्तिक
Curve वक्र

D

Dark (fringe) अदीप्त
Diagonal विकर्ण
Diagonally विकर्णत:
Diffraction विवर्तन
Diffuse (lines) अस्फुट
Disc मण्डलक; मण्डलिका
Displacement विस्थापन
Double stars युगल तारे
Dwarf star वामन तारा
Dynamical Parallax गतिक लम्बन
Dynamics गतिविज्ञान; गतिकी

E

Eccentricity उत्केन्द्रता
Eclipsing binary ग्रासशील युग्म, ग्रहणकारी युग्म
Ecliptic क्रान्ति वृत्त
Electrode विद्युत्-अग्र, विद्युदग्र
Element तत्त्व
Elimination निरसन
Ellipse दीर्घवृत्त
Elongation (of star) सूर्यान्तर कोण, प्रसरकोण
Emission उत्सर्जन
Energy ऊर्जा
Epicyclic अधिचक्रीय
Equator निरक्ष, विषुवद् वृत्त
Equatorial mounting निरक्षीय आरोपण, विषुवद् वृत्तीय आरोपण
Equilibrium सन्तुलन
Escape velocity पलायन वेग

Excitation उत्तेजन
Extrapolation वाह्यवेशन
Eyepiece अभिनेत्र, नेत्रिका

F

Faint (star) मन्दज्योति
Field of force वल-क्षेत्र
Field of view दृष्टि-क्षेत्र
Fission विखण्डन
Flash spectrum उद्दीप्त स्पैक्ट्रम
Flocculus दीप्तमेघ
Focal Length फ़ोकस अन्तर
Focal plane फोकस तल
Focus (१) फोकस, (२) नाभि
Formula सूत्र
Fractional भिन्नात्मक
Fringe फ्रिन्ज
Fusion संसंजन

G

Galaxy आकाश-गंगा
Geocentric भू-केन्द्रीय
Giant star दानव तारा
Globular गोलाकृति
Graduation अंशांकन
Graph लेखाचित्र, ग्राफ़
Grating ग्रेटिंग
Gravitation गुरुत्वाकर्षण
Gravity गुरुत्व
Great circle बृहत् वृत्त
Gyrostat घूर्णाक्ष स्थापी
Gyrostatic compass घूर्णाक्ष-दिक्-सूची

H

Head (of comet) शिर
Heat ऊष्मा
Heat index ऊष्मांक
Heat radiation ऊष्मीय विकिरण
Heavenly body खगोलीय पिण्ड
Helio-centric सूर्य-केन्द्रीय
Hemisphere गोलार्ध
Homogeneous समांगी
Horizon क्षितिज, दिगन्त
Horizontal क्षैतिज
Horse power अश्व-शक्ति
Hyperbola अतिपरवलय, हाइपरबोला
Hypothesis परिकल्पना

I

Illuminated प्रदीप्त
Image प्रतिबिम्ब
Inclined आनत
Induction coil प्रेरण कुण्डली
Infra-red अवरक्त
Intensity तीव्रता
Interference व्यतिकरण
Interferometer व्यतिकरणमापी
Intrinsic luminosity नैज ज्योति, निजी ज्योति
Inverse square law उत्क्रम वर्ग नियम
Inversely proportional उत्क्रमानुपाती, विलोमानुपाती
Ion आयन
Ionised आयनित
Irregular अनियमित

Island universe द्वीप विश्व

J

Junction सन्धि
Jupiter बृहस्पति

K

Kinetic energy गतिज ऊर्जा

L

Latitude अक्षांश
Lens लैन्स
Light curve द्युति वक्र
Light year प्रकाश वर्ष
Linear velocity रेखीय वेग
Line spectrum रेखिल स्पेक्ट्रम
Logarithm लघुगणक
Logarithm, natural प्रकृत लघुगणक
Longitude देशान्तर, रेखांश
Luminosity ज्योति
Lunar month चान्द्र मास

M

Magnetism चुम्बकत्व
Magnification आवर्धन
Magnifying power आवर्धन क्षमता
Magnitude परिमाण
Magnitude (of star) कान्तिमान
Major axis दीर्घ अक्ष
Mars मंगल
Mass द्रव्यमान
Matter द्रव्य
Mean माध्य, औसत
Mercury बुध
Meridian याम्योत्तर
Meteor उल्का, टूटता तारा
Micrometer प्रमापी
Microscope सूक्ष्मदर्शी
Milky way आकाश-गंगा
Minor axis लघु अक्ष
Model प्रतिरूप
Molecule अणु
Momentum संवेग
Monochromatic एक-वर्ण
Mounting आरोपण

N

Nebula नीहारिका
Negative (photographic) नेगेटिव
Neptune नेपट्यून, वरुण
Non-periodic अनावर्ती
Normal (१) अभिलम्ब, (२) साधारण
Normally अभिलम्बतः
Nova नवतारा
Nucleus नाभिक, न्यूक्लियस

O

Objective अभिदृश्य
Observation प्रेक्षण, वेध
Observatory वेधशाला
Opposition (of planet) वियुति, प्रतियोग
Optical pair प्रकाशीय युग्म
Orb बिम्ब

Orbit कक्षा
Ordinate कोटि
Oscillation दोलन
Overlapping उपपतित

P

Parabola परवलय
Paradox विरोधाभास
Parallax लम्बन
Parallax, annual वार्षिक लम्बन
Parallel समान्तर
Parsec पारसैक
Partial eclipse खण्ड ग्रास
Particle कण, कणिका
Pendulum लोलक
Penumbra उपच्छाया
Perfect radiator आदर्श विकीर्णक
Periodic time आवर्त काल
Periodic star आवर्ती तारा, आवर्तक तारा
Persistence of Vision दृष्टि निर्बन्ध
Perturbation क्षोभ, विकृति
Phenomenon घटना
Photoeectric cell प्रकाश वैद्युत सैल
Photograph फोटो
Photography फोटोग्राफ़ी, फोटो चित्रण
Photometer ज्योतिमापी
Photometry ज्योतिमापन
Photosphere प्रकाश-मण्डल
Physical pair भौतिक युग्म
Physics भौतिकी, भौतिक विज्ञान
Pitch सुर, तारत्व
Plane तल, समतल
Planet ग्रह
Planetary nebula ग्रहाभ नीहारिका
Planetesimal Theory ग्रहाणवीय सिद्धान्त
Pluto प्लूटो यम
Polar axis ध्रुवीय अक्ष
Polarised ध्रुवित
Pole ध्रुव
Pole star ध्रुवतारा
Prehistoric प्राग् ऐतिहासिक
Prism प्रिज़्म
Prominence (solar) ज्वाला
Proper motion निजी गति, नैजगति
Proportional समानुपाती

Q

Quantity परिमाण, मात्रा
Quantum Theory क्वाण्टम-सिद्धान्त

R

Radiant energy विकिरण ऊर्जा
Radiation विकिरण
Radioactivity स्वोत्सर्जिता, रेडियमधर्मिता
Radiometric magnitude ऊष्मीय कान्तिमान, विकिरण कान्तिमान

Radio Telescope रेड़ियो दूरबीन
Radius त्रिज्या
Radius vector सदिश त्रिज्या
Ratio अनुपात
Reaction प्रतिक्रिया
Real वास्तविक
Rectangular समकोणिक
Reflected परावर्तित
Relative आपेक्षिक
Representative point निरूपक बिन्दु
Resistance प्रतिरोघ
Resolving power विभेदनक्षमता
Resultant परिणमित
Reversing layer उत्क्रामी आवरण
Revolution परिक्रमण
Rocket राकेट
Rotating घूर्णनशील
Rotation घूर्णन

S

Satellite उपग्रह
Saturn शनि
Scattering प्रकीर्णन
Selenium cell सिलीनियम सैल
Self luminous स्वतः दीप्त
Sensitive सुग्राही
Separation व्यवघान
Siderial year नाक्षत्र वर्ष
Slit स्लिट
Smooth curve मसृण वक्र
Solar constant सौर नियतांक
Solar system सौर परिवार
Sound ध्वनि, शब्द
Spectral line स्पैक्ट्रमीय रेखा
Spectrograph स्पैक्ट्रम लेखी
Spectro-heliograph स्पैक्ट्रमीय रविचित्रक
Spectro-photometer स्पैक्ट्रमीय ज्योतिमापी
Spectroscope स्पैक्ट्रम दर्शी
Spectroscopic binary स्पैक्ट्रमीय युग्म
Spectrum स्पैक्ट्रम
Spherical गोलाकार, गोलीय
Spheroid गोलाभ
Spiral सर्पिल
Square वर्ग
Standard मानक, प्रमाण
Star cloud तारा मेघ
Statistical सांख्यिकीय
Structure संरचना
Subtend (an angle) अन्तरित करना
Sunspots सौर कलंक, घब्बे
Supergiants अति दानव
Superposed अध्यारोपित
Surface पृष्ठ
Symmetry सममिति
Synodic period संयुति काल

T

Tangent स्पर्श रेखा, स्पर्शज्या
Telescope दूरबीन
Temperature टेम्परेचर, ताप
Temperature radiation तापीय विकिरण, टेम्परेचर विकिरण
Temporary star अस्थायी तारा

Thermocouple ताप वैद्युत युग्म
Thermonuclear ताप-नाभिकीय
Theory सिद्धान्त
Tidal Theory ज्वारीय सिद्धान्त
Total eclipse पूर्णग्रास, पूर्ण ग्रहण
Transformation (nuclear) तत्त्वान्तरण
Transformer ट्रान्सफार्मर
Transit सूर्यातिक्रान्ति
Transmitted पारगमित
Traverse अतिवाहित करना
Trigonometrical त्रिकोणमितीय
Triple star त्रिकतारा

U

Ultra-violet परावैंगनी
Umbra प्रच्छाया
Uniform एक-समान
Unit मात्रक
Universal सार्वत्रिक
Universe विश्व, ब्रह्माण्ड
Uranus यूरेनस, वारुणी

V

Vacuum शून्याकाश, शून्यक
Vapour वाष्प
Variable star चरकान्ति तारा
Venus शुक्र
Vertical ऊर्ध्वाधर
Visible दृश्य
Visual नेत्रीय, चाक्षुस, दृश्य
Visual binary दृश्य युग्म
Volume आयतन

W

Wave तरंग
Wave-length तरंग-दैर्घ्य
Weight भार

Z

Zenith शिरोबिन्दु, खमध्य
Zenith angle शिरोबिन्दु कोण
Zodiac, signs of राशि
Zodiacal light राशिचक्रीय प्रकाश

परिशिष्ट—३

पारिभाषिक शब्दावली

हिन्दी अंग्रेज़ी

अ

अक्षांश Latitude
अखण्ड स्पैक्ट्रम
Continuous spectrum
अचर Constant
अणु molecule
अति दानव Supergiant
अतिपरवलय Hyperbola
अतिवाहित करना Traverse
अदीप्त फ्रिन्ज Dark fringe
अधिचक्रीय Epicyclic
अध्यारोपित Superposed
अनावर्ती Non-periodic
अनियमित Irregular
अनुपात Ratio
अपकेन्द्र बल
Centrifugal force
अपेरण Aberration
अभिकेन्द्र बल Centripetal force
अभिदृश्य Objective
अभिनेत्र Eye-piece
अभिलम्ब Normal
अभिलम्बतः Normally
अभिसारी Convergent
अवतल Concave
अवरक्त Infra-red
अश्व-शक्ति Horse-power
अस्थायी तारा Temporary star
अस्फुट रेखा Diffuse line
अंतरित करना Subtend
अंशांकन Graduation

आ

आकाश-गंगा
Galaxy, Milkyway
आकुंचन Contraction
आदर्श विकीर्णक
Perfect radiator
आधार Base
आधार-रेखा Base line
आनत Inclined
आपेक्षिक Relative
आभासी Apparent
आयतन Volume
आयन Ion
आरोपण Mounting

आवर्त काल Periodic Time
आवर्ती तारा Periodic star
आवर्धन Magnification
आवर्धन क्षमता Magnifying power
आवेश Charge

इ

इन्द्र-वारुणी Uranus

उ

उत्केन्द्रता Eccentricity
उत्क्रामी आवरण Reversing layer
उत्क्रम वर्ग नियम Inverse square law
उत्क्रमानुपाती Inversely proportional
उत्तेजन Excitation
उत्प्रेरक Catalytic agent
उत्सर्जन Emission
उद्दीप्ति स्पैक्ट्रम Flash spectrum
उन्नतांश Altitude
उपगोल Spheroid
उपग्रह Satellite
उपच्छाया Penumbra
उपपतित Overlapping
उल्का Meteor

ऊ

ऊर्जा Energy
ऊर्ध्वाधर Vertical
ऊष्मा Heat
ऊष्मांक Heat index
ऊष्मीय कान्तिमान Radiometric magnitude
ऊष्मीय विकिरण Heat radiation

ए

एक-वर्ण Monochromatic
एक-समान Uniform
एरियल Aerial

क

कक्षा Orbit
कण Particle
कणिका Particle
कान्तिमान Magnitude of star
किरीट Corona
कुतुबनुमा Compass
कृष्ण वस्तु Black body
कृष्णवस्तु विकिरण Black body radiation
कोटि Ordinate
कोणीय वेग Angular velocity
कोमा Coma
क्रान्तिक Critical
क्रान्तिवृत्त Ecliptic
क्वाण्टम सिद्धान्त Quantum Theory
क्षितिज Horizon
क्षुद्र ग्रह Asteroid
क्षेत्रफलीय वेग Areal velocity
क्षैतिज Horizontal

ख

खगोल Celestial sphere
खगोलयान्त्रिकी Celestial mechanics

खगोलीय पिण्ड Celestial body
खमध्य Zenith
खण्ड ग्रास Partial eclipse

ग

गतिकी Dynamics
गतिज ऊर्जा Kinetic energy
गतिविज्ञान Dynamics
गतिक लम्बन Dynamic parallax
गुरुत्व Gravity
गुरुत्व केन्द्र { Centre of mass / Centre of gravity }
गुरुत्वाकर्षण Gravitation
गोलाकृति Spherical, Globular
गोलाकार Spherical
गोलाभ Spheroid
गोलार्ध Hemisphere
गोलीय Spherical
ग्रह Planet
ग्रहाणवीय सिद्धान्त Planetesimal Theory
ग्रहाभ नीहारिका Planetary nebula
ग्राफ़ Graph
ग्रेटिंग Grating

घ

घटना Phenomenon
घूर्णन Rotation
घूर्णनशील Rotating
घूर्णाक्ष दिक्सूची Gyro-compass
घूर्णाक्ष स्थापी Gyrostat

च

चरकान्ति तारा Variable star
चाक्षुष Visual
चाक्षुष द्विक Visual binary
चान्द्र मास Lunar month
चालन Conduction
चुम्बकत्व Magnetism

ज

ज्योति Luminosity
ज्योतिमापन Photometry
ज्योतिमापी Photometer
ज्योतिष Astronomy
ज्योतिष मात्रक Astronomical unit
ज्वारीय सिद्धान्त Tidal Theory
ज्वाला (सौर) Prominence

ट

टेम्परेचर Temperature, ताप
टेम्परेचर विकिरण Temperature radiation
ट्रान्सफार्मर Transformer

त

तत्त्व Element
तत्त्वान्तरण (nuclear) Transformation
तल Plane
तरंग Wave
तरंग-दैर्घ्य Wave-length
ताप Temperature
ताप-नाभिकीय Thermo-nuclear
ताप वैद्युत युग्म Thermo-couple

तापीय विकिरण Temperature radiation
तारत्व Pitch
तारा-पुंज Star cluster
तारा-भौतिकी Astrophysics
तारामिति Astrometry
तारा-मेघ Star cloud
तारा-मण्डल Constallation
तीव्रता Intensity
त्रिक तारा Triple star
त्रिकोणमितीय Trigonometrical
त्रिज्या Radius
त्वरण Acceleration

द

दानव तारा Giant star
दिक् सूची Compass
दिगन्त Horizon
दीप्त Bright
दीर्घ अक्ष Major axis
दीर्घ वृत्त Ellipse
दूरबीन Telescope
दृष्टि-क्षेत्र Field of view
दृष्टि-निर्बन्ध Persistence of vision
दृश्य Visible
दृश्य युग्म Visual binary
देशान्तर Longitude
दोलन Oscillation
द्युति Brightness
द्युति वक्र Light curve
द्रव्य Matter
द्रव्य-केन्द्र Centre of mass
द्रव्यमान Mass
द्वीप विश्व Island universe

ध

धूमकेतु Comet
ध्रुव Pole
ध्रुवतारा Pole star
ध्रुवित Polarised
ध्वनि Sound

न

नक्षत्र Constellation
नवतारा Nova
नाक्षत्र वर्ष Siderial year
नाभि Focus of curve
नाभिक Nucleus
निजी गति Proper motion
नियत Constant
नियतांक Constant
निरक्ष Equator
निरक्षीय आरोपण Equatorial mounting
निरपेक्ष Absolute
निरसन Elimination
निरूपक बिन्दु Representative point
निर्देशांक पद्धति Coordinate system
नीहारिका Nebula
नेत्रिका Eye-piece
नेत्रीय Visual
नैगेटिव Negative (photographic)
नैज गति Proper motion
नैज ज्योति Intrinsic luminosity
नैपट्यून Neptune

न्यूक्लियस Nucleus

प

पट्टी (स्पैक्ट्रम) Band
परम टेम्परेचर Absolute Temperature
परवलय Parabola
परा बैंगनी Ultra-violet
परावर्तित Reflected
परिकलन Calculation
परिकल्पना Hypothesis
परिक्रमण Revolution
परिणमित Resultant
परिमाण Quantity
पलायन-वेग Velocity of escape
पारगमित Transmitted
पारसैक Parsec
पुच्छल तारा Comet
पूर्ण ग्रहण Total eclipse
पूर्ण ग्रास Total eclipse
पृष्ठ Surface
प्रकाश-मण्डल Photosphere
प्रकाश वर्ष Light-year
प्रकाश वैद्युत सैल Photo-electric cell
प्रकाशीय-युग्म Optical pair
प्रकीर्णन Scattering
प्रकृत लघुगणक Natural logarithm
प्रच्छाया Umbra
प्रतिक्रिया Reaction
प्रतिरूप Model
प्रतिरोध Resistance
प्रतिबिम्ब Image
प्रदीप्त Illuminated
प्रमाण Standard
प्रमापी Micrometer
प्रवर्धन Amplification
प्रसर कोण Elongation
प्राग् ऐतिहासिक Pre-historic
प्रिज्म Prism
प्रेक्षण Observation
प्रेरण कुण्डली Induction coil
प्लूटो Pluto, यम

फ

फलित ज्योतिष Astrology
फ़ोकस Focus
फ़ोकस अन्तर Focal length
फ़ोकस तल Focal plane
फ़ोटो Photograph
फ़ोटोग्राफ़ी Pho ography
फ़ोटो चित्रण Photography
फ्रिन्ज Fringe

ब

बल-क्षेत्र Field of force
बाह्य-वेशन Extra-polation
बुध Mercury
बृहत् वृत्त Great circle
बृहस्पति Jupiter
बैण्ड Band
बोलोमीटर Bolometer
ब्रह्माण्ड Universe

भ

भा-मण्डल Coma
भार Weight

भिन्नात्मक Fractional
भुज Absisca
भू-केन्द्रीय Geo-centric
भौतिक युग्म Physical pair
भौतिक विज्ञान Physics

म

मसृण वक्र Smooth curve
मात्रक Unit
मात्रा Quantity
माध्य Mean
मानक Standard
मेरु ज्योति Aurora
मंगल Mars
मण्डलक, मण्डलिका Disc
मन्द ज्योति Faint

य

यथार्थता Accuracy
यम Pluto
याम्योत्तर Meridian
युगल तारे Double stars
युग्म तारा Binary star
युति Conjunction
युतीय आवर्त काल Synodic period
यौगिक Compound

र

राशि Sign of Zodiac
राशिचक्र Zodiac
राशि चक्रीय प्रकाश Zodiacal Light
रेखांश Longitude
रेखिल स्पैक्ट्रम Line spectrum
रेखीय वेग Linear velocity
रेडियमधर्मिता Radio-activity
रेडियो दूरबीन Radio-Telescope

ल

लघु अक्ष Minor axis
लघु गणक Logarithm
लम्बन Parallax
लम्बन, वार्षिक Annual parallax
लाक्षणिक Characteristic
लेखाचित्र Graph
लोलक Pendulum

व

वक्र Curve
वरुण Neptune
वर्ग (1) class (2) square
वर्णमण्डल Chromosphere
वर्णांक Colour index
वामन तारा Dwarf star
वायुमण्डल Atmosphere
वारुणी Uranus
वाष्प Vapour
विकर्ण Diagonal
विकर्णतः Diagonally
विकिरण Radiation
विकिरण ऊर्जा Radiant energy
विकिरण कान्तिमान Radiometric magnitude
विखण्डन Fission
विद्युदग्र Electrode
विपर्यासी आवरण Reversing layer

विभेदन क्षमता Resolving power
बिम्ब Orb
वियुति Opposition
विरोधाभास Paradox
विलोमानुपाती Inversely proportional
विवर्तन Diffraction
विश्लेषण Analysis
विषुवद् वृत्त Equator
विस्थापन Displacement
वेध Observation
वेधशाला Observatory
व्यतिकरण Interference
व्यतिकरणमापी Interferometer
व्यवधान Separation

श

शनि Saturn
शब्द Sound
शिरोबिन्दु Zenith
शुक्र Venus
शून्यक, शून्याकाश Vacuum

स

सदिश त्रिज्या Radius vector
सन्निकटन Approximation
सन्तुलन Equilibrium
समकोणिक Rectangular
समतल Plane
सममिति Symmetry
समानुपाती Proportional
समान्तर Parallel
समान्तरित्र Collimator
समंजन Adjustment
समांगी Homogeneous
सर्पिल Spiral
सार्वत्रिक Universal
सिलीनियम सैल Selenium cell
सीफ़ाइड Sepheid
सुग्राही Sensitive
सुर Pitch
सूक्ष्मदर्शी Microscope
सूर्य केन्द्रीय Helio-centric
सूर्यातिक्रान्ति Transit
सूर्यान्तर कोण Elongation
सौर कलंक Sun-spot
सौर नियतांक Solar Constant
सौर परिवार Solar system
संक्षोभ Perturbation
संघनित Condensed
सन्धि Junction
संपीड्यता Compressibility
संयुति काल Synodic period
संरचना Structure
संवहन Convection
संवेग Momentum
संसंजन Fusion
सांख्यिकीय Statistical
स्पर्शज्या Tangent (of angle)
स्पर्श Tangent
स्पैक्ट्रम लेखी Spectrograph
स्पैक्ट्रमीय द्विक Spectro-metric binary
स्पैक्ट्रमीय रविचित्रक Spectro-heliograph
स्पैक्ट्रमीय रेखा Spectral line
स्लिट Slit
स्वोत्सर्जिता Radioactivity



हिन्दी-समिति के प्रक

वैज्ञानिक उद्भावों का इतिह
लाख और चपड़ा
प्रायोगिक भौतिकी
विद्युत रोपण तथा
धनाग्रीकरण
रेयन तथा सिंथटिक फाइवर्स
गणित का इतिहास
हिन्दू गणित-शास्त्र का इतिह
त्रिकोणमिति
विटामिन तथा हीनताजनित
रोग
गहन खेती
भूमि रसायन
खाद और उर्वरक
भारतीय ऋतु विज्ञान
भारतीय ज्योतिष का इतिहा
ज्योतिष की पहुँच
भारतीय ज्योतिष
आयुर्वेद का वृहत् इतिहास
भैषज्य संहिता
राइफल



आंवरण जी० डब्लू० लॉरी एगड कम्पनी द्वारा मुद्रित